हास्य-रस की कहानियाँ

हिन्दी तथा उर्दू के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों की चुनी हुई
हास्य-रस की ३४ कहानियों का अनुपम संग्रह

सम्पादक :

श्री० आर० सहगल,

भूतपूर्व सम्पादक तथा अध्यक्ष 'चाँद' और 'भविष्य'

भूमिका लेखक :
हिमाचल प्रदेशीय कांग्रेस कमिटी के उप-प्रधान

श्री० दौलतराम गुप्त

प्रकाशक :

कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड,

रैन बसेरा : इलाहाबाद

मूल्य चार रुपए

मुद्रक : ओ० आर० सहगल

प्रकाशक : कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड,

स्थान : रैन बसेरा, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, १९५०

विषय-सूची

१—भूमिका .. ... पाँच से सोलह
२—आख़िर खो ही गया [मिर्ज़ा अज़ीम बेग चग़ताई] १
३—नगाई का साथी [श्री० चञ्चल] २६
४—बेगम साहिबा का कुत्ता [श्री० रामचन्द्र गुप्त] ३७
५—तीन सौ वर्ष पहले [श्री योगेश धूलिया] ... ४३
६—पेशबन्दी [हाजी लक़लक़] ५३
७—चचा छक्कन ने झगड़ा चुकाया [श्री सय्यद इम्तियाज़ अली 'ताज'] ... ५८
८—शैतान की ख़ाला [श्री० जयकृष्ण] ... ७८
९—आ-क्-छीं [श्री० रमेन्द्र कुमार] ९४
१०—कहानीकार मिस्टर वर्मा [श्री० इन्दु] ... १०७
११—पीछा [श्री० कन्हैया लाल कपूर]... ... ११४
१२—मुल्लाजी की बीबी [श्री० मदनमोहन लाल अग्रवाल] १२१
१३—शेर का शिकार [मिर्ज़ा अज़ीम बेग चग़ताई] १२९
१४—मेरी फ़ज़ीहत [श्री० प्राणनाथ बोहरा] ... १४९
१५—मैं सम्पादक [श्री० रामशरण शर्मा] ... १५७

१६—रिफ़ॉमर [श्री० जयकृष्ण] १६३
१७—मिस्टर टॉम [श्री० रामचन्द्र गुप्त] १६६
१८—चिढ़ [श्री० मदनमोहन लाल अग्रवाल] ... १७५
१६—कॉलेज का स्वप्न [श्री० प्राणनाथ बोहरा] ... १८६
२०—हमारी आशिक़ी [श्री० "लहरी लाला"] ... १६६
२१—चिरई [श्री० सरयूपण्डा गौड़] २१३
२२—अस्पताल के चक्कर में [श्री मदनमोहन लाल अग्रवाल] २२२
२३—हम शरीफ़ [श्रीमती आर० सी० सहाय] ... २३०
२४—सेल्समैन [श्री० झपसठराय बनारसी] ... २३५
२५—जमादार ख़ां साहब [श्री० रामचन्द्र गुप्त] ... २३६
२६—भाभी जान का कमाल [श्री० झंझट] ... २४५
२७—घनश्याम की सजनी [श्री० 'नामालूम'] ... २५५
२८—हारने का शुकराना [श्री० विक्रमादित्य सिंह] २६३
२६—शादी या बर्बादी [श्री० 'गिरिजेश'] ... २६६
३०—चचा छक्कन ने कारतूस भरे [श्री सय्यद इम्तियाज़ अली 'ताज'] २८१
३१—हमारी पड़ोसिन [हज़रत 'कोई'] २६१
३२—प्रोफ़ेसर साहब [श्री० अशोक जी] ... २६७
३३—शहीद [श्री० कन्हैयालाल कपूर] ३००
३४—बदचलन [श्री० राजेन्द्र नागर] ३१५

आज मनुष्य को अपने सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में सुख, शान्ति, चैन और आराम की इतनी परवाह नहीं; जितनी दुर्भिक्ष, अकाल और बेकारी से संघर्ष करके केवल उदर-पूर्ति के लिए पर्याप्त सामग्री जुटाने की चिन्ता हो रही है। भूख, बेकारी और मँहगाई से संतप्त समाज के सामने हँसने-हँसाने का प्रस्ताव फक्कड़पन माना जाएगा, प्रस्ताव सामने आते ही वह कह उठेगा :

न छेड़ ऐ बादेबहारी, राह लग अपनी,
तुझे अठखेलियाँ सूझीं, यहाँ बेज़ार बैठे हैं!

समाज का प्रत्येक वर्ग आज की भयानक परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ जैसे-तैसे बच निकलता है तो वह एक क्षण भी आराम किए बिना आने वाले कल की चिन्ता में डूब जाता है। आगामी कल की विघ्न-बाधाओं और अचानक आ पड़ने वाली मुसीबत का एक मानचित्र उसके सामने अपनी भयानक आकृति लिए हुए आ उपस्थित होता है। भला ऐसी हालत में, जबकि अच्छी तरह बैठ कर दिल का ग़ुबार निकालने के लिए रोने तक को भी पर्याप्त समय नहीं मिलता, हँसने-हँसाने का तो सवाल ही नहीं उठता।

इस तथ्य और निर्विवाद सत्य को भली प्रकार जानते हुए भी; और स्वयं भी प्रत्येक भयानक परिस्थिति से दो-चार होते हुए, हम हँसने-हँसाने की सोच रहे हैं। दुःख को दुःख मान लेने से वह अपनी मात्रा से कहीं अधिक मालूम देने लगता है। जितना हम उसे अधिक मानने लगेंगे वह उतना ही अपना आकार 'सुरसा' के मुँह की तरह बढ़ाता ही जाएगा। अतः हमें 'सुरसा' से महावीर बन कर ही टक्कर लेना है। दुःख की इन घड़ियों का, जिनका समय-काल अनिश्चित है, हमें मुक़ाबला करना ही है; ऐसा किए बिना और कुछ कर भी तो नहीं पाते। क्यों न इन परिस्थितियों का मुक़ाबला हम अपनी स्वाभाविक सहनशीलता, धैर्य और शूरता से ही करें। इन में से जितनी भी घड़ियाँ हँस कर टाली जा सकें टालें, कुछ हँस के टलें, कुछ मर्दानावार लड़ के टाली जाएँ, परन्तु मुँह लटका

कर, टालने के पक्ष में हम नहीं हैं। प्रत्येक अवस्था का सामना हम जिन्दादिली से करेंगे :

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है,
मुर्दा-दिल खाक जिया करते हैं !

जीवन मुस्कानमय हो तभी सफल जीवन कहला सकता है। अर्थात् मुस्कान ही जीवन है। मन और शरीर का प्रफुल्लित रहना सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए कितना आवश्यक है, यह तो शायद किसी को बताने की जरूरत नहीं है।

केवल सांसारिक जीवन के लिए ही हास्य और विनोद की जरूरत है, ऐसा नहीं है। संयम और त्यागमय जीवन में भी मुस्कान, हास्य और विनोद को विशेष स्थान प्राप्त है। श्री रामकृष्ण परमहँस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी के वचनामृत, भाषण, वार्तालाप और दैनिक घटनाओं का अध्ययन करने पर कई जगह आप को गूढ़ आध्यात्मिक विषय, गम्भीर शास्त्रार्थ और शुष्क राजनीतिक बातचीत पर उन महापुरुषों द्वारा की गई ऐसी विनोदपूर्ण युक्तियाँ मिलेंगी, कि आप खिलखिला कर हँसने पर वाध्य हो जाएँगे।

हास्य को हमारे साहित्य का एक प्रधान अङ्ग माना गया है। परन्तु न जाने किन कारणों से अगाध संस्कृत साहित्य में हास्य विषयक साहित्य की अखरने वाली त्रुटि रह गई है, कि

बहुत ढूँढने पर भी आप को हास्य विषयक पर्याप्त साहित्य नहीं मिलता। वर्षों माथा-पच्ची करते रहने पर भी किसी सर्वमान्य निर्णय पर न पहुँच पाने वाले साहित्य की संस्कृत में कमी नहीं है। उपनिषद् तो तलाश करने पर १०१ मिलेंगे और एक-एक में अनेक ऐसी बातें भरी पड़ी हैं जिन पर आप चाहें तो जीवन भर सोचते रहिए। परन्तु एक भी "हास्योपनिषद्" नाम का ग्रन्थ हमे दृष्टिगोचर नहीं हुआ! अट्ठारह पुराणों में लिङ्ग पुराण तक है, परन्तु किसी ऋषि-मुनि ने "व्यङ्ग पुराण" की रचना क्यों न कर डाली? यह बात एक साहित्य-प्रेमी होने के नाते हमें अब तक अखर रही है। संस्कृत के नाटक साहित्य में विदूषक एक पात्र है, जो सभी कवियों और नाटककारों का समान पात्र मालूम देता है। विदूषक का कर्तव्य अधिक भोजन करना, पेटूपन दिखाना या तोंद फुला कर हँसाना होता है। इस से आगे, न तो विदूषक ही का कुछ कतव्य रह जाता है और न हमारे कवियों ही ने विदूषक को इस नपे-तुले हास्य की सीमा से बाहर निकाल ना उचित समझा और इस तरह यह साहित्य का प्रधान अङ्ग संस्कृत साहित्य में भङ्ग हो कर रह गया दिखाई देता है!

हास्य केवल समय को हँस कर टालने की ही वस्तु हो, ऐसा भी नहीं है। वैद्यक और डॉक्टरी के अनुसार हास्य स्वास्थप्रद है। वैद्यों और डॉक्टरों का 'ख़ुश्की और गर्मी' के विषय पर मतभेद भले ही हो, लेकिन हास्य दीर्घ जीवन और स्वस्थ

जीवन के लिए आवश्यक है, इस पर दोनों, न केवल एकमत हैं, बल्कि इनका कहना है कि हास्य सौन्दर्य भी प्रदान करता है। वैद्य समुदाय हास्य को 'सर्व-वर्गीय च्यवन प्राश' कहे और डॉक्टर सभी जीवनदायक विटेमिन् संयुक्त पदार्थ! इस नाम-मात्र के मतभेद को हम गिनती में लाना नहीं चाहते।

सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य भेंट करने का कार्य यदि हिन्दी संसार में किसी ने किया है, तो उनमें स्वनाम-धन्य पत्रकार और ख्यातिनामा प्रकाशक श्री० आर० सहगल का नाम सब-प्रथम आएगा। "चाँद", "भविष्य" और "कर्मयोगी" में हमेशा व्यगात्मक कविता, कहानी और सामयिक चुटकुले छपते रहे हैं। उपरोक्त पत्र-पत्रिकाओं में जहाँ एक ओर गम्भीर और गवेषणापूर्ण सामाजिक और साहित्यक तथा ओजस्वी राज-नीतिक लेख निकलते रहे हैं वहाँ "रोनी सूरतों" को भी खिल-खिला कर हँसा देने वाला व्यङ्ग और विनोदपूर्ण सामग्री भी मिलती रही है। "गुलदस्ता" मासिक तो हिन्दी संसार की अकेली पत्रिका थी जो ज़िन्दगी को ज़िन्दादिली प्रदान करती थी। 'कुमकुमे' नाम की हास्यरस की कहानियों का एक संग्रह भी सहगल जी हिन्दी संसार को भेंट कर चुके हैं। और अब 'हास्य-रस की कहानियाँ' देकर हिन्दी साहित्य को सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य कहलाने का गौरव प्रदान कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य में हास्य-रस का कितना अभाव है, यह छिपी हुई बात नहीं। यदि इधर-उधर से कुछ इकट्ठा भी कर

लिया जाए तो 'भाँग' और 'भोजन' के आस-पास घूम कर रह जाने वाली तथा-कथित हास्य-रस की रचनाएँ मिलती हैं। उन में भी अधिकांश ऐसी हैं जो अपनी सामग्री, शैली व कलेवर के कारण तो पाठकों को हँसा नहीं पातीं चाहे अपने भद्दे और फूहड़पन से भले ही हँसा दें। यह अखरने वाली कमी किसी भी हिन्दी प्रेमी के लिए असह्य हो सकती है।

हिन्दी राष्ट्रभाषा बन चुकी है। निकट भविष्य में संसार की बड़ी-बड़ी भाषाओं में इसे यथोचित स्थान मिलने की सम्भावना है। ऐसी परिस्थिति में हिन्दी साहित्य के भण्डार में किसी भी विषय पर उपयुक्त साहित्य की त्रुटि हिन्दी भाषा के भविष्य पर आघात का कारण हो सकती है। अतः कर्मयोगी प्रेस का यह प्रयत्न स्तुत्य और सराहनीय है कि वह हिन्दी साहित्य को सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य बनाने में ऐसी व्यवस्था कर रहा है कि किसी को उँगली उठा कर यह कहने का गुञ्जाइश न दी जाए, कि इसमें यह त्रुटि मौजूद है।

हास्य-विषयक हिन्दी तथा उर्दू के लेखकों की चुनी हुई और बिखरी हुई रचनाओं का चयन करके भारती का भण्डार भरने में उनका प्रकाशन कितना आवश्यक है, यह लिख कर समझाने की आवश्यकता नहीं। उर्दू में लिखी हुई व्यङ्गात्मक रचनाओं का हिन्दी रूपान्तर, उर्दू लिपि से अनभिज्ञ साहित्य-प्रेमियों के हितार्थ और हिन्दी के लेखकों की सहायतार्थ कितना आवश्यक है और इससे लेखकों को कितना प्रोत्साहन

तथा स्फूर्ति मिलेगी, इसका अनुमान लगाना कठिन न होगा। विनोद, व्यङ्ग और हास्य का मनुष्य के जीवन में क्या और कैसा स्थान रहता है, यह हमारे दैनिक जीवन अध्ययन करने पर भली प्रकार जाना जा सकता है। अच्छे और सुलझे हुए व्यङ्ग से मनुष्य के मन, मस्तिष्क और शरीर पर ऐसा चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ता है, कि जिससे नई चेतना और स्फूर्ति आ जाती है। निद्रा और आराम से शरीर की थकान दूर की जाती है परन्तु हास्य मन, मस्तिष्क और शरीर को मुर्झाने नहीं देता। हास्य के भी अंग हैं—मन्द मुस्कान, मुस्कान और खिलखिला कर हँसना तथा यह मन, मस्तिष्क और शरीर पर अपना प्रभाव डालते हैं।

भद्दा व्यङ्ग, चोट करना या खिल्ली उड़ाना हास्य नहीं, यह तो द्वेष और मनमुटाव का कारण बन सकता है। व्यङ्ग वही है जो चोट किए जाने पर भी चोट मालूम न दे और आदमी मुस्काने या खिलखिला कर हंसने पर मजबूर हो जाए। फब्ती कसने और चुटकी काटने का ढंग हमारे हिन्दी के हास्य लिखने वालों को स्वर्गीय जॉर्ज बर्नार्ड शॉ की कृतियों से सीखना चाहिए और देखना चाहिए कि सुन्दर और चुभता हुआ व्यङ्ग कैसे किया जाता है। उच्छृङ्खलता और हास्य में बड़ा अन्तर है। पगड़ी उछालने और मार्मिक एवं शिष्ट व्यङ्ग करने में तथा व्यङ्गात्मक चोट करने मे दिन और रात का अन्तर है यदि हमारे हास्य-रस के लेखक इन बातों क

ध्यान रख कर लेखनी का चमत्कार दिखाने लगें तो शीघ्र ही हिन्दी का हास्य रसात्मक साहित्य, लेख, कविताएं और कहानियाँ एक अद्भुत वस्तु हो सकती हैं।

हिन्दी भाषा को यदि अपना साहित्य भंडार विविध विषय सम्पन्न बनाना है तो निश्चित है, कि भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में करना ही होगा और प्रचलित शब्द भी अपना लिए जाने आवश्यक होंगे। ऐसा किया जाने पर साहित्य में वृद्धि तो होगी ही, साथ ही भडार में भी, जो कि हिन्दी को सर्वमान्य राष्ट्र-भाषा बनाने में भारी सहयोग देगा। हिन्दी केवल अपना शब्द सागर लेकर सारे भारत की साहित्यिक भूमि को सींचने से रही। आज हमारी भाषा में अङ्गरेजी के कितने ही शब्द आकर घुल-मिल गए हैं जिन्हें पढ़े-लिखे नागरिक और अनपढ़ ग्रामीण समान रूप से समझ सकते हैं और प्रयोग में भी लाते हैं। हमें ऐसे शब्द बुरे नहीं मालूम पड़ते। यही बर्ताव हमें उर्दू भाषा से करना है। उसके मूल्यवान साहित्य को अपनाना ही पड़ेगा। उपेक्षा करने से हिन्दी साहित्य घाटे में रहेगा। हास्य को ही ले लीजिए। क्या गद्य और क्या पद्य, सभी ऐसा है जिस से हिन्दी की हास्य रसात्मक रचनाओं की तुलना नहीं हो सकती। स्वर्गीय महाकवि अकबर इलाहाबादी की व्यङ्गोक्तियों की यदि उपेक्षा की जाए तो उसकी पूर्ति हम क्या और कहाँ से लेकर कर सकते हैं? अकबर के बाद भी यदि किसी ने

व्यङ्गात्मक काव्य लिखा है त वह उर्दू भाषा में ही सफलना-पूर्वक लिखा गया है। यही अवस्था कहानी साहित्य और निबन्धादि की है, चाहे अब मान लीजिये या आगे जा कर, परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि उर्दू में व्यङ्गात्मक और ऐसा, जो कसौटी पर खरा उतर सके, लिखने वाले अधिक हैं। यदि यह कह दिया जाए कि सफल हास्य रस के लिखने वाले हैं ही उर्दू में तो यह अतिशयोक्ति न होगा। हिन्दी भाषा में लिखने वाले वही लेखक सफलता और ख्याति प्राप्त कर सके हैं, जो उर्दू भाषा के पण्डित और सिद्धहस्त लेखक थे। स्व० मुं० प्रेमचन्द, स्व० कौशिकजी, स्व० मुन्शी नवजादिक लाल श्रीवास्तव; और सर्व श्री० कृष्णचन्द्र, कन्हैय्यालाल कपूर, उपेन्द्रनाथ अश्क और सुदर्शन जी के शुभनाम लिए जा सकते हैं जो पहले केवल उर्दू में ही लिखते रहे हैं और जो उर्दू भाषा के बड़े सफल लेखक माने जाते थे। बतलाना न होगा, हिन्दी को भी इन की देन सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। सर्व श्री० शौकत थानवी, सैयद इम्तियाज अली, चिराग़ हसन, हसरत और हाजी लक़लक़ आदि मुसलिम लेखक हिन्दी में नहीं लिखते, परन्तु हास्य-रस के माने हुए लेखक हैं। आज हमारा राजनीतिक और सामाजिक वातावरण कुछ ऐसा बन गया है कि उसकी छाप प्रत्येक दिशा में पाई जाने लगी है। डर है कि कहीं यह उपेक्षनीय वातावरण हमारे साहित्य और भाषा को दूषित न कर डाले। ईश्वर न करे कि ऐसा हो अन्यथा यह चीज़ हिन्दी साहित्य

को भारी क्षति पहुँचाने का कारण हो सकती है। उपरोक्त हिन्दी और उर्दू के लेखकों की नामावली में हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही शामिल हैं और कहना न होगा कि सभी क़लम के धनी हैं। इन में से यदि कुछ एक को, केवल इसलिए अलग कर दिया जाए, कि यह किसी एक भाषा या एक धर्म के अनुयाई हैं तो इससे हिन्दी के हास्य-रसात्मक साहित्य को कितनी हानि पहुँच सकती है, यह अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। हिन्दी के व्यङ्ग लिखने वालों की तुलना उपरोक्त लेखकों से करके अपने विषय में आप स्वयं जान जायेंगे कि हम इस दौड़ में कहाँ तक उनके साथ हैं और क्या हमारी वतमान परिस्थिति, यदि हमने इस विषय पर आज के वातावरण से उठ कर विचार न किया तो ऐसी नहीं, कि हम इस दौड़ में पिछड़ जायेंगे? आज हम साथ साथ भी तो नहीं हैं, आगे निकल जाने की बात करना बेकार है।

इस क्षेत्र में आज की भारत और पाकिस्तान के बीच राजनीतिक खींचातानी या हिन्दी-उर्दू के झगड़े को सामने रख कर कुछ सोचना या एक ऐसी भावना बना लेना जो हिन्दी भाषा का साहित्यिक भण्डार भरने में बाधा डालने वाली हो, ख़ुद हिन्दी के लिए हानिकारक है। इसी सद्‌विचार से 'हास्य-रस की कहानियाँ' ऐसे लेखकों की रचनाएँ लेकर हिन्दी संसार के सामने रक्खी जा रही है जो हास्य-रस के कुशल और सिद्धहस्त लेखक हैं। हमें विश्वास है कि पाठक भी इसे उसी दृष्टि से

देखेंगे और अपनी गुण ग्राहकता का परिचय देंगे, जिस दृष्टि-कोण से कि यह उनके सामने रक्खी जा रही है। हिन्दी में हास्य-रस के वर्तमान लेखकों या लिखने के इच्छुकों को इस संग्रह को पढ़ कर इन कहानियों की भाषा, इनकी लोच एवं शैली से लाभ उठाना चाहिए।

हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्रों में जो चुट-कुले छपते हैं वे प्राय: यूरोप से आने वाले पत्र-पत्रिकाओं से उद्धृत किए जाते हैं। प्राय: हर रोज होने वाली घटनाओं से आवश्यक चुटकीली सामग्री लेकर चुटकुले और व्यङ्गात्मक साहित्य पैदा कर लेना उन लोगों के लिए कठिन नहीं। सम्पन्न और रोटी की फ़िक्र से परे रह कर सोचने वालों के लिए ऐसा करना सम्भव है। परन्तु हमारे लिए अभी ऐसा कुछ सोचना 'बेवक़्त की शहनाई' होगा अत: हमें अपने यहाँ के इधर-उधर बिखरे हुए व्यङ्गात्मक साहित्य को एकत्र करके संतप्त और जीवन संघर्ष में उलझे हुए समाज को क्षण भर हँसने-हँसाने और स्फूर्ति देने का प्रयत्न करना होगा ताकि समाज में नव चेतना आ सके और प्रत्येक भयानक परिस्थिति का हँसते-हँसते स्वागत करके उससे जूझ कर विजयी होने की वीरता प्राप्त की जा सके।

हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाना, हँसते-हँसते सीने पर गोलियाँ खाना, अमुक कार्य की पूर्ति में हँसते हुए अमुक ने प्राण दे दिए, ऐसे मुहावरे हैं जिनका उल्लेख

इतिहास के पृष्ठों में आज भी सुरक्षित है। अतः हँसते-हँसते सब कुछ कर गुजरने की बात नई नहीं है, बल्कि हँसते हँसते दुख और दुखद परिस्थिति से टक्कर लेना वीरता है, ऐसा मानना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में और आज के ज़माने में 'हास्य रस की कहानियाँ' हिन्दी संसार के सामने रखना एक आवश्यक, उपयोगी और सामयिक प्रयत्न ही माना जाएगा और इसका समुचित स्वागत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

चम्बा,
(हिमाचल प्रदेश)

—दौलतराम गुप्त
२०-११-१९५०

आख़िर खो ही गया !

श्रीमतीजी ने स्टेशन पर टिकट सँभालते हुए कहा—"देखो सफ़र लम्बा है और इण्टर क्लास की गड़बड़, कहीं खो न जाना फिर !"

मैंने ग़ौर से इस अहमक़ बीबी को देखा। मरदाना जज़बात की क्या यह तौहीन नहीं है? अरे, ओ हौआ की बेटी ! ज़रा ग़ौर कर कि यह नक़ाब चेहरे से हटा कर सर पर डालते ही, तेरे होश जाते रहे ! गोया पर निकल आए ! मैंने कुछ बिगड़ कर कहा :

"तो हम कोई बच्चा तो हैं नहीं !"

"माफ़ किजिए", श्रीमतीजी ने एक ताने के लहज़े में कहा—"जैसे आप कभी पहिले तो खो नहीं गए हैं।"

मैं क्या अर्ज़ करूँ, मुझे कैसा ग़ुस्सा आया है ! ज़रा कोई इस मुन्तज़िम बीबी से यह पूछे कि नेकबख़्त पहिले तो यह बता कि तेरा मियाँ तुझे पहुँचाने जा रहा है या तू उसे पहुँचाने जा रही है? वह तेरा ज़िम्मेदार है या उसकी तू

आँखों पर पहरा लगाए रहती हैं। इधर किसी नकटी-चपटी औरत के पाँव के जेवर की आवाज़ छम से आई नहीं; कि उधर श्रीमतीजी की आँखें बग़ैर उस औरत को देखे हुए मेरी आँखों पर जम जाती हैं, कि कहीं उसे देखता तो नहीं हूँ!

क़िस्सा मुख़्तसर यह, कि बक़ीया सामान भी वहीं आ गया। जगह काफ़ी थी और अब हम जम कर बैठ गए। इतमीनान से और फिर बहुत जल्द हमें यह भी मालूम हो गया, कि ऐसा क्यों किया गया है। महज़ इसलिए, कि न तो हम ख़ुद कहीं खो सकें और न लोटा-ओटा फेक सकें। और फिर टीप का बन्द मुलाहज़ा हो—"तुम्हें बार-बार पैसे-पैसे के लिए दौड़ कर आना पड़ता है।"

❀ ❀ ❀

हमने कहा कि 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ख़रीदेंगे, ताकि ताज़ी ख़बरें पढ़ें! जवाब में हमें तस्वीरदार हफ़्तावार 'टाइम्स' अख़बार दिखाया गया, जो पाँच-छः दिन का बासी था और कुली से पेश्तर ही मँगवा लिया गया था। अब हुक्म यह, कि देखिए इसमें ख़बरें! गो फ़िलहाल ख़ुद तस्वीरें देखनी थीं। जब हमने कहा कि यह तो पुराना है, तो जवाब मिला कि "सब ठीक है।" और फिर जब हमने ताज़ा ख़बरों का उज़्र किया तो जवाब मिला कि "जल्दी क्या है? ख़बरें आगे चल कर किसी से पूछ लेना। वरना कोई और ख़रीदेगा उससे माँग कर पढ़ लेना।" चलिए छुट्टी हुई। ख़ैर, सब्र किया।

२

गाड़ी चली और बहुत जल्द क़रीब के बैठने वालों से हमने बातें करनी शुरू कर दीं। एक संजीदा सूरत ख़ाकी ड्रेस वाले ने मुझे बड़े गौर से सर से पैर तक देखा। इस तरह कि मुझे शुबहा हुआ, कि अब यह कहता है कि मैंने आपको कहीं देखा है। लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि यह बात नहीं है, बल्कि वजह और है। वह यह समझा, कि मैं निहायत ही रद्दी सूट पहिने हूँ, जैसे कि मालूम दे कि मैं किसी गोरे के तीजे में गया था और वहाँ उसके दादा का सामान नीलाम हो रहा था, उसमें से ले आया।

इन हज़रत ने मुझे कुछ मशकूक (सन्दिग्ध) नज़रों से देख कर श्रीमतीजी की तरफ़ भौंओं से इशारा करके कहा :

"यह कौन हैं ?"

मैं—"क्यों ? यह..."

वह—"आप उनके साथ हैं ?"

मैं—"जी हाँ, मैं........।

वह—(बात काट कर) " नौकर हैं आप ?"

मैं—"जी क्या फ़र्माया आपने ?" (हालाँकि मैंने सुन लिया था)

वह—"मेरा मतलब है कि आप..." (ख़ामोश)

मैं—"मेरी बीबी हैं यह।" (गर्व से)

वह—"बीवी !" (इस तरह गोया मैं झूठ बोलता हूँ—झक मारता हूँ)

मैं—"जी हाँ ।"

यह कह कर मैंने उस आदमी-नुमा शक्की हैवान को देखा। बख़ुदा उसकी ज़ेरे-लब मुस्कुराहट और आँखों की ग़ुस्ताख़ाना हरकत ! गोया वह यक़ीन नहीं कर सकता, और नहीं करेगा ! मुझे कैसा ग़ुस्सा आया है इस वहमी पर, कि बयान से बाहर ! गुफ़्तगू ख़तम करने के बाद; यानी यक़ीन करने से इन्कार करने के बाद, वह सिगरेट का धूँआ दूसरी तरफ़ एक "हूँकारे" के साथ नहीं छोड़ने लगा, बल्कि ज़ोर देकर गोया कह रहा था मुझसे कि "तू झूठ बकता है।"

मैं भला यह कब गवारा कर सकता था। मैंने उनका हाथ पकड़ कर अपनी तरफ़ मुतवज्जह करते हुए कहा—"जनाब को इस बारे में आख़िर शक क्यों हुआ ?"

यह मैंने बहुत आहिस्ता से कहा कि श्रीमतीजी न सुन लें, वरना नातक़ा बन्द करतीं कि ऐसी बातें शुरू ही क्यों कीं। लेकिन इस बदतमीज़ और शक्की मिज़ाज को तो देखिए कि मज़ाकिया लहजे में "भक" से धूआँ मुँह से निकाल कर कहता है और वह भी मुस्कुरा कर निहायत ही आहिस्ता से, गोया राज़दाराना लहजे में—" जी...मगर आहिस्ता बोलिए।"

यह कह कर उसका लापरवाही से दूसरी तरफ़ मुँह करके धूआँ उड़ाने लगना। मैं जल कर कबाब हो गया। मैंने दिल

में कहा कि ओ बदनसीब तू मत यक़ीन कर शक्की दरिन्दे—जा चूल्हे में! बीबी तो यह हमारी सोलह आना है—बिला शिरकते-ग़ैर, भाड़ में पड़ हमारी बला से, जहन्नुम में जा! मत यक़ीन कर!!

३

इसके बाद मैंने ख़ुद का ग़ौर से मुआइना किया। सुना करते थे, कि पहिले ज़माने में लोग कपड़े घड़ों में रखते थे, जब सन्दूक़ आम न थे। आज पता चला कि यह रवायत बिलकुल ग़लत है। बात दर-असल यूँ होगी कि ऐसे लोगों की बीबियाँ मैले कपड़े निकाल कर अपने शौहरों को ज़बर्दस्ती पहिना देती होंगी। चुनान्चे मुझे श्रीमतीजी पर बेहद ग़ुस्सा आया। सरक कर ज़रा क़रीब आया। वह समझीं कि मैं कुछ ज़रूरी बात कहना चाहता हूँ। लिहाज़ा उसने भी कान बढ़ाया आगे, और मैंने चुपके से उनके कान में कहा—"क्यों जी यह तुमने आख़िर हमें समझा क्या है?"

इसके जवाब में उसने मुझे भौंहें सिकोड़ कर इस तरह देखा कि मुझे यह शुबहा हुआ कि दिल में कह रही है बजाय ज़बान से कहने के—"अहमक़।"

फ़ौरन मुझे इस तरह गुस्ताख़ाना नज़रों से उसके देखने पर और भी ग़ुस्सा हुआ और फिर मैंने इसी तरह कहा:

"आख़िर तुमने हमें समझ क्या रक्खा है?"

"हूँ!" उसने आख़िर को कहा—"ख़ैर तो है?"

मैंने भुन्ना कर कहा—ये हमारे अच्छे-अच्छे सूट, मँहगे-वाले, बल्कि सेकिण्ड क्लास में सफ़र करने वाले सूट, उम्दा-उम्दा टाइयाँ व़ग़ैरह किस दिन के लिए तुमने बनवा रक्खी हैं? क्यों नहीं आखिर तुम पहिनने देतीं? चलते वक़्त हमने तुम से कितना-कितना कहा और कैसे-कैसे कहा, कि यह सूट मैला और दस दफ़ा का पहिना हुआ है। जिससे दो-चार दफ़ा जूता भी पोंछा जा चुका होगा, यह क्यों पहिनने को दिया? क्यों नहीं तुमने......"

बात काट कर, वह भी आहिस्ता मगर तेज़ी से बोलीं—दीवानों की-सी बातें तो करो मत; जानते हो, सफ़र में कपड़े ख़राब हो जाते है।"

अब आपही इन्साफ़ कीजिए; कि ऐसे नामाक़ूल जवाब से मैं क्यों कर कबाब न हो जाता? ख़ुद तो पहिने हुए है रेशम के कपड़े, रेशम के मोज़े, ग्यारह रुपए वाला जूता और हम पहिने हुए हैं एक मैला कुचैला सूट, टाई ऐसी, जैसे भंगिन का कमरबन्द, कॉलर ऐसा, जैसा टॉमी का पट्टा और पैर में हमारे एक अंगरेज़ी जूता! यूँ कहिए एक नकटा-मुण्डा! इनके कपड़े तो मैले न होंगे और हमारे हो जायँगे। या अल्लाह! इन बदसूरत शौहरों की ख़ूबसूरत बीबियों ने आखिर दिल में सोच क्या रक्खा है! मैं जल ही तो गया और मैंने बल खाकर कहा:

" और यह तुम जो अपने अच्छे कपड़े पहिने हो,' ये मैले ा होगें ?

"रेल में ये बातें नहीं......" यह कहकर, गोया एक घसीट का पेंच था, कि खींच कर वह काटा ! जवाब आँखों से .गुस्सा के इज़हार के ज़रिए से खतम !

मैंने भुन्ना कर इस चटाखेदार बरजस्तगी पर गोया .गुस्सा का घूँट-सा पिया; मगर सब्र आखिर को न हुआ और फिर मैंने जोश में आकर कहा :

" आखिर यह भी कोई........ ।"

मगर मेरी बात तेज़ी से काट दी गई, यह कह कर कि "और जो सफ़र में कोई मिलने-जुलने वाली मिल जाय तो ?........बस बच्चा बनते हैं।" यह कह कर दूसरी तरफ़ मुँह मोड़ लिया। गोया आगे बहस नामन्ज़ूर है। मैं सिवा इसके क्या करता, कि जलता और सुनता रहा !

इतने में गाड़ी रुकी। एक सब-इन्सपेक्टर साहब मय अपनी फ़ौज के और इस क़दर सामान के 'धक-पेल' करते हुए दाखिल हुए कि, .खुदा की पनाह। घबड़ा कर श्रीमतीजी ने कहा —हमें सेकिण्ड क्लास का टिकट बनवा दो......जल्दी...... जल्दी।"

मैंने कहना चाहा —"मगर।"

"जल्दी...यह लो...जल्दी-जल्दी।" यह कह कर मुझे टिकट दिए और फिर—"जल्दी करो"। मैंने सोचा अच्छा है

सेकिण्ड क्लास में चलकर उससे .खूब लड़ूँगा; और फ़ौरन दूसरा सूट निकाल कर पहिनूँगा; लिहाज़ा मैं टिकट बनवाने दौड़ा।

४

इन रेलवे बाबुओं को इतनी जम्हाइयाँ आती हैं और फिर ऐसी-ऐसी, कि छोटी-छोटी आँखें मोटी-मोटी चेहरों पर से खो-खो जाती हैं। दिल का .खून सिमट कर नाक की फुनगी पर आ जाता है और फिर उसके साथ अँगड़ाइयाँ अलावा! ऐसी बे-तुकी और बे-मौक़ा, कि बयान से बाहर। यह नहीं देखते कि हमारा वज़न क्या है, और जिस कुर्सी पर हम .खुद धरे हुए हैं वह कैसी है? इन्हें तो इससे बहस ही नहीं; बस अँगड़ाई लेने से काम। मैंने तो कहा कि हज़रत मुझे कानपूर तक के सेकिण्ड क्लास के टिकट बनवाने हैं। उधर इसके जवाब में अव्वल तो मुझे उन्होंने ग़ौर से देखा और शायद किसी टूटे-फूटे अंगरेज़ का बटलर समझ कर जवाब में अंगड़ाई लेना मुनासिब समझी (मय जम्हाई)। कुर्सी जो चरचराई तो एक दम से ऐसा मालूम हुआ, कि जैसे जादू के ज़ोर से चेहरे पर आँखें पैदा हो गईं। यह इटावा का स्टेशन था और मैं पुल पार करके प्लेटफ़ॉर्म के उस तरफ़ गया था टिकट बनवाने। बाबू जी ने बड़ी इनायत की जो क़दरे-ताम्मुल के बाद एक लापता टिकट-चैकर का हवाला दे दिया। मैं उनकी तलाश में लग गया और उन्हें हर जगह तलाश किया। कोई जगह न छोड़ी, सिवा स्टेशन के पाख़ाने के। ग़र्ज़ इसी तलाश में था, कि वह

ख़ुद मुझे तलाश करते आ पहुँचे। मैंने टिकट हवाला करके बदलने की फ़रमाइश की तो उन्होंने कहा—"दाम" और मैंने जवाब में कहा—"अरे!" बटुआ रुपये-पैसे का श्रीमतीजी के पास! लिहाज़ा दौड़ा एकदम से टिकट-विकट छोड़ कर दाम लेने। दौड़ा ही था, कि ख़याल आया कि कहीं टिकट-चैकर मय टिकट के ग़ायब न हो जाय; लिहाज़ा दौड़ा वापस और उधर रेल ने दी सीटी। जब तक मैं झपट कर उनके हाथ से टिकट वापस लूँ, रेल चल दी! अब बजाय पुल पार करने और उस तरफ़ पहुँचने के मैं रेल की पटरी फाँद कर दौड़ा बुरी तरह और जो डिब्बा सामने आया, उसी में बैठ गया। अब हाँफते-हाँफते खिड़की से सर निकाल कर बाहर जो देखता हूँ तो रेल तो प्लेटफ़ॉर्म से बाहर और श्रीमती जी खड़ी हुई हैं मय असबाब के! बौखलाया हुआ तो आया ही था बस देखते ही उछल पड़ा। इरादा किया कि खिड़की खोल कर कूद जाऊँ; मगर एक बड़े मियाँ बैठे थे, मोटे से। उन्होंने शायद सोचा कि यह बावला है, लिहाज़ा हाथ पकड़ लिया। जल्दी में झटके पे झटके देता हूँ, मगर हाथ नहीं छोड़ता। वह न मालूम क्या पूछते हैं, और मैं क्या कहता हूँ। खिड़की उन्होंने बन्द करते हुए मुझे छोड़ा तो मैं ज़ञ्जीर खींचने दौड़ा। दो-तीन झटके दिए मगर भला उसे कहाँ जुम्बिश। दूसरों से कहता हूँ तो वह वजह पूछते हैं, यह सब पल भर ही में हो गया। वजह बताई तो फिर बड़े मियाँ ने हाथ पकड़ कर बिठा लिया और

कहा—"आख़िर इस क़दर घबराहट क्यों रहे हैं? तार दे देना अगले स्टेशन पर से, और दूसरी गाड़ी से वापस आ जाना।" मेरी समझ में बात आ गई, झाँक कर फिर श्रीमतीजी को देखने की कोशिश की। ख़याल आया कि ठीक है, ऐसा हो चुका है। उस दफ़ा जब रह गया था तो श्रीमतीजी चली गई थीं। बाद में उसने कहा था कि मैंने ग़लती की, अगले स्टेशन पर उतर कर तुम्हें तार दे देती और तुम आ जाते। ठीक है। मैंने कहा—दे दूँगा और वह आ जायगी।

५

एक्सप्रेस के रुकने का दूसरा स्टेशन जसवन्तनगर था। वहाँ उतरा तो पेशतर ही से तार मौजूद था। लिखा था कि इन नाम के आदमी को रेल के डिब्बे से यह कह कर उतार लो कि तुम्हारी बीबी इटावा पर उतर गई हैं। मैं उतर ही चुका था। मेरे पास तार के पैसे भला कहाँ? मगर मालूम हुआ कि तार मुफ़्त दिया जायगा। लिहाज़ा मैंने तार दिलवा दिया कि "उतर पड़ा हूँ। घबड़ाना मत। दूसरी गाड़ी से चली आओ।"

मेरे यहाँ पहुँचने के थोड़ी ही देर बाद एक माल गाड़ी इटावा जा रही थी। मैंने दिल में सोचा कि फ़ुरक़त और जुदाई के सदमे कौन उठाए? बेहतर है, इससे ही क्यों न चले चलो? मालूम हुआ कि सेकिण्ड क्लास का टिकट लेना पड़ेगा। जब हमने कहा—रूपए हैं नहीं; तो यह भी तै हो

गया कि अच्छा, तुमको मुफ़्त पहुँचा दिया जायगा। हमने कहा बेहतर है, और .खुश थे कि गार्ड साहब ने बड़े इतमीनान से प्रोग्राम बनाया। लेकिन यह कि इतना तो यक़ीन था कि कभी न कभी यह गाड़ी ज़रूर ही जायगी। मगर यह पता न था कि वहाँ पहुँचेगी कब ? सवारी गाड़ी जो इसके बाद जायगी उससे पेशतर या बाद में। तहक़ीक़ात से मालूम हुआ कि सवारी गाड़ी बीच के किसी स्टेशन पर नहीं रुकेगी और यह ज़रूर रुकेगी। पहुँचने के बारे में उम्मीद थी कि सवारी गाड़ी से कुछ पहिले पहुँचेगी। लेकिन ऐसा न हुआ तो फिर शायद सवारी गाड़ी के भी आध घण्टे बाद पहुँचे। और फ़िलहाल तो यही पता नहीं था, कि यह मक्कार ठीक-ठीक छूटेगी कब। जहन्नुम में जाय ऐसी गाड़ी, हमने कहा। और इरादा बदल दिया, और लगे सवारी गाड़ी का इन्तज़ार करने।

इन्तज़ार भी बुरी चीज़ है। और फिर ऐसे मौक़े पर। तंग आकर हमने भी बड़े इस्तक़लाल से एक कुर्सी पर बैठ कर आँखें नीमबाज़ करके पैर हिलाना शुरू कर दिए। यहाँ तक कि थक गए, फिर बड़ी देर तक आँखें खोल कर सीटी बजाते रहे। उसके बाद फिर पैर हिलाए। ख़्वामख़्वाह घड़ी बार-बार देखी। शुबहा हुआ कि सूइयाँ चल नहीं रही हैं। कान से कई बार लगा कर देखा। बार-बार अपनी घड़ी में व.क्त देखा और फिर स्टेशन की घड़ी देखने गए ! कुछ बस न चला तो ख़्याल आया, कि लाओ न सही कुछ पानी ही पीएँ। पानी पीने जा रहे थे,

कि ख़याल आया कि पेड़ा खाकर पानी पीना ठीक रहेगा, पहुँचे पेड़े वाले के पास। कहा, दो आने के पेड़े देना। वह तोलने को हुआ तो ख़याल आया कि पैसे ? फ़ौरन उससे पेड़ों का भाव पूछ कर महँगे होने की वजह से ख़रीदारी से मुआज़रत चाही और वहाँ से सीधे प्लेटफॉम की कगर पर चहलक़दमी करना शुरू की। बहुत जल्द तै कर लिया कि इस तरह चहल-क़दमी करना चाहिए, कि हर क़दम नपा-तुला पत्थर के टुकड़े के अन्दर ही पड़े। चुनाञ्चे इन इन्तज़ाम से प्लेटफ़ॉर्म के किनारे-किनारे टहल कर उसके पत्थर दो दफ़ा गिन लिया। उनके बाद सिगनलों को जाकर दबाना शुरू किया। एक कुली ने स्टेशन-मास्टराना शान से आकर रोका और बताया कि यह बात तो सख़्त मना है। क़िस्सा मुख़्तसर क्या बताएँ, कि किस तरह हमने व़क्त काटा है !

६

हमारी तरफ़ से श्रीमतीजी की तरफ़ गाड़ी पहिले जाती थी। और इसी का हमें इन्तज़ार था। गाड़ी आई और हम ब़गैर टिकट लिए बैठ कर रवाना हुए; क्योंकि हमारे पास टिकट मौजूद ही थे। रवाना हुए तो आख़िर क्यों न पहुँचते? पहुँचे, और यह सोच कर, कि श्रीमतीजी वेटिंग रूम में बैठी होंगी, उसमें दनदनाते घुसे चले गए। वहाँ बजाय श्रीमतीजी के, एक मोटा-सा अंगरेज़ धरा था। उसने सोचा होगा कि यह बटलर किधर से घुस आया। वह बोला—"हूज़...डैट......?"

उल्टे पाँव लौटे वहाँ से। हमें भला कहाँ फ़ुर्सत कि अंगरेज़ से उलझें या उसे जवाब दें। इधर देखा, उधर देखा, तरह-तरह के शक और शुबाहात आ रहे थे। एक बाबू साहब मिले। उनसे हमने पूछा :

"क्यों जनाब ?"

"फ़रमाइए"

मैंने कहा—"यहाँ पर एक मुसलमान लेडी.............. मुसलमान औरत ?"

"हाँ, हाँ, वह बोले, वही न जिनके मियाँ छोड़ कर उन्हें आगे चल दिए। अजीब अहमक हैं वह भी... (एक दम से कुछ शुबहा करके)...मगर आप ?...वह तो गईं शायद।"

"कहाँ गईं ? मैंने ग़ुस्से को ज़ब्त करते हुए कहा। और फिर वैसे भी परेशानी ग़ुस्से पर ग़ालिब थी !

"अगले स्टेशन पर......शायद जसवन्तनगर।"

"कब ? कैसे ? हैं ! कब ?" मैंने हवास-बाख़्ता होकर पूछा।

"मालगाड़ी पर गईं......असबाब तो उनका जाते मैंने भी देखा था...ज़रूर गई होंगी। ......गईं......मगर... . मगर आप ?" (उन्होंने मुझे सर से पैर तक देखा) मैंने कहा—"वह मेरी बीबी हैं ?" यह कह कर मैंने दूसरी तरफ़ क़सदन नज़र की।

"आप की ?" यह कह कर शक करके वह चलते-चलते रुक गया ! "आपकी ?" उसने फिर कहा।

"जी हाँ।" मैंने "हाँ" करके कहा—"तहकीकात करके देख लीजिए।"

"ओ हो माफ़ कीजिएगा" उसने कहा—"आइए।" और यह कह कर वह आगे चला। हम दोनों बुकिंग ऑफ़िस पहुँचे। वहाँ तहक़ीक़ की तो मालूम हुआ कि वह गईं मालगाड़ी से। और फिर मालगाड़ी भी कौन-सी? वह जो रास्ते में छोटे स्टेशन पर हमारी गाड़ी को मिली थी!

अब ज़रा ग़ौर कीजिए, कि एक तो वैसे ही माशाअल्ला ख़ूबसूरत! फिर जोरू गड़बड़ में पड़ जाने की वजह से और भी बदहवासी। लाख यक़ीन दिलाता हूँ इन नामाकूल बाबुओं को कि जनाब ग़लती उस बेवकूफ़ बीबी की है, न कि मेरी; मगर वह मूँजी कहते हैं कि "जनाब वह तो बड़ी होशियार मालूम होती हैं। ग़लती ख़ुद आप ही की है कि आप क्यों चले आए, जब आपका रास्ता उधर ही था?"

अब बताइए कि मैं इन अहमक़ों से क्या यह कह देता कि हमें उसकी कशिश खींच लाई, जुदाई का दुःख खींच लाया। इतनी अक़्ल ही नहीं जो समझें। लगे कठहुज्जतियाँ और बहसें करने। मैंने बहुत कुछ कहा कि इस वजह से चला आया कि गाड़ी अव्वल इधर आती है। मगर यह मूज़ी रेलवे वाले अजी एक बकवास करने वाले और नालायक़ होते हैं। न मानना था, न मानें। क़ायल न होना था, न हुए। ख़ैर मैंने दिल में कहा कि इनके दिमाग़ रेल की सीटियों और इञ्जिनों की "छक-छक,

भक-भक" ने उड़ा दिए हैं, और फिर श्रीमतीजी एक चलता पुर्ज़ा, उसने भी कुछ लगाई होगी; लिहाज़ा ये सब क़ाबिले-रहम हैं। चुनाञ्चे उन लोगों को तो मैंने उनके हाल पर छोड़ा। और कहा उसने कि ख़ैर, ख़ता और ग़लती मेरी सही, अब आप ही इतनी अक़्लमन्दी करें कि एक तार दे दें उसको अगले स्टेशन पर कि मैं यहाँ हूँ, मगर ख़बरदार अब तुम वहीं रहना!

७

इसके बाद अब मैंने सोचा कि क्या करना चाहिए, गाड़ी में बहुत वक़्त था। भूक अलग लग रही थी। सोचा कि ज़रा शहर में चल कर इस्लामिया स्कूल के पुराने साथियों में से किसी को ढूढ़ें? चुनाञ्चे पहुँचे एक साहब के यहाँ जिन्हें हमने आठवीं जमात में अर्सा हुआ छोड़ा था और यक़ीन था कि अब आ गए होंगे नवीं जमात में। ख़ुशक़िस्मती कि वह मिल गए और ख़ूब मिले। जो बातें होती हैं, वही हुईं। उनका यहाँ ज़िक्र फ़िज़ूल। अब यहाँ एक ग़लती हम से हो गई। वह यह कि ठीक टाइम गाड़ी का मालूम करना भूल गए। गाड़ी का इस क़िस्म का नाम याद रह गया, जैसे साढ़े दस बजे वाली; पौने पाँच बजे वाली वग़ैरह। यह ग़लती हमने उस वक़्त महसूस की जब वक़्त क़रीब आया और हमने अपने दोस्त से चलने को कहा। उन्होंने हस्ब क़ायदा यक़ीन दिलाते हुए रोकने की कोशिश की यह कह कर, कि गाड़ी में अभी

देर है। लिहाज़ा कुछ देर रुकने के बाद अन्दाज़न चल दिए। स्टेशन पहुँचे; जब तक एक्का पर से उतरें-उतरें, गाड़ी प्लेटफ़ॉर्म छोड़ चुकी थी।

या मेरे अल्लाह! अब मैं क्या करूँ। दोस्त से दाम लेकर तार दिया, श्रीमती जी को। गाड़ी इत्तिफ़ाक़ से छूट गई और हम दूसरी गाड़ी से शर्तिया आते हैं।

तार देने को तो दे दिया हमने; मगर यह सोच रहे थे कि क्या होगा! शामत आ जायगी। वह लड़ाई होगी कि बयान से बाहर। मगर अब मजबूरी थी। इन दोस्त को यह सज़ा दी कि कहा कि बैठो अब हमारे साथ, और रुख़सत करके जाना!

❀ ❀ ❀

गाड़ी आई और हम रुख़सत हुए। जसवन्तनगर का स्टेशन आया। हम समझे थे, कि स्टेशन पर असबाब लिये तैयार खड़ी मिलेगी, मगर वहाँ कोई भी नहीं। जल्दी से उतरे और एक क़ुली-नुमा आदमी से जो पूछा तो उसने जवाब दिया कि "सो रही होंगी वेटिंग रूम में"। मुझे क्या मालूम कि कम्बख़्त ने "माज़ी तमन्नाई" के नए सेग़ा में जवाब दिया है। चुनाञ्चे यह सुनते ही मैं वेटिंग रुम की तरफ़ दौड़ा, और ज़ोर से, साथ ही क़ुली को भी आवाज़ दी। क्या देखता हूँ कि दर्वाज़ा बन्द, वह भी अन्दर से। ग़ज़ब हो गया। मैंने दिल में कहा—सो रही है, घोड़े बेच कर, और यहाँ गाड़ी

निकली जाती है। झाँक कर देखा तो अँधेरा। जानता ही था कि बग़ैर बत्ती कम किए नींद ही उसे नहीं आती। अब मैंने बदहवास होकर किवाड़ घड़घड़ाना शुरु किए, मगर वहाँ जवाब नदारद। इतने में रेल ने सीटी दी। मैं और भी घबड़ा गया। समझ में न आया क्या करूँ। नाउम्मीद होकर अपने डिब्बे की तरफ़ लपकने को हुआ कि टोपी तो ले लूँ कि एक क़ुली ने रोका। रेल ने एक और सीटी दी। क़ुली से मैंने कहा—ठहरो, और लपका अपने डिब्बे की तरफ़ टोपी लेने। घबड़ाहट में न मालूम किस डिब्बे में घुसा। वहाँ से निकला और अब इधर ढूँढ़ता हूँ और उधर, मगर जल्दी में अपना डिब्बा नहीं मिलता। रेल ने एक और सीटी दी, और अब मुझे ख़याल आया कि वह है अपना डिब्बा। रेल चली और मैं लपका। मालूम हुआ ग़लती हुई और डिब्बा पीछे है। मगर अब गाड़ी ने रफ़्तार पकड़ी। खड़े का खड़ा रह गया। अपना डिब्बा सामने से गुज़रा। मैंने देखा कि वह सामने मेरी टोपी रक्खी है। एक आलमे बे-अख़्तियारी में जैसे टोपी उठाने की कोशिश की। मगर 'घड़-घड़-घड़' गाड़ी गई।

८

ख़ैर मैंने दिल में कहा—टोपी गई तो क्या हुआ! अच्छा ही हुआ जो श्रीमतीजी ने नई टोपी नहीं दी थी। अब इतमीनान से आठ घण्टे वेटिंग रूम में लड़ेंगे और फिर सोएँगे। सुबह

की गाड़ी से जाना होगा। चुनान्चे वेटिंग रूम के पास आया। दर्वाज़े को ज़ोरों से पीटा। वही क़ुली आया और कहने लगा "अन्दर से बन्द है और वेटिंग रूम का चपरासी पुश्त पर से ताला डालता है। आपको खुलवाना हो तो स्टेशन मास्टर से कहिए।"

मैंने ताज्जुब से कहा—तो इसके अन्दर कोई नहीं है? कोई औरत........."

"एक बेगम साहिबा आई थीं मगर वह तो गईं।"

"अरे!" मैंने उछल कर कहा—"किधर?"

"इधर" कह कर .कुली ने एक अन्दाज़-बेनयाज़ी से रेल की पटरी की तरफ उंगली उठा दी! मैंने इन्तहाई दर्जा परेशान होकर एक गहरी साँस ली। जी में आया कि इन रेलवे वालों से ख़्वाह-मख़वाह लड़ पड़ूँ। अब मुझे पता चला कि पुराने ज़माने की बैलगाड़ियों के सफ़र में क्या-क्या फ़ायदे थे। लाख तकलीफ़ें थीं मगर ब-ख़ुदा इस दर्जा पस्त कर देने वाली कोई तकलीफ़ न होगी। श्रीमतीजी की यह हरकत क़तई नाक़ाबिले माफ़ी है। उसको हर्गिज़-हर्गिज़ नहीं जाना चाहिए था। आख़िर क्यों चल दी? कैसे चल दी? उसे हक़ क्या था चल देने का? .ख़ैर, देखा जायगा। इसी तरह मैं देर तक बल खाता रहा मगर बहुत जल्द क़ायल होना पड़ा कि रात का वक़्त है और मौसम सर्दी का है और दुनिया में कोई चीज़ अलावा हैरानी और परेशानी के और भी है और इसका नाम शायद नींद

है—मगर बहुत जल्द जाड़े ने कहा—क़िबला दो आलम, न तो रात ही कोई चीज़ है और न नींद, अगर है भी तो बस ख़ाकसार ! और यही मुझे तसलीम करना पड़ा। लेकिन चूँकि फ़िलहाल मुझे जाड़े पर कोई मज़मून नहीं लिखना है, लिहाज़ा मौसमी सख़्तियों का तो ज़िक्र छोड़िए, सिर्फ़ यह सोचिए कि आग तापते क़ुलियों के हल्क़ा में बैठकर अगर बदन को गर्मी पहुँचाना नामुमकिन था, तो यह भी नामुमकिन था कि बग़ैर ओढ़े-बिछाए सो रहूँ या एक और आदमी की एक मैली-सी रज़ाई छीन लूँ जो मुझे दिखा-दिखा कर ओढ़ रहा और ललचा रहा था। बस, यों समझिये कि मालूम होता था कि अब सुबह नहीं होगी और यों ही सुकड़ कर मर जायँगे। पैसा पास नहीं। हाँ, टिकट एक छोड़ दो अदद थे।

ज्यों-त्यों करके सुबह हुई, गाड़ी भी आई। बैठ भी गए। और मन्ज़िले-मक़सूद पर यह हुलिया लिए पहुँच भी गए कि रात के जागे हुए, और सुकड़े-सुकड़ाए मैला सूट पहिने और नंगे सर ! मगर वहाँ पहुँचे तो जनाब जोरू नदारद !

या मेरे अल्लाह। अब मैं क्या करूँ ? वह किधर गई। आख़िर कहाँ खो गई ? एक जगह और तलाश कर आया। मगर वहाँ भी पता नहीं। आख़िर तार दिया सुसराल और वहाँ से जवाब आया कि ब-ख़ैरियत पहुँच गईं, जैसे वहीं जा रही थीं। अब सिवा इसके क्या चारा था कि यहाँ से रुपया क़र्ज़ लेकर सुसराल पहुँचें ! चुनाञ्चे पहुँचे।

६

शाम के कोई पाँच बजे होंगे जब मैं सुसराल पहुँचा। दाखिल हुआ हूँ तो क्या देखता हूँ कि सुसर साहब नमाज़ पढ़ चुकने के बाद दुआ माँग रहे हैं। दो-तीन छोटे-छोटे साले-नुमा लड़के एक चारपाई पर बैठे हुए थे। उछल पड़ा उनमें से एक और मैंने भी उसे पहचान लिया। किस तरह इस नालायक ने गोया .खुशी के लहजे में भर्राई हुई आवाज़ में चुपके से कहा है कि मैं जल-भुन कर कबाब हो गया। सारा चेहरा खुशी से चमक उठा और तेज़ी से चारपाई से वह कहता हुआ उतरा—"भाई मियाँ ...खो......खो गए...मिल...आ...।" यह कहता हुआ वह अन्दर दौड़ा! बकीया दोनों उसके पीछे। अन्दर पहुँच कर उसने शायद हलक फाड़ कर नारा मारा।..."तुम तो कहती थीं भाई मियाँ खो गए...मिल...। (सुनाई नहीं दिया) मैंने ससुर साहब को सलाम किया! इशारे से उन्होंने रोका और जल्दी दुआ खतम करके कहा—"वालेकुमअस्सलाम—जिन्दाबाद ......अरे मियाँ कहाँ खो गए थे?" (मुस्कुराते हुए)

मैं भला क्या कहता। जी में तो यही आया कि लुगत कहीं मिलती तो बताता कि किबला खो जाना और चीज़ है और रह जाना और चीज़ है। फिर यह खाकसार तो इस मर्तबा रह भी नहीं गया बल्कि आपकी साहबजादी साहिबा की बदौलत यह सब कुछ ज़हूर में आया है। मैं क्या जवाब देता। इखित-सार के साथ इस तरह समझाया कि तमामतर इल्ज़ाम श्रीमती

जी पर आए। मगर वह जो किसी ने कहा है कि अपने और बेगाने में फ़र्क़ है, सच कहा है। लगे हज़रत वही क़िस्सा बयान करने, यानी गिनाने, चीज़ें जो सफ़र में मुझसे खो गई थीं और फिर बाद में टीप का बन्द—"तुम्हारे साथ तो ममनूरात का सफ़र करना ख़तरे से खाली नहीं।"

इनसे निपट कर घर में पहुँचा तो श्रीमतीजी की एक परदादी क़िस्म की बहरी औरत को सास साहिबा चीख़-चीख़ कर उखड़े-उखड़े जुमलों में मेरे मिल जाने की ख़ुशख़बरी सुना रही थीं। "...आ गया......हाँ आगया......अभी..."

"मिल गया ?" बड़ी बी बोलीं।

"हाँ मिल गया......"

सास साहिबा बोलीं—"मिल गया......वह क्या खड़ा है...सलाम करता है।"

"जीता रहे। हज़ार उम्र हों......उनके दुश्मन खो जाएँ वग़ैरह-वग़ैरह।

बड़ी बी दुआएँ दे रही थीं कि घर की हड़बोंग सुन कर पड़ौसिन ने आवाज़ दी। बोल-चाल के लिए दीवार में एक सूराख़ कर लिया गया था। वहाँ एक और बुढ़िया खड़ी पड़ौसिन को कुछ बताने लगी। पूरी बात मैंने नहीं सुनी, मगर हाँ इतना ज़रूर सुना :

"......उसके दुश्मन......थे मिल......हाँ......अभी..."

अब मेरे ज़ब्त की इन्तिहा हो गई थी। जी चाहा कि फट पड़ूँ

और एक सिरे से सब की ख़बर ले डालूँ। आख़िर मैंने दबी ज़बान से कहा :

"कौन खो गया था? कोई बच्चा हूँ जो मैं खो जाता। ख़्वाम-ख़्वाह आप लोग... ।"

मैं एक दम से चुप हो गया। सामने अपने कमरे से श्रीमती जी उँगली से खामोशी का इशारा कर रही थीं। मैं उधर देख ही रहा था, कि एक और दादी ने पीछे से अपनी दिलचस्प आवाज़ में कहा—

"मेरी चमेली की कली! कहाँ खो गई थी?"

उन्हें देख कर मुझे वैसे ही हँसी आती है। हँस कर मैंने कहा—"दादी सलाम"। उसके जवाब में इन्होंने दुआ देकर मेरी बलाएँ लीं यह कहते हुए—"क्या बताएँ बेटे, जब से मैंने सुना कि तू खो गया दिल उल्टा आता था। सदक़ा के मैंने माश। माने हैं।"

"आप भी कैसी बातें करती हैं!" मैंने कुछ बुरा मानते हुए कहा—"कोई बच्चा हूँ जो मैं खो जाता। आखिर कोई बात भी है, जो सब कह रहे हैं कि मैं खो गया था।"

"फिर और कैसे खो जाते हैं?" दादी तेज़ होकर बोलीं —"आख़िर तेरी घरवाली कह रही है कि तू खो गया था। जिसका अता-पता न मिले कि किधर गया और कहाँ रह गया तो उसे तो यही कहेंगे कि खो गया..............। और फिर मियाँ अल्लाह रक्खे तुम हो भी बिलकुल भोले-

अहमक़ ! दुनिया-जहाँ की चीजें खोते-फिरते हो। आए दिन सुनने में आता है कि यह खो गया, वह खो गया। फिर कल सुना कि लो तुम ख़ुद कहीं खो गए !"

मैंने कुछ हँस-हँस कर और कुछ बिगड़ बिगड़ कर बताया कि न तो मैं खो सकता हूँ और न खो गया था और आयन्दा इस शरारत-भरे लफ्ज़ का इस्तेमाल मुझ पर न किया जाय। मगर यहाँ का तो बाबा आदम ही निराला है। जब मैंने कहा कि खोया नहीं, बल्कि रह गया था तो वह बोली कि "बेटा रह तो हमारी बच्ची गई थी, तुम तो आगे जाके न मालूम कहाँ खो गए।"

क़िस्सा मुख़्तसिर, थोड़ी देर इनसे और बहस की और जैसे बना इन से जान छुड़ाई। इसके बाद श्रीमतीजी से हुज्जत और बहस हुई ! उसने मुझे इल्ज़ाम दिया और मैंने उसे। वह इटावा पर उतरी और सेकिण्ड क्लास में बैठी और जब देखा कि मैं ग़ायब हूँ और रेल चल देगी तो उतर पड़ी और उधर मैं दूसरी तरफ़ से दौड़ कर बैठ गया। मैंने इरादा तो लड़ने का बहुत कुछ किया था मगर आयन्दा पर उठा रक्खा। मैंने उस से कहा कि तू खो गई थी और उसने कहा, तुम खो गए थे। अब फ़ैसला पाठकों के हाथ में है कि कौन अहमक़ है; बल्कि नहीं, अहमक़ तो दोनों हैं। सवाल यह कि ज्यादह अहमक़ कौन है और खो कौन गया था, मैं या वह ??

सगाई का साथी

उस रोज़ का ज़िक्र है। भाभी जान मायके से आईं, तो उनके मुख पर विचित्र ख़ुशी के चिह्न दिखाई दिए। यूँ तो हमारे यहाँ आने पर उनका तोबड़ा चढ़ा ही रहता था, क्योंकि यहाँ सुसराल में उनको काम करना पड़ता था और मायके में मौज उड़ाती थीं! परन्तु इस बार उनके स्वभाव के प्रतिकूल हर्ष की लहरें उनके मुख पर देख कर मैंने कहा—"ओह! भाभी जी, आप आ गईं! मैके जाना मुबारक हो! यक़ीन मानिए, भाभी जान! जब कभी आप मायके चली जाती हैं, तो घर सूना-ही सूना लगता है!"

मेरा यह कहना जो हुआ, तो भाभी जान सुनी-अनसुनी करके बोलीं—"हाँ क्या कहा, छोटे बाबू?"

"जी कुछ नहीं!" मैं लड़खड़ाते स्वर में बोला—"मैं तो कह रहा था, कि मैके से जल्दी पधार जाया करें। माता जी को तकलीफ़ होती है।"

भाभी जान ने एक अजीब अन्दाज़ से मेरी ओर देखा और बोलीं—"तुम्हें मेरा मैके जाना...!"

मैंने बात काटते हुए कहा—"नहीं, भाभी जान, मेरा मतलब...!"

"अच्छा, अच्छा, मैं समझ गई। तुम्हारे घर के सूनेपन को, और ख़ासकर तुम्हारे कमरे के सूनेपन को मिटाने के लिए एक 'चाँद का टुकड़ा' ढूँढ़ आई हूँ।"

मैं दबी आवाज़ में बोला—"बहुत-बहुत शुक्रिया!"

भाभी जान ने चुटकी ली—"ये बातें!"

और तब तक मैं घर के बाहर हो रहा!

❀ ❀ ❀

लड़की सुन्दर है, और मुझे भी सुन्दर और सुशील लड़की को अपनी जीवन-सहचरी बनाना पसन्द है; चाहे स्वयम् अपना पाँव लम्बा, आँखें कमज़ोर और शरीर बेढंगा ही क्यों न हो। ख़ैर, इससे मुझे क्या मतलब? हाँ, तो कुछ समय बाद मैं खाना खाने को रसोई-घर में जा पहुँचा। और खाना खा चुकने के बाद भी थाली पर इस ग़रज़ से बैठा रहा, कि मेरी मँगनी पर बात छिड़े! एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट और इस प्रकार जब पूरे पाँच मिनट बीत गए, तो मैंने हैरान हो कर सङ्केतपूर्ण नेत्रों से भाभी जान की तरफ़ देखा। वे मेरा मतलब समझ चुकी थीं, फिर भी शान्त, निश्चल, मौन! मैंने फिर उनकी ओर देखा! फिर देखा!! पर या मेरे अल्लाह, वे तो मुस्कुरा रही थीं! इस पर आँखों ही आँखों में प्यार का रूठना बताते हुए मैं रसोई-घर से बाहर निकल आया!

निराशा में भी कुछ आशा हुआ करती है। चुनाञ्चे, शाम को भाई साहब, भाभी जान और बहिन की पार्लामेण्ट जो लगी, तो मैं भी वहाँ जा पहुँचा। थोड़ी ही देर में भाई साहब कमरे से बाहर हुए। भाभी जान ने घूँघट खोला और मेरी ओर सङ्केत करके बोलीं—"इनकी सगाई के लिए मेरी सहेली ने अपनी छोटी बहिन के लिए कहा है। इनकी सम्मति हो, तो कर देनी चाहिए। लड़की सुन्दर है—चाँद का टुकड़ा ही समझ लीजिए, पढ़ी-लिखी है और गाना भी जानती है।"

बहिन जी ने बीच ही में बात काट कर कहा—"आँख-नाक, रंग-रूप कैसा है? चाल-ढाल कैसी है? गृह-कार्य कैसा जानती है?"—इस प्रकार बहिन जी ने पुलिस-इन्स्पेक्टर की तरह कई प्रश्न कर डाले।

इस पर भाभी जान ने दूकानदार की भाँति लड़की की सुन्दरता का बखान कर दिया और अन्त में बतलाया, कि "कम से कम अपने घर में तो वैसी सुन्दर लड़की है नहीं।"

जनाब, अब आप ज़रा मेरी दशा पर भी ग़ौर कर लीजिए। आँखें तो बराबर हाथ वाले 'कर्मयोगी' पर लगी हुई थीं, पर कान कम्बख़्त उन बातों में। बहिन जी ने मेरी इस दोहरी चाल को पकड़ते हुए कहा—"क्यों साहब! जब कभी हम लोग बात कहती हैं, तो कान में तेल पड़ जाता है और अपनी बातों पर यह मुस्कुराना!" इस पर मैं अपने मुस्कुराहट भरे होठों को दाँतों से दबाता हुआ कमरे के बाहर

हुआ। हृदय बाँसों उछल रहा था फलतः कमरे से आ कर मैं अपनी भावी पत्नी के विषय में सोचने लगा। सड़कों पर चप्पल चटचटाती, इठलाती, थिरकती, सभ्य-महिलाएँ जा रही थीं, पर हमेशा की भाँति मैंने उनकी ओर टकटकी बाँध कर देखा नहीं! मेहतर का लड़का आया। वह कोट माँग रहा था। मैंने दे दिया। यह थी सगाई की ख़ुशी! दिन-भर मित्रों में हुल्लड़ होता रहा। मिठाई मँगाई गई। सभी ने हँसी-ख़ुशी के साथ खाई। पर किसी भी मित्र ने सदा की भाँति मेरी कुरूपता की बात नहीं की।

संक्षेप में हुआ यह, कि रात को अम्मा जी और पिता जी की उपस्थिति में हाउस ऑफ़ कॉमन्स की हमारी मँगनी पर फिर बैठक हुई। मैं अपने छोटे-छोटे, पर चतुर ख़ुफ़िया-पुलिस वालों से पल-पल पर हाल मालूम कर रहा था; क्योंकि बैठक में मेरा जाना नियम के विरुद्ध था। लड़की की वकील, याने भाभी जान ने अपने घूँघट के भीतर से ही वह-वह दलीलें पेश कीं, कि बयान के बाहर हैं। सगाई का निर्णय हो गया। रातों-रात मँगनी का पैग़ाम भेजा गया और दूसरे रोज़ के लिए स्वीकृत भी हुआ।

मैं रात-भर करवटें बदलता रहा। नींद भी काहे को आती? मेरे हृदय में असीम ख़ुशी थी। पर दूसरी ओर रात क्या, बैरिन थी बैरिन! आखिर लिहाफ़ में पड़ा-पड़ा मैं तिलमिला कर उठ-बैठा, बत्ती जलाई और हारमोनियम

ले कर बजाने लगा। पर फिर भी जी नहीं लगा। बिस्तर पर लेटा, फिर उठा, फिर लेटा! और इस प्रकार मेरा किसी तरह जी नहीं लगा, तो मैं कमरे की चहारदीवारी के भीतर ही भीतर टहलता हुआ गुनगुनाने लगा—'न लगी आँख जब से...!' पर फिर भी लाख कोशिश करने पर तबीयत न लगी, और न नींद ही आई। अब मैं कुर्सी पर जा बैठा। मेरा सब से प्रिय उपन्यास 'सेवा-सदन' पड़ा हुआ था। उसे पढ़ना शुरू किया; पर दो पेज से अधिक पढ़ ही नहीं सका। आनन्द की असीम मात्रा भी हमारे कार्य-कलापों पर प्रतिबन्ध लगा देती है! मैं सोचने लगा—कल किस तरह के कपड़े पहने जायँ? किन-किन यार-दोस्तों को साथ लें?

इसके बाद बक्स सँभाला, तो सिर ठोक कर रह गया! पैण्ट तो है ही नहीं!! क्योंकि पैण्ट बनवाने का कभी मौक़ा भी तो नहीं आया था। इस स्थल पर अपने आप पर क्रोध आया, कि चाहता तो हूँ सुन्दर और सजीली लड़की और अपने पास पैण्ट भी नदारद है! इसी सोच में आखिर राम-राम करते रात खत्म हुई।

सुबह हुआ। मेरे आगे नाश्ता जो आया, तो मैं आश्चर्य-चकित रह गया। उसमें बुरी तरह से घी डाला गया था। यों तो अम्मा घी का एक क़तरा तक माँगने पर झिड़क देती थीं; पर आज तो शायद हलवे में घी डालने का उन्होंने रेकॉर्ड ही तोड़ दिया था। मेरे स्थान पर कोई चटोरा होता,

तो अम्मा जी के इस असाधारण लाड़ पर फूला न समाता। हाँ, तो नाश्ता करने के बाद मैं दीवारों को फाँदता, मुँडेर पर चढ़ता, छत पर जा पहुँचा। कारण यह था, कि घर के आँगन में मुझे ससुराल भेजने का समय निश्चित किया जा रहा था। इसलिए अपनी सगाई की बातें चुपके से सुनने की कोई जगह थी, तो यही! छत पर पहुँच कर सन्तोष की साँस भी नहीं ली थी, कि अम्मा जी ने मुझे पुकारा; और मैं बेतहाशा भगा—बन्दर की तरह उछलता-कूदता अपने कमरे में जा पहुँचा। ख़ुदा की ख़ैर समझिए, कि किसी ने मुझे देखा नहीं!

अम्मा जी ने आँगन में बुला कर कहा—"कपड़े-लत्ते पहिन लो, बेटा!"

पाठकों को मेरे रात वाले पैण्ट के अभाव का स्मरण ही होगा! मैंने सिर झुकाए, दबे स्वर में कहा—"पैण्ट तो है ही नहीं।"

वे बोलीं—"भाई साहब की पहिन लो! पैण्ट में क्या छाप लगी होती है?"

इस पर भाभी जान लपकीं, और बड़े भाई साहब की पैण्ट ले आईं। पैण्ट के पैरों में जो टाँगे डालीं और ऊपर को खींची, तो वह मेरे गले तक आ गई! सिर पर बिना बनाए हुए बाल तो थे ही; और काले रंग की पैण्ट होने की वजह से मैं रीछ की शकल का हो गया! इस पर सभी

लोगों ने ज़ोर का क़हक़हा लगाया, तो अम्मा जी ने बिग
कर उन लोगों को डाँटा—"यह क्या हा-हा, ही-ही ?
क्या थिएटर-हॉल बना रक्खा है ? बदतमीज़ कहीं के, निक
यहाँ से !!" और अम्मा जी ने सभी बच्चों को निकाल दि
घर के बाहर।

सच पूछिए, तो मेरा दिल लोगों की इस असभ्यता (
पर जल-भुन कर भरता हो गया। और ईमान की बात
यह है, कि इसी तरह चार-पाँच पैण्ट पहन-पहन कर मु
उतारनी पड़ीं—कोई छोटी थी, तो कोई बड़ी ! अन्त
अपने एक मित्र की ढीली-सी पैण्ट कुछ ठीक बैठी। संक्षेप
यह, कि मैं अपने मित्र के साथ जाने ही वाला था,
भाभी जान ने रोक कर कहा—"अरे ज़रा मूँछों के बाल
ठीक कर लो, बड़े बेतरतीब हैं !"

इस पर सभी लोगों का ध्यान मेरी बढ़ी हुई मूँछों की ओ
गया। भाई साहब ने कहा, कि वे कर्ज़न-फ़ैशन की बना दे
पर मैंने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया ! इस पर पिता
ने कहा—"अच्छा, तो लो, मैं तितली-नुमा बना दूँ। कर्ज़
फ़ैशन तो आजकल ठीक नहीं लगता। पर हाँ, तितली-नु
से तुम्हारे मुँह पर चमक ज़रूर आ जायगी—मुँह क्या
का चाँद बन जायगा।"

पिता जी का प्रस्ताव था। विरोध मैं कैसे करता
बहरहाल तितली-नुमा बनी, तो दर्शकों ने नाक-भौं सिको

मुँह फेरा और परिणाम-स्वरूप यह निर्णय हुआ, कि सारी की सारी मूँछ ही उड़ा दी जाए ! जिस चीज़ को मैंने अपने शौक़ से पाल रक्खा था उसे सदा के लिए त्याग देना ठीक नहीं जँचा, पर फिर भी लाचार था ।

भाई साहब आधी आँख मीच, घुटनों में बल डाल, बड़ी अदा से अपने सेफ़्टी रेज़र द्वारा थोड़ी देर तक मेरे होठों पर चर्र-चर्र करते रहे; और इधर मुझे बड़े ज़ोरों की खुजली हो रही थी। मैंने मूँछों की जगह, याने अपने प्यारे होंठों पर हाथ फेरा, तो मैदान साफ़ था । आइने में अपना मुँह जो देखा, तो मैं जल उठा—बिलकुल बदसूरत ! जैसे किसी ज़ालिम ज़मींदार ने किसी ग़रीब किसान का खेत काट लिया हो ! इस पर सभी लोगों ने मेरे अभाग्य पर खेद प्रगट किया और सोचा गया, कि रात का अँधेरा होने पर मुझे ससुराल भेजा जाए। दूसरी ओर अम्मा जी के क्रोध का कोई ठिकाना नहीं था। तैश में आ कर उन्होंने मुन्ना को पीट दिया, कि वह मेरी रवानगी पर नंगे सिर रास्ते में क्यों खड़ा है ?

❀ ❀ ❀

रात हुई। मैं अपने एक मित्र सहित अपनी ससुराल जा पहुँचा। एक मोटे से गद्दे पर मसनद का सहारा लेकर हम बैठ गए। बाएँ हाथ की ओर एक कमरा था। दरवाज़े पर चिक पड़ी हुई थी। कमरे से औरतों, और ख़ास कर पढ़ी-लिखी

लड़कियों द्वारा (उनकी आवाज़ ही ऐसी थी) दूल्हे का रंग-रूप देखा जा रहा था। कमरे के समीप होने के कारण औरतों और लड़कियों की फुसफुसाहट साफ़-साफ़ सुनाई दे रही थी। मेरे कान उनकी बातें सुनने को गधे के कानों की तरह खड़े हो गए, कि सुनूँ तो कि वे मेरे बारे में क्या कहती हैं? किसी कोयल-कण्ठा ने कहा—"अरी, दूल्हा कौन-सा है?"

दूसरी ने चटक कर उत्तर दिया—"कौन-सा क्या? वह शेरवानी वाला ही होगा?"

"नहीं जी!" तीसरी ने कहा—"दूल्हा तो यह कोट वाला है।"

'अरे!" फिर उसी दूसरे स्वर वाली ने कहा—"यह दूल्हा! शक्ल-सूरत तो ठीक है ही नहीं!! देखना तलवार मार्का नाक, मोटे-मोटे लटकते हुए होंठ और उस पर बाहर निकले हुए दो टूटे हुए दाँत! जैसे किसी ने जूतों से मुँह पीट दिया हो!"

मेरा दिल धक से बैठ गया; और मैं होंठ को मुँह में दबाता हुआ, ज़रा सँभल कर बैठा; पर चौथी ने तो मेरे घाव पर नमक ही छिड़क दिया—"अरे, इनके कपड़े भी तो देखो, ढीली-सी पैण्ट, बन्दर के से हाथ-पाँव, भारी साफ़ा, जैसे कपड़े किसी से माँग लाए हों! वाह! वाह!! इनकी उँगलियों को तो पहिचानो, कुत्तों की तरह नाख़ून बढ़ रहे हैं। अरी, मुझे तो

अँधेरे में ऐसा बेढंगा आदमी मिल जाए, तो दहल कर मर जाऊँ ! पर हाँ, दूल्हे का साथी वाक़ई सुन्दर है !"

पहला स्वर फिर सुनाई दिया—" सुन्दर क्या है; देखा न, कामदेव का पुत्र-सा लग रहा है । जैसे कौवे के पास हंस बैठा हो ! पतले होंठों पर बारीक-सी लाली, पतली-सी नाक, छोटे-छोटे हाथ-पाँव और कलाई पर घड़ी कैसी शोभा बढ़ा रही है ! पोशाक का तो ज़िक्र ही छोड़ो ! जँच रही है, जँच !!"

कोई बीच ही में प्रस्ताव रखती हुई बोली—"मेरी तो राय है, बहिन ! यह सगाई किसी तरह से रोक देनी चाहिए। इस भड़भूँजे के साथ तो लड़की का जीवन नष्ट करना है।"

इस प्रकार की बातें सुन कर मेरे मुँह का रंग उड़ गया, मैं तिलमिला उठा; क्योंकि मेरा मित्र मुझ से बहुत सुन्दर था; और मेरी तुलना उसके साथ की जा रही थी। मेरे वश की बात होती, तो उन सब औरतों की अच्छी तरह ख़बर लेता; पर मुझे ध्यान ही नहीं रहा, कि औरतें और लड़कियाँ कब कमरे से अन्तर्ध्यान हो गईं।

मैं अपने अभाग्य पर विचार कर रहा था, कि नौकर ने आकर कहा, कि लड़की के मामा की मृत्यु का तार आया है, इसलिए सगाई अभी नहीं होगी। फिर क्या था ? हम उलटे पाँव घर लौट आए। और घर पर आ कर सारा क़िस्सा बहिन जी को, इस शर्त पर सुना दिया, कि वे किसी से कहेंगी नहीं। अम्मा जी तो क्रोध से लाल हो रही थीं ! वह लड़की वालों

के यहाँ झगड़ने जाना चाहती थीं, पर पिता जी ने उनको रोक दिया; और घर ही में बात दब गई। सभी लोग भाभी जान को कोस रहे थे, कि ऐसे घर में सगाई का प्रस्ताव क्यों रक्खा? और भाभी जान मेरे सगाई के साथी को!

❀ ❀ ❀

दो महीने के बाद मैंने सुना, कि मेरे 'सगाई के साथी' की मँगनी उसी लड़की से हो गई है। मैंने सिर ठोक लिया! सड़क पर रंग-बिरंगी तितलियाँ फुदुकती जा रही थीं। उनको सुना-सुना कर गाने लगा— 'पहले जो मोहब्बत से इनकार किया होता...।'

दूसरी तरफ़ सड़क के उस पार एक गधा भी अन्य गधों को देख कर चीख रहा था। कौन जाने, उसकी मेरे साथ क्या सहानुभूति थी?
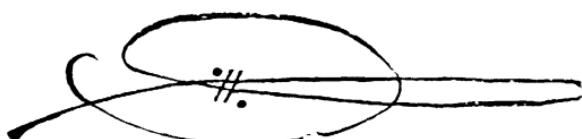
बेगम साहेबा का कुत्ता!

हज़ार मर्तबा कह चुका, कि अपनी इस अमानत को सँभाल कर रक्खो; पर सुनवाई ही नहीं होती! जहाँ देखो कमबख़्त नाचता फिरता है। जहाँ देखो, वहीं चहल-क़दमी हो रही है। पाला भी क्या है कुत्ता! नाम रक्खा है 'मोती'! उसको बुलाती भी किस अन्दाज़ से है—बेटा, प्यारे, अज़ीज़, और न जाने किस-किस नाम से इस कमबख़्त को पुकारा जाता है; पर मुझको भूल से भी कभी प्यार से न बुलाया, यह मेरी शायद बदक़िस्मती है। इतना बड़बड़ाते हुए मौलाना क़ादिर हुसेन ने अपनी बैठक में पैर रक्खा। पैर रखते ही, पहिले आप की नज़र मोती पर पड़ी, जो आप की कुर्सी पर रक्खी हुई अचकन में लिपटा हुआ क़लाबाज़ियाँ खा रहा था। मोती की यह हरकत देखते ही मौलाना साहब पाजामे के बाहर हो गए, और एक छड़ी उठा कर मोती पर झपटे। मोती उनको देखते ही कूद कर अन्दर की तरफ़ भागा। मोती के पीछे मौलाना साहब भी दौड़ते हुए अन्दर दाख़िल हुए।

जैसे ही आप अन्दर पहुँचे, आप का पैर लटकती हुई रस्सी में फँस गया और आप चारों खाने चित्त ज़मीन नापने लगे! इधर मोती उनको क़लाबाज़ियाँ खाते देख आँगन में खड़ा हो कर पूँछ हिलाने लगा। मौलाना मोती को देख फिर उठ कर उसके पीछे भागे। बेगम साहेबा रसोई से निकल कर बोलीं—"ख़बरदार, अगर आपने मेरे मोती पर हाथ उठाया! जब देखो, इसको मारने ही दौड़ते हैं।"

बेगम साहेबा की बात सुन कर मौलाना ग़ुस्से से बोले—"मैंने तुमको हज़ार दफ़ा कहा, कि इस हरामज़ादे को बाँधकर रक्खो, पर तुम बाँधती ही नहीं। आज इसने मेरी नई अचकन को नाश कर दिया! बेईमान उस पर उछल-कूद मचा रहा था। आज मैं इसको नहीं छोड़ूँगा।"—इतना कह कर मौलाना साहब फिर मोती पर झपटे। मोती जो कुछ दूर खड़ा उनकी तरफ़ देख रहा था, मौलाना को अपनी तरफ़ आता देख बाहर की तरफ़ भागा। मौलाना भी पीछे भागे। आंगन में केले का छिलका पड़ा हुआ था। मौलाना साहब का उस पर पैर पड़ गया। पैर पड़ते ही बेचारे बड़े ज़ोर से फिसलते हुए दिवाल से जा टकराए और पेट के बल क़लाबाज़ी खा गए! इस क़लाबाज़ी में बेचारे मौलाना साहब के हाथ में ज़रा-सी चोट लग गई। बेगम साहेबा ग़ुस्से में भरी हुई खड़ी थीं, बेचारे मौलाना को गिरते हुए देख सनकी तक नहीं! मौलाना किसी तरह उठ

कर बेगम साहब के पास आए और बोले—"देख ली अपने प्यारे की करतूत, मेरा हाथ तोड़ दिया।"—इतना कहते हुए मौलाना साहब कमरे में जा कर पलंग पर लेट गए और कराहना शुरू किया।

हालाँकि चोट बहुत मामूली लगी थी, पर बेगम साहेबा को सुनाने के लिए आपने ज़ोर-ज़ोर से कराहना शुरू कर दिया। कराहना सुन कर बेगम साहेबा का दिल पसीज गया और कमरे में पहुँच कर मौलाना साहब से बोलीं—"क्या सचमच ज़्यादा चोट लग गई हाथ में ? अच्छा मैं अभी दवा बाँधती हूँ।"—इतना कह कर जल्दी से बावर्चीख़ाने में गईं और आटे का हलवा बना कर ले आईं। हलवा मौलाना साहब के हाथ पर गाढ़ा गाढ़ा लगा कर महीन कपड़े की पट्टी बाँध दी। मौलाना साहब आँख बन्द किए पड़े रहे।

बेगम साहेबा मौलाना साहब को सोता जान धीरे से फिर बावर्चीख़ाने की तरफ़ चली गईं। इधर जब मोती मकान में दाखिल हुआ, तो उसकी नाक में हलवे की ख़ुशबू पहुँची और वह सूँघते-साँघते मौलाना साहब की चारपाई के पास जा पहुँचा। बेगम साहेबा ने जल्दी में हलवे में घी ज़्यादा डाल दिया था, वह पट्टी बँधने से बह रहा था। मोती ने उस घी को चाटना शुरू किया। मौलाना आँख बन्द किए हुए थे। वह समझे, कि शायद बहते हुए घी को बेगम साहेबा पोंछ रही हैं। बोले—"रहने दो, मत पोंछो।"

इधर सब घी चाटने के बाद मोती ने पट्टी पर दाँत मारा और पट्टी फाड़ कर हलवा निकाल लिया। मौलाना साहब ने आँख खोल कर देखा, कि मोती बड़े इतमीनान से हलवा खा रहा है। यह देखते ही आप बड़े ज़ोर से चीख उठे। इस चीख ने गज़ब कर दिया। बेगम साहेबा बावर्चीखाने में कुछ बना रही थीं। चीख की आवाज़ जो कान में पड़ी, तो जो वे जल्दी से उठ कर जाने लगीं तो उनका दुपट्टा उनके पैर के नीचे आ गया और वह उसमें उलझ कर लुढ़क पड़ीं। किसी तरह उठ कर जल्दी से मौलाना साहब के पास पहुँचीं और चीखने का सबब पूछा। हाथ की पट्टी खुली देख कर बोलीं—"यह क्या ? पट्टी क्यों खोल डाली ?"

मौलाना साहब बोले—"मैंने क्यों खोल डाली ? यह करतूत तुम्हारे बेटे मोती की है, जो पट्टी फाड़ कर हलवा ले कर भाग गया।"

इतना सुन कर बेगम साहेबा बोलीं—"ले जाने दो, मैं और बाँधे देती हूँ।" वे झट बावर्चीखाने में गईं, थोड़ा और हलवा ला कर फिर हाथ पर बाँध दिया। शाम को फिर इसी तरह गरम-गरम हलवा बाँधा।

हालाँकि मौलाना साहब को चोट ज़्यादा नहीं लगी थी, पर बेगम साहेबा को परेशान करने के लिए उन्हें एक अच्छा बहाना मिल गया था। खैर, शाम का खाना भी पलंग पर लाया गया, और बेगम साहेबा ने भी पलंग पर खाना

मुनासिब समझा। खाना ट्रे में लगा कर पलंग पर रक्खा गया, और एक तरफ़ बेगम साहेबा और दूसरी तरफ़ मौलाना साहब बैठे। जैसे ही मौलाना साहब ने नवाला उठाया, वैसे ही किसी ने पलंग के नीचे से धक्का दिया। धक्का लगना था, कि ट्रे उलट गई। बेचारे मौलाना का सब मुँह और कपड़े शोरबे से ख़राब हो गए। दाढ़ी सन गई। मौलाना साहब ने ट्रे उलटने का सबब जानने के लिए नीचे झाँका। देखते क्या हैं, आप का नया पम्प शू मियाँ मोती फाड़ कर उससे खेल रहे हैं। यह देखते ही मौलाना साहब एक दम से आग-बबूला हो गए। कूद कर पलंग के नीचे आए और बग़ल से एक डण्डा उठा कर मोती पर लपके। मोती मौलाना साहब के पलंग से उतरते ही हवा हो गया। मौलाना साहब भी बाहर की तरफ़ भागे, पर बेगम साहेबा ने दरवाज़े पर रोक लिया और बोलीं—"जाने दो, और जूता ले आना, मोती को मत मारो।"

मौलाना बेतहाशा .गुस्से में भरे थे। बोले—"आज मैं मोती को ज़िन्दा नहीं छोड़ सकता।"—इतना कह कर बेगम को धक्का दे कर बाहर आए। बेगम को भी .गुस्सा चढ़ आया और मोती को बुला कर गोद में ले कर बोलीं—"देखूँ, तुम इसको कैसे मारते हो! बड़े तीसमार खाँ हो, तो अब मार कर दिखाओ!"

मौलाना साहब ने कहा—"मजबूर हूँ, अगर यह तुम्हारी गोदी में न होता, तो अप ने हाथ दिखाता। .ख़ैर, कभी तो

गोदी से उतारोगी।"—इतना कह कर मौलाना साहब कमरे में जा कर पलंग पर लेट गए और बेगम साहबा के आने का इन्तज़ार करने लगे। लेटे-लेटे मौलाना को नींद आ गई। ख़्वाब में फिर उन्हें दिखाई दिया, कि मोती जूता फाड़ रहा है। वे घबड़ा कर उठ बैठे। आँख खुलने पर उन्होंने देखा, कि बेगम साहबा सो रही हैं। उनको सोता देख वे चुपचाप उठे और मोती की चारपाई की तरफ़ गए, जिस पर वह रात को सोता था। चारपाई के पास पहुँच कर मौलाना साहब ने ज़ोर से एक डण्डा मोती को मारा। पर उस चारपाई पर सो रही थी बुढ़िया नौकरानी! डण्डा पड़ते ही बुढ़िया चिल्लाती-कराहती हुई भागी, कि "मार डाला, मार डाला।"

शोर-गुल सुन कर बेगम साहबा उठ बैठीं और दौड़ीं बुढ़िया की मदद को। यह देख कर मौलाना सहमे और चुपके-से चारपाई पर जा लेटे। इसके बाद मौलाना साहब को मोती से कुछ कहने की हिम्मत न हुई!!

तीन सौ वर्ष पहिले

बी० ए० की परीक्षा देने के पश्चात् मैंने सोचा कि छुट्टियाँ व्यतीत करने के लिए कहाँ जाऊँ? सौभाग्य से या दुर्भाग्य से—जैसा भी आप समझें, मैं अभी तक अविवाहित ही था। यदि विवाहित होता, तो श्रीमती जी घर पर प्रतीक्षा करती होतीं, इसलिए घर जाना ही पड़ता। परन्तु इस माने में मैं स्वतन्त्र था और इसलिए मैंने निश्चय किया, कि मसूरी जाऊँ और दो महीने वहीं व्यतीत करूँ। पिता जी से मैंने इसके लिए आज्ञा ले ली और उनसे आवश्यक खर्च भी मँगा लिया।

कॉलेज के दिनों में तो समय का निर्धारित कार्यक्रम था, इस कारण दिन आसानी से कट जाते थे, परन्तु छुट्टियों के पूरे साठ दिन कैसे व्यतीय होंगे, यह मेरे सामने एक समस्या थी। गर्मियों के लम्बे दिन काटे नहीं कटते। यही सोच कर इन दो महीनों में मैंने कुछ विशेष पुस्तकों के अध्ययन का निश्चय किया। अपने प्रोफ़ेसर साहब से मैंने कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों की एक

सूची बनवा ली और दूसरे ही दिन मैं उन पुस्तकों को खरीद कर ले आया।

आवश्यक सामान तथा पुस्तकों को ले कर मैं नियत समय पर मसूरी के लिए रवाना हो गया। सिर्फ दो महीने तो रहना ही था, इसलिए रहने का प्रबन्ध एक होटल में ही किया। हिमालय के प्रांगण में शीतल और सुन्दर समीर के झोकों के साथ ग्रीष्म ऋतु के दिन आनन्द से कटने लगे। सुबह-शाम घूमना, रात को सिनेमा देखना और दिन को सोना—यही मेरा नित्य का कार्यक्रम था! एक चीज़ की कमी अवश्य महसूस होती थी, और वह मुझे बुरी तरह खटकती थी। मसूरी की नीची-ऊँची घुमावदार सड़कों पर टहलते हुए, सिनेमा तथा नाच-घरों में बैठे हुए और रिक्शाओं में हवा खाते हुए जब लोगों को अपनी-अपनी प्रियतमाओं के साथ देखता, तो मैं विकल हो उठता। उस समय मुझे मालूम पड़ता, कि अकेला जीवन कितना नीरस और सूना होता है। ख़ैर, लोगों को ही देख कर मैं ठण्डी साँस लेता हुआ अपना समय किसी प्रकार व्यतीत कर ही लेता। साथ में लाई हुई किताबें ज्यों की त्यों सन्दूक़ में बन्द पड़ी थीं। पहले, तो मैं सोच रहा था, कि गर्मी के यह लम्बे दिन कैसे कटेंगे, परन्तु यहाँ आने पर अनुभव हुआ, कि यदि दिन सौ घण्टे के भी होते, तो भी मज़े से गुज़र जाते।

एक दिन खाना खा कर मैंने निश्चय किया, कि आज कोई पुस्तक अवश्य प्रारम्भ करना चाहिए। यही सोच कर सन्दूक़

खोला और पुस्तकों पर पड़ी धूल झाड़नी शुरु की। कई-एक पुस्तकें उलटने-पलटने के बाद मेरी दृष्टि गाँधी जी की 'आत्म-कथा' पर पड़ी। लोगों से सुन रक्खा था, कि गाँधी जी ने अपनी 'आत्म कथा' में अपने व्यक्तिगत जीवन की सभी बातें साफ़ और स्पष्ट लिख डाली हैं। मैंने सब से पहले इसी पुस्तक को प्रारम्भ करना ठीक समझा।

पान मुँह में दबा कर तथा आराम-कुर्सी पर लेट कर, मैंने इस ग्रन्थ-रत्न को पढ़ना प्रारम्भ किया। आज इस शैल-शिखर पर पहली ही बार मैंने पुस्तक हाथ में ली थी। परन्तु दुर्भाग्यवश नित्य की तरह नींद ने मुझे आ घेरा। मैंने अपने पलकों को सँभालने की बहुत कोशिश की, परन्तु सफलता नहीं मिली। चार-पाँच पेज भी न पढ़ पाया था कि आँख लग गई। किताब वक्षस्थल पर पड़ी की पड़ी रह गई, और मैं खर्राटे लेने लगा!

❀ ❀ ❀ ❀

मैं अपने एक मित्र के आग्रह से घूमने के लिये मोहनपुर गया। सैर के लिये इतनी दूर जाना कोई साधारण बात न थी। पहले ज़माने में, जब कि रेलें, मोटरें, ताँगे आदि चला करते थे, यात्रा करना आसान था। आदमी एक दिन में कहीं का कहीं जा सकता था, परन्तु इस 'अहिंसा-राज' में सिर्फ़ दो पैरों की सवारी की आज्ञा है। इसी कारण पूरे छः दिन में मोहनपुर का रास्ता तय कर सका।

मोहनपुर पहुँच कर कई आदमियों के साथ मैं राजधानी की सैर को निकला। सबसे पहले हम लोग अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा का विशाल भवन देखने गए। ऐसी अजीब इमारत देख कर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। इमारत के ऊपर राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा था। भवन के गुम्बजों की बनावट सुन्दर, किन्तु अद्भुत थी—कोई मन्दिर, कोई मस्जिद, कोई गिरजा और कोई गुरुद्वारे की तरह बने हुए थे। कहने का मतलब यह, कि इस इमारत में भारत की सभी जाति और धर्म वालों की कला का मिश्रण था। एक बड़े फाटक से हमने अन्दर प्रवेश किया।

सामने ही चर्खा हाथ में लिए महात्मा मोहनदास की विशाल संगमर्मर की मूर्ति पर दृष्टि पड़ी। हमने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसे नमस्कार किया। उनके पास हमारा राष्ट्रीय वेद—'आत्म-कथा'—भी एक चौकी पर रक्खा था! मैंने इस वेद-भगवान को माथा नवाया। यद्यपि महात्मा मोहनदास जी ने इसे गुजराती में रचा था, फिर हिन्दी रूपान्तर हुआ, किन्तु बाद को गाँधी भक्तों ने इसे हिन्दुस्तानी में लिख डाला। मैंने देखा, कि सभी जाति और धर्म वाले इस पवित्र पुस्तक का बड़े प्रेम से परायण कर रहे थे।

कुछ क़दम आगे बकरी-माता की एक विशाल मूर्ति मिली। इसी का दूध पी कर महात्मा जी को ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस कारण प्रत्येक भारतवासी उसे पूज्य समझता था। यहाँ तक, कि मुसलमान भाइयों ने भी उसकी क़ुर्बानी बन्द कर दी थी। यह

फ़तवा भी सुनते हैं, उल्माओं ने मोहनपुर से ही निकाला था. परन्तु उस समय की बात है, जब मोहनपुर का नाम दिल्ली था। महात्मा गाँधी के नाम पर गाँधी-सन २० में दिल्ली नगर का नाम मोहनपुर रक्खा गया। उस समय मुसलमानों ने चाहा था, कि इसका नाम 'मोहम्मदाबाद' रक्खा जाय, परन्तु उस समय के युवक-सम्राट और स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान-मंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की राय मान कर उसका नाम मोहनपुर ही रक्खा गया।

मोहनपुर में मैंने देखा, कि घर-घर बकरी बँधी हुई है और सर्वत्र उसकी पूजा होती है। अमर कवि 'असहयोगी'-रचित बकरी विरुदावली सर्वत्र पढ़ी जाती है। पश्चात् मैंने नगर के एक विशाल हॉल में प्रवेश किया, उसकी दीवारों पर जगह-जगह गाँधी जी के उपदेश और आज्ञाएँ टँगी हुई थीं।

हॉल देख कर मैं चाँदनी-चौक की ओर मुड़ पड़ा। देखता क्या हूँ, कि चाँदनी-चौक चर्मकारों का चबूतरा बना हुआ है। यहाँ चर्मकार भाई चप्पलें तैयार करने में व्यस्त हैं। बड़ी-बड़ी दूकानों का नाम तक भी नहीं। सर्वत्र ग्राम-उद्योग का बाज़ार गर्म है—कहीं धान कूटा जा रहा है, तो कहीं चक्की चल रही है, हलवाइयों की दूकानों पर हलुए के स्थान पर गुड़ बन रहा है। डॉक्टरों की दूकानें, तो ढूँढ़े भी नहीं मिलतीं। सर्वत्र मिट्टी का उपचार हो रहा है।

इस नगर में मशीनें तो मुझे देखने-तक को नहीं मिलीं। क्लॉथ मिल्स की जगह कर्घे की करामात ही नज़र आई। महात्मा जी मशीनों को मनहूसियत की निशानी मानते थे, इसलिए गाँधी सन् ८० से ही मिलों को मिटा दिया गया और यह क़ानून बना दिया गया, कि खद्दर के सिवा कोई दूसरा कपड़ा न पहने, जो पहनेगा, वह भारत की नागरिकता के अधिकारों से वञ्चित कर दिया जायगा। इसीलिए मुझे वहाँ सब खद्दरधारी ही खद्दरधारी नज़र आए।

अलबत्ता जिन्नाबाद और वल्लभपुरी में कुछ पुराने कार-खानों के भग्नावशेष ज़रूर विद्यमान थे, जिन को देख कर पूर्वजों की पार्थिव पूजा का पूरा परिचय मिलता था।

हम लोग आगे बढ़े, 'चौराहे आसफ़ अली' पर पहुँचे। यह चौराहा पुराने ज़माने के किसी नेता के नाम से था। चौराहे पर खड़ा होकर एक जन-सेवक सबको हाथ जोड़ कर आज्ञा दे रहा था। इतिहास देखने से मालूम पड़ता है, कि पहले इन 'जन-सेवकों' के स्थान पर पुलिस वाले थे, जो बड़ी डाँट-डपट के साथ जनता पर अपना आतङ्क जमाए रखते थे। परन्तु अब तो जन-सेवकों को क़वायद के बजाय, हाथ जोड़ कर जनता को आज्ञा देना सिखाया जाता है।

चौराहे से कुछ दूर पर व्यावहारिक विश्वविद्यालय की शानदार इमारत मिली। इसकी सब से बड़ी परीक्षा थी 'अहिंसाचार्य'। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला विद्यार्थी

अहिन्सा के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञाता और 'अहिन्सावाद' का पक्का मानने वाला समझा जाता है। 'अहिन्साचार्य' की उपाधि पाने के लिए सबसे कठिन परीक्षा यह है, कि परीक्षार्थी को लगातार तीन दिन, तीन रात खटमलों से भरी हुई चारपाई पर लेटा रहना पड़ता है। यदि बीच ही में परीक्षार्थी उठ जाता या उसके द्वारा एक भी खटमल की हत्या हो जाती, तो वह अनुत्तीर्ण समझा जाता है। और इन असंख्य भूखे खटमलों के हमलों को शान्तिपूर्वक सहना सच्चे अहिन्सक का चिह्न समझा जाता है। इसके पश्चात् एक साल व्यावहारिक विश्व-विद्यालय में इन विषयों का अध्ययन करना पड़ता था—हजामत बनाना, कपड़े धोना, जूते सीना, मल-मूत्र साफ़ करना इत्यादि। इसमें प्रथम आने वाला सच्चा गाँधीवादी समझा जाता था। विश्वविद्यालय को देखने के बाद हमने नगर के अन्य स्थानों को देखा—अन्सारी चौक, कटरा अजमल खाँ, अरुणा मन्दिर, देशबन्धु उपवन और शौकतअली स्ट्रीट। वास्तव में राजधानी के ये दर्शनीय स्थान थे।

इतिहास देखने से मालूम पड़ता है, कि पहले के लोग स्त्रियों को मनुष्य नहीं समझते थे। वे बिलकुल ग़ुलाम समझी जाती थीं। लेकिन मैंने देखा, कि लोगों ने अब स्त्रियों को पुरुषों से भी अधिक अधिकार दे रक्खे हैं। सभा सोसाइटियों में उन्हें ही अधिक चहचहाते हुए देखा जाता है। पेट से बाहर आने के बाद बच्चों की सारी जिम्मेदारी पुरुषों ही के ऊपर पड़ जाती

है। पहले-पहल तो लोगों ने छोटे बच्चों की देख-भाल में काफ़ी कष्ट अनुभव किए, लेकिन अब तो वे इस काम को अपना कर्त्तव्य समझते हैं, इसलिए कष्ट का अनुभव नहीं करते। देश के कुछ नामी वैज्ञानिकों का मत है, कि अगली चन्द शताब्दियों में पुरुष इतनी उन्नति के शिखर पर पहुँच जायगा, कि वह स्वतः ही बच्चा पैदा करने लगेगा और स्त्रियों का सार्वजनिक क्षेत्र में कूकने के सिवाय दूसरा काम ही न रह जाएगा। खैर, ये तो आगे की बात है, अभी तो हम लोग इस योग्य नहीं हैं।

आगे जो बढ़े, तो गांधी-युग का न्यायालय नज़र आया। मैंने देखा, कि उसमें अपराधियों को दण्ड देने के पहले-जैसे तरीक़े भी अब नहीं रहे हैं। न्यायाधीश अपराधियों को सज़ा नहीं देता, उनके प्रायश्चित्त-स्वरूप स्वयं उपवास करता है। इस प्रकार दूसरों को सुधारने के लिए 'आत्म-शुद्धि' करते-करते वह स्वयं मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। इस अमोघ अस्त्र का आविष्कार स्वयं गाँधीजी ने किया था, और आज तक धर्म और न्याय की वही परम्परा जारी है।

मैंने देखा, कि सारा देश अहिन्सा का पक्का पुजारी बन गया है। 'अहिन्सावाद' के कारण घर चूहों और खटमलों से तथा सड़कें कुत्तों और मुर्गों से भरी पड़ी थीं। सारी रात खटमल काट-काट कर और कुत्ते भौंक-भौंक कर सोना हराम कर रहे थे, परन्तु फिर भी लोगों को आराम से सिद्धान्त अधिक प्यारे थे।

न्यायालय देख कर मैं मोहनपुर के पुस्तकालय में जा बैठा। वहाँ मैंने इतिहास पढ़ना आरम्भ किया। मैंने इतिहास में पढ़ा, कि पिछले तीन सौ वर्षों में देश ने काफ़ी उन्नति की है, परन्तु कुछ असभ्य प्रान्तों में अभी सुधार की आवश्यकता है। वहाँ कभी-कभी अशान्ति हो जाती है, परन्तु 'जन-सेवक' वहाँ आसानी से शान्ति स्थापित कर देते हैं। ऐसे स्थानों में महात्मा जी द्वारा आविष्कृत केवल 'सत्याग्रह' अस्त्र का ही प्रयोग किया जाता है। जन-सेवकों की एक टोली एक पैर से धूप में खड़ी होती है और इस प्रकार शान्ति स्थापित हो जाती है। लोगों को आशा है, कि अगले चन्द वर्षों में इन 'जन-सेवकों' की भी आवश्यकता नहीं रह जाएगी और भारत का प्रत्येक निवासी 'स्वयं-सेवक' बन जाएगा।

पिछले तीन सौ वर्षों का इतिहास देखने से मालूम हुआ, कि इन वर्षों में भारत पर सिर्फ़ एक बार विदेशी आक्रमण हुआ था और उसमें शत्रु की बड़ी जबरदस्त पराजय हुई। पश्चिमी सीमा पर ग़फ़्फ़ाराबाद से कुछ दूर खान साहब की घाटी पर शत्रु-सेना से सत्याग्रहियों का मुक़ाबला हुआ। सत्याग्रही फ़ौज दस लाख से ऊपर थी। लड़ाई प्रारम्भ होने के पहले ही हमारी सेना ने 'अहिन्सा' और 'सत्याग्रह' के शस्त्रों को सँभाल लिया। सारी सेना ज़मीन पर पट्ट लेट गई। यह देख कर शत्रु-सेना शर्मिन्दा हो कर वापस चली गई। इसके बाद किसी ने हमारे देश पर हमला करने का साहस ही नहीं

किया। यह हमारी महान् विजय थी, जिसका हमें अभिमान है और होना भी चाहिए।

दिन-भर नगर की सैर करने के बाद मैं थका-माँदा शाम को एक मित्र के घर पहुँचा। उस समय वे खाना पका रहे थे, और 'बहिन जी' पुस्तक पढ़ रही थीं। मैं भी चुप-चाप बिना कुछ कहे ऊपर के कमरे में जा कर आराम-कुर्सी पर लेट गया। थका तो था ही, नींद भी आने लगी। मेरी आँखें बन्द होने ही वाली थीं, कि एक चूहा ऊपर से मेरी छाती पर कूदा। अर्ध-निद्रित अवस्था में मैंने उसको दोनों हाथ से पकड़ लिया। तब तक मेरी आँखें खुल गईं। मैं देखता हूँ, कि मैं 'मोहनपुर' नहीं मसूरी में हूँ और दोनों हाथों से गाँधीजी की 'आत्म-कथा' पकड़े हुए हूँ। अभी बीसवीं सदी और अंगरेज़ी राज्य है। स्वप्न में मैं तीन सौ वर्ष आगे पहुँच गया था।

पेशबन्दी

रेल के इण्टर क्लास के डिब्बे में हम तीन ही आदमी थे। मेरे दाएँ एक .खुश-पोश लाला जी थे और सामने एक हैट-बूट वाले साहब बहादुर-क़िस्म के बाबू। ट्रेन मुल्तान स्टेशन से रवाना हुई, तो बाबू फ़ौरन ही बे-तक़ल्लुफ़ हो गए—मुझसे नहीं, बल्कि लालाजी से। और मैं हैरान था कि मेरे बिलकुल सामने की सीट पर बैठे होने पर भी इन्होंने बातचीत के लिए लालाजी को क्यों चुना !

दो उँगलियों से अपनी ऐनक को नाक पर दुरुस्त करते हुए बाबू बोले—"कहिए, लालाजी, कहाँ जा रहे हैं आप ?"

लालाजी—"लाहौर जा रहा हूँ।"

बाबू—"दौलतख़ाना आपका ?"

लालाजी—"मैं लाहौर में रहता हूँ।"

बाबू—"कारबार क्या करते हैं आप ?"

लालाजी—"मैं .फ्रूट-मर्चेण्ट हूँ।"

बाबू—"आपके कारबार पर जंग का बहुत असर पड़ा होगा ?"

लालाजी—"जी नहीं, इसलिए कि फ्रूट जर्मनी से नहीं आते।"

बाबू—"हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ। मेरा मतलब यह है, कि काग़ज़ बहुत महँगा हो गया है, और जिन लिफ़ाफ़ों में आप फल डाल कर गाहक को देते हैं, उनकी क़ीमत पर ज़रूर असर पड़ा होगा।"

लालाजी—"जी नहीं, हमारे यहाँ देशी काग़ज़ के लिफ़ाफ़े इस्तेमाल होते हैं।"

बाबू—"हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ।" मेरा मतलब यह है कि अक्सर लोगों के कारबार पर जंग का असर पड़ा है।"

लालाजी—"हाँ, पड़ा है। लेकिन अच्छा असर पड़ा है। कई आदमियों ने चन्द ही रोज़ में हाथ मार लिए हैं।"

बाबू—"हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ। मेरा मतलब यह है कि अबकी जंग बहुत ख़तरनाक है। इस दफ़ा हिन्दुस्तान को भी ख़तरा है।"

लालाजी—"ख़तरा तो है, अगर कांगरेस ने सत्याग्रह कर दिया, तो मुसीबत आ जायगी।"

बाबू—"यह तो मैं जानता हूँ। लेकिन मेरा मतलब कांगरेस से नहीं, रूस से है।"

लालाजी—"रूस से क्या ख़तरा है ?"

बाबू—"अजी वाह ! मालूम होता है कि आप अख़बार नहीं पढ़ते। बन्दानेवाज़ ! रूस तो एक मुद्दत से हिन्दुस्तान पर आँखें लगाए हुए है। और अब उसका ख़याल है कि जंग की गड़बड़ में चुपके से हिन्दुस्तान पर हमला कर दें !"

लालाजी—"अजी, हमला होगा, तो बम्बई पर। हम लाहौर वालों को रूस के हमले का क्या डर !"

बाबू—"वाह जी, वाह ! मालूम हुआ कि आपको भूगोल भी नहीं आता। बन्दानेवाज़ ! रूस हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम में है, और रूसी हवाई जहाज़ बम फेंकते हुए सीधे लाहौर पहुँचेंगे।"

लालाजी—"क्यों ? लाहौर क्यों ?"

बाबू—"हाँ, मैंने नहीं कहा था कि आप अख़बार नहीं पढ़ते ! अजी बन्दानेवाज़ ! रूस का डिक्टेटर स्टेलिन मुसलमान हो गया है, और उसने ऐलान किया है कि मैं बक़रीद का नमाज़ लाहौर की शाही मस्जिद में पढ़ूँगा।"

लालाजी—"शाही मस्जिद में ! वह तो हमारे घर के क़रीब ही है।"

बाबू—"आप कहाँ रहते हैं ?"

लालाजी—"चूनेमण्डी।"

बाबू—"ग़ज़ब हो गया ! तो आप से ज्यादा रूसी हमले का ख़तरा किसी को नहीं हो सकता !"

लालाजी—"वह क्यों ?"

बाबू—"इसलिए कि रूस का इरादा पहिले चूने के ज़खीरे को नष्ट करने का है, ताकि चूना फ़ौजी इमारत में काम न आ सके।"

लालाजी (क़हक़हा लगा कर)—"वाह जी, बड़े अखबार पढ़ने वाले और भूगोल जानने वाले! अजी बाबू साहब! चूनेमण्डी में चूने का कोई ज़खीरा तो नहीं। वह पुराने ज़माने से सिर्फ़ एक नाम चला आ रहा है!"

बाबू—"हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ। मेरा मतलब यह है कि रूसी हवाई जहाज़ छावनी पर तो ज़रूर बम बरसाएँगे।"

लालाजी—"फिर शाहर वालों को क्या डर ?"

बाबू—"डर क्यों नहीं ? हवाई जहाज़ से बम फेंकने वाले ८ मील से निशाना लेते हैं। और एक सेकिण्ड की कमी-बेशी से बम अपने असल निशाने से इधर-उधर जा गिरता है। इसलिए बम का क्या एतबार ? कौन कह सकता है कि ज़रा-सी कमी-बेशी के कारण बम आपके मोहल्ले पर न आ गिरे!"

लालाजी—"और उस मोहल्ले पर क्यों न गिरे, जहाँ आप रहते हैं ? मगर हाँ, यह तो बताइए कि आप रहते कहाँ हैं ?"

बाबू—"मैं भी लाहौर ही में रहता हूँ, बसन्त रोड पर। और मेरा मतलब यह कि सारे लाहौर वालों को खतरा है।"

लालाजी—"लेकिन हुकूमत इस खतरे को रोकने का कोई बन्दोबस्त नहीं करेगी ?"

बाबू—"हुकूमत तो सब कुछ कर रही है। लेकिन मेरा मतलब यह है कि इन्सान को ख़ुद भी अपना कोई इन्तज़ाम

करना चाहिए न। फ़र्ज़ कीजिए कि अगर आप बम से मार डाले गए हैं—और आपके बाल-बच्चे बच रहे, तो उन बेचारों का क्या हाल होगा? और अगर मकान नष्ट हो जाय, तो सर छिपाने की जगह कहाँ रहेगी?"

लालाजी—"फिर इसका इलाज?"

बाबू—"यह कि वक़्त से पहिले ही पेशबन्दी कर लीजिए।"

लालजी—"वह कैसे हो सकती है?"

बाबू—"बिलकुल आसान! (जेब से एक पैम्फ़लेट निकाल कर) यह है हमारी कम्पनी का प्रोस्पेक्टस। अपनी ज़िन्दगी का बीमा करा लीजिए और मकान का भी।"

लालाजी—"अच्छा, तो आप बीमा-कम्पनी के एजेण्ट हैं! लेकिन अफ़सोस है कि न मकान मेरा अपना है, और न मेरे कोई बाल-बच्चे हैं!"

चचा छक्कन ने झगड़ा चुकाया !

पिछली गर्मियों में एतवार का दिन था। हमारे यहाँ चिराग़ जलते ही खाना खा लिया जाता है। बच्चे खाना खा कर सो गए थे, चची ने खाना खिला कर इशा की नमाज़ की नीयत बाँधी थी, और नौकर रसोई-घर में बैठे भोजन कर रहे थे। चाचा छक्कन बनियाइन पहने, तहमद बाँधे, टाँग पर टाँग रक्खे चारपाई पर लेटे मज़े-मज़े से हुक्के के कश लगा रहे थे, कि एकाएक गली में से शोर-ग़ुल की आवाज़ आई।

बुन्दू, इमामी और मूदा खाना छोड़ कर दरवाज़े की तरफ़ लपके। चचा भी चौंक कर उठ-बैठे और जब कोई न दिखाई दिया, तो चची की ओर देखा। चची ने सलाम फेरते हुए मुंह उधर मोड़ा, आँखें चार हुईं, तो चाचा ने पूछा—"यह शोर कैसा है?" चची माथे पर त्योरी डाल वज़ीफ़ा पढ़ने लगीं।

चचा छक्कन कुछ देर इन्तज़ार करते रहे, कि शायद कोई नौकर या लड़का पलट कर आए और कुछ खबर लाए, वैसे चची से बराबर पूछते रहे—"कोई आता नहीं, ...कहाँ बैठे

रहे सब के सब ?...देखती हो, इन की हरकतें ? पता नहीं, क्या वारदात हो गई है ?" लेकिन जब न चची ने कोई उत्तर दिया, और न कोई लड़का ही वापस आया, विवश हो, जूता पहिन कर ख़ुद बाहर निकलने की तैयारी की।

चची बोलीं—"चले तो हो, मगर किसी के झगड़े में न पड़ना।"

चचा बोले—"मेरा सिर फिरा है, बाज़ारू लोगों के झगड़ों से हमें क्या मतलब ?"

ज़नाने से निकल कर चचा मर्दाने में आए, ड्योढ़ी में क़दम रक्खा, तो देखा, कि घर के सामने भीड़ जमा है। चचा को आशा नहीं थी, कि इतनी जल्दी मौक़े पर जा पहुँचेंगे। कुछ घबराए, आगे बढ़ने के लिए अभी तैयार नहीं थे, मगर वापस हटने का भी मन न होता था; अतः आपने जल्दी से दीया गुल कर ड्योढ़ी का द्वार बन्द कर दिया और देर तक दरार से आँख लगाए स्थिति का निरीक्षण करते रहे।

मालूम हुआ, कि झगड़ा दो पड़ौसियों के बीच है, जो सामने के मकान में रहते हैं—एक ऊपर का मञ्ज़िल में, दूसरा नीचे की मञ्ज़िल में। हाथा-पाई तक की नौबत पहुँच चुकी थी, लेकिन लोगों ने अब दोनों को अलग-अलग करके सँभाल रक्खा है, और मीर बाक़र अली समझा-बुझा कर उन्हें क़रीब-क़रीब ठण्डा कर चुके हैं।

चचा से न रहा गया। यह बात उन्हें कैसे सह्य हो सकती थी, कि उनके रहते मोहल्ले का कोई और आदमी इस प्रकार के झगड़ों में पञ्च बन बैठे। अतः आप तहमद कस, बनियाइन नीचे खींच, दरवाज़ा खोल बाहर निकल खड़े हुए और बड़े बु.जुर्गाना ढंग से बोले—"अरे भई, क्या बात हो गई ?"

मीर बाक़र अली ने कहा—"अजी, कुछ नहीं, यों ही ज़रा-सी बात पर इन खाँ साहब और मौलवी साहब में झगड़ा हो गया था। मैंने समझा दिया है दोनों को।"

वे तो समझ गए, मगर चचा भला कहाँ समझते हैं ! मौक़े पर जा पहुँचे और बोले—"मगर बात क्या हुई, यह तो कुछ ऐसा नक़शा नज़र आता है, जैसे .खुदा ना-ख्वास्ता, फ़ौजदारी तक नौबत पहुँच गई थी।"

मीर बाक़र अली ने टालना चाहा—"अजी, अब ख़ाक डालिए इस क़िस्से पर, जो होना था, हो गया, पड़ोसियों में दिन-रात का साथ, कभी-कभी शिकायत पैदा हो ही जाती है।"

अब भी चचा को सन्तोष न हुआ। वे बोले—"पर ज़्यादती आख़िर किस तरफ़ से हुई ?"

खाँ साहब बोले—"पूछिए, इन मौलवी साहब से, जो बड़े मुत्तक़ी (साधु) बने फिरते हैं। दाढ़ी तो बालिश्त-भर बढ़ा रक्खी है, लेकिन जब हरकतें कमीनों की-सी हों, तो दाढ़ी से क्या फ़ायदा ?"

चचा चौंक कर बोले—"ओहो! यह क़िस्सा तो टेढ़ा मालूम होता है।"

अब मौलवी साहब कैसे चुप रह सकते थे, बोले—"साहब, इनको चुप कराइए, मैं बड़ी देर से तरह दिए जा रहा हूँ, और यह जो मुँह में आए बके चले जाते हैं, इसका नतीजा इनके हक़ में अच्छा न होगा।"

खाँ साहब कड़क कर बोले—"अबे जा, चार भले आदमी बीच में पड़ गए, जो मैं रुक गया, नहीं तो आज नतीजा तो ऐसा बताता, कि छट्ठी का दूध याद आ जाता।"

मौलवी साहब ने तन कर कहा—'ताक़त के घमण्ड में न रहना खाँ साहब, अंग्रेज़ों का राज है! जी हाँ, और यहाँ भी कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं। हम भी ऐसे हथियारों पर उतर आए, तो याद रखिए, वरना जी हाँ...।"

खाँ साहब बेक़ाबू हो गए। मुक्का तान कर बढ़ा ही चाहते थे, कि लोगों ने बीच-बचाव करके रोक लिया। मौलवी साहब आस्तीनें चढ़ाते-चढ़ाते रह गए। बाक़र अली साहब ने परेशान हो कर चचा छक्कन से कहा—"दोनों के दोनों अच्छे खासे समझ गए थे; आप ने फिर दोनों को भड़का दिया।"

चचा बोले—"लाहौल-विला-क़ुव्वत। कहने लगे, कि आपने भड़का दिया। अजी हज़रत, मैं तो सिर्फ़ इतना पूछ रहा था, कि क़ुसूर किस का है। आप जो बड़े पंच बन कर घर से

निकल खड़े हुए, तो इतना तो मालूम कर लिया होता, कि ज़्यादती किसकी है और असल क़िस्सा क्या है।"

बाक़र अली ने फिर बात टालनी चाही—"अजी, कहाँ अब सड़क पर क़िस्सा सुनिएगा ; जाने दीजिए, जो हुआ सो हुआ, मैं तो इन दोनों की शराफ़त की दाद देता हूँ, कि जो हमने कहा, इन्होंने मान लिया। बात आई-गई हो गई, अब आप क्या गड़े मुर्दे उखाड़ने लगे !"

चचा ने देखा, कि मीर बाक़र अली छाए चले आ रहे हैं ; आग ही तो लग गई, लेकिन संभल कर बोले—"साहब, आप को इस मोहल्ले में आए अरसा ही कितना हुआ, और हमारी तो नाल ही इस मोहल्ले में गड़ी हुई है। अब आप जाने दीजिए न इस बात को,......और सड़क पर की क्या बात है। यह झगड़ा हम तक आज न पहुँचता, तो कल पहुँच जाता, सो अब भी क्या हर्ज है सामने ही ग़रीबख़ाना है, अन्दर चल कर बैठें। दो मिनट में क़िस्सा तय हुआ जाता है। मुझे तो यह कभी गवारा नहीं, कि जिस मोहल्ले में सभी रहते हों, वहाँ पड़ोसियों में यों बाज़ार में जूते चला करें।"

यह कह कर चचा ने मजमे पर एक दृष्टि डाली और बोले—"क्यों साहब, ख़ुदा लगती कहिए, यह भला कोई शराफ़त है?"

मजमे में से समर्थन की भिनभिनाहट-सी सुनाई दी। मीर साहब चुप रह गए। चचा बोले—"तो आप दोनों साहब अन्दर तशरीफ़ ले आइए न, और मीर साहब, अगर चाहें, तो

मीर साहब भी आ सकते हैं।" अन्य लोगों को सम्बोधित कर बोले—"आप लोग जा सकते हैं, यहाँ कोई भाँड़ तो नाचेंगे नहीं, जो आपको भी बुलाऊँ। आपस के झगड़े तय कराना बड़े दिमाग़ का काम है, आप लोग अपने-अपने घर जा कर आराम कीजिए।"

लीजिए साहब, चचा क़ाज़ी बन गए ! वे मुद्दई, मुद्दालेह और मीर साहब को लिए घर में आए, घर पहुँच कर पहिले मर्दाने ही से आज्ञाओं की बौछाड़ लगा दी, कि बुन्दू लैम्प लाए, मूदा बर्फ़ का पानी लाए और इमामी हुक़्क़ा ताज़ा करके पहुँचाए; और बुन्दू लैम्प ला चुकने के बाद पानदान ले कर आए, मूदा पानी बना चुकने के बाद उगालदान ला कर रक्खे और इमामी हुक़्क़े से फ़राग़त पाने के बाद पंखा झले।

चचा ने सबको दीवानख़ाने में बिठाया और स्वयं यह कह कर अन्दर गए, कि मैं अभी आया। अन्दर जा कर बनियाइन पर चिकन का कुर्ता पहना। कुर्ता पहन ही रहे थे, कि चची ने जल्दी-जल्दी नमाज़ ख़त्म कर सलाम फेर कर पूछा—"क्या बात है?"

चचा बेपरवाही के साथ बोले—"अजब हालत है लोगों की। न दिन को चैन लेने देते हैं और न रात को। इन सामने वाले ख़ाँ साहब और मौलवी साहब में झगड़ा हो गया; मुसीबत में मेरी जान पड़ गई, सब कह रहे हैं, कि आप बीच में पड़ कर फ़ैसला करा दीजिए। बात टाली भी नहीं जा

सकती ; मोहल्ले का मामला ठहरा। ख़ैर, तुम नमाज़ से छुट्टी पाकर पान के कुछ बीड़े लगा कर भेज देना।"

चची जल कर बोलीं—"यह शौक़ भी पूरा कर लीजिए।"

चचा कुर्ते के बटन लगाते हुए बाहर निकले। दीवानख़ाने में पहुँच कर आराम-कुर्सी पर लेट गए, टाँगें समेट कर ऊपर रख लीं और बोले—" मैं हाज़िर हूँ ; कहिए क्या बात हुई ? पूरा हाल बयान कीजिए, लेकिन थोड़े में।"

मौलवी साहब और ख़ाँ साहब दोनों की त्योरी चढ़ी हुई थी। मुँह फुलाए लाल-लाल आँखों से एक इस ओर और दूसरा उस ओर ताक रहा था। चचा का तक़ाज़ा सुन कर दोनों के दोनों कुछ कुसमुसाए, मगर चुप बैठे रहे। मीर साहब ने मौन भंग किया—"हज़रत, बात तो असल में बड़ी मामूली थी ?"

चचा ने कहा—"आप भूमिका न बाँधिए, मतलब की बात कहिए।"

मीर साहब ने ग़ुस्से को पी कर कहा—"तो और क्या कहूँ। बात हक़ीक़त में निहायत मामूली है, लेकिन......।"

ख़ाँ साहब से न रहा गया, वे बोले—"कोई आप की बहू-बेटी को यों देखता, और आप इसे मामूली बात कहते, तो जानता।"

चचा कुर्सी पर उकड़ूँ बैठ गए और बोले—"औरतों का वाक़या है, तो सचमुच हज़रत इसे मामूली बात कहना, तो

बड़ी ज़्यादती है आप की। ख़ाँ साहब, आप ख़ुद ही न क़िस्सा कह जाइए।"

बाक़र अली साहब चुप हो गए। ख़ाँ साहब को प्रोत्साहन मिला। वे बोले—"आप-सा मुन्सिफ़-मिज़ाज (न्यायप्रिय) बु.ज़ुर्ग पूछेगा, तो कहूँगा ही। आप से क्या पर्दा है?"

चचा फूल गए। कुछ कहना आवश्यक प्रतीत हुआ। "नहीं, नहीं, कोई बात नहीं, आप बिला तकल्लुफ़ कहिए।"

ख़ाँ साहब ने यों कहना आरम्भ किया—"आप जानते ही हैं, कि इस सामने के मकान की निचली मञ्ज़िल में हम रहते हैं और ऊपर की मञ्ज़िल में एक खिड़की है, जिससे हमारे मकान के सहन में नज़र पड़ती है।"

चचा ने बात काट कर कहा—"जी हाँ, जी हाँ, मेरी देखी हुई क्या, मेरे सामने बनी है, और एक इस खिड़की का क्या ज़िक्र, पूरे मकान के बनवाने मेरा बहुत-कुछ हिस्सा रहा है। मालिक मकान फ़ज़लुर्रहमान ख़ाँ का मुझसे मेल-जोल था। हैदराबाद जाने से पहिले हर रोज़ शाम को वे मुझसे मिलने आते थे; और सच पूछिए, तो उन्हें यह राय भी मैंने ही दी थी, कि ख़ाली ज़मीन पड़ी है और कौड़ियों के मोल बिक रही है, तो कुछ ऐसी सूरत करनी चाहिए, कि किराए का एक सिलसिला निकल आए, तो उन्होंने यह मकान बनवाया! ख़ैर, तो यह बात जाने दीजिए, आप अपनी बात कहिए।"

खाँ साहब ने सोचा, कि बात कहाँ तक की थी। वे बोले—"जी, तो ऊपर की मञ्ज़िल में एक खिड़की है, जिससे हमारे यहाँ का सहन दिखाई देता है। हम इस मकान में पहिले से रहते हैं। यह हज़रत बाद में आए, आते ही हमने इनसे कह दिया, कि मौलवी साहब, इस खिड़की में अगर आप ताला डलवा दें, तो मुनासिब है; नहीं तो औरतों का सामना हुआ करेगा, और मुफ़्त में कोई न कोई झगड़ा खड़ा हो जायगा!"

चचा ने दाद दी—"बहुत मुनासिब कार्रवाई की आपने। क़ानून के लेहाज़ से गोया आपने एक ऐसी पेशबन्दी कर ली कि बाद में अगर किसी तरह की भी शिकायत पैदा हो, तो आपको गिरफ़्त का जायज़ मौक़ा मिले। बहुत ठीक, जी, तो फिर?"

खाँ साहब तारीफ़ से बहुत ख़ुश हुए—"ख़ुदा हुज़ूर का भला करे! मैंने सोचा, नए आदमी हैं, क्यों न पहिले से ही ख़बरदार कर दूँ। सो साहब, इन्होंने भी मुझे यक़ीन दिलाया कि खिड़की में ताला डाल दिया गया है, और मैं बेफ़िक्र हो गया। अब जनाब, आज सुबह को क्या हुआ, कि........।"

"यह लीजिए, ठण्डा पानी पीजिए; आप भी लीजिए मौलवी साहब......पानी दे बे, मीर साहब को;......जी तो आज सुबह......अबे, रख दे मेज़ पर पानदान, सिर पर क्यों सवार हो गया है? और वह इमामी कहाँ मर रहा है, अभी तक हुक़्क़ा नहीं भरा गया? जी साहब, आप कहे जाइए,

मैं सुन रहा हूँ......हाँ; और वह उगालदान? कह भी दिया था, फिर भी याद नहीं रहा, बड़े नालायक़ हो तुम लोग। ......आप कहिए न, खाँ साहब!"

खाँ साहब ने कुछ देर शान्ति की प्रतिक्षा की, फिर बोले—"जी, तो आज सुबह, इधर मैं दुकान पर चला, उधर ऊपर की मञ्जिल में एक बच्चे ने खिड़की खोल दी। औरतें सहन में बैठी थीं। उन्होंने खिड़की बन्द करने को कहा, तो यह हज़रत खिड़की में स्वयं आ मौजूद हुए और औरतों को घूरने लगे। अब आप ही कहिए, कि यह शरीफ़ों और मौलवियों की-सी बातें हैं, या लुच्चों और शोहदों की-सी हरकतें!"

चचा ने आश्चर्य के साथ आँखें खोलीं, गर्दन झुका ली और फिर एक हाकिमाना ढंग से सिर फेर कर मौलवी साहब की ओर देखा! वे बोले—"मौलवी साहब, यह तो आपने ऐसी नामुनासिब और शरह (धर्म) के ख़िलाफ़ बात की, जिसके लिए आपको जितना भी दोष दिया जाय, थोड़ा है।"

मौलवी साहव देर से बैठे चुप-चाप देख रहे थे, कि चचा सहानुभूति के साथ खाँ साहब की बात सुन रहे हैं। अब चचा ने उन्हें सम्बोधित किया, तो वे भड़क उठे—सुबहानल्लाह! आप भी अजब सीधे-सादे आदमी हैं। जो कुछ किसी ने कह दिया झट उसे सच समझ लिया। वाह साहब, वाह!! बन्द करने को लपका और किवाड़ बन्द करके उसी वक़्त ताला लगा दिया।"

चचा ने फिर टोका—"क्यों हज़रत, यह आप के घर में नाला खोलना, तो बच्चों को भी आता है, मगर बन्द करना आपके सिवा किसी को नहीं आता? ख़ूब!"

मीर बाक़र अली साहब बोले—"हज़रत, यह एक घबराहट की बात थी। इससे ज़ाहिर होता है, कि इन्हें इस खिड़की के बन्द रखने का हर वक़्त ख़याल रहता था। खुली देखी, तो एक-दम बन्द करने के लिए लपके!"

मौलवी साहब ने और भी सफ़ाई के ख़याल से कहा—"ख़ुदा गवाह है, जो मुझे यह ध्यान भी रहा हो, कि सहन में औरतें मौजूद होंगी, या मैंने उस तरफ़ नज़र भी डाली हो। सरासर झूठ है, कि मैं खड़ा रहा, बल्कि मैंने तो नीचे कहला भी भेजा था, कि मुझे बड़ा अफ़सोस है, कि बच्चे ने खिड़की खोल दी थी।"

मीर साहब ने मौलवी साहब के चाल-चलन के विषय में गवाही दी—"मौलवी साहब जब से यहाँ आए हैं, मैं इन्हें जानता हूँ। मेरे बच्चों को पढ़ाते हैं, रोज़ का आना-जाना है, और मैं दावे से कहता हूँ, कि यह इस तरह के आदमी नहीं हैं। चुनाञ्चे मैंने ख़ाँ साहब से भी यही कहा था, कि औरतों को ग़लतफ़हमी हो गई होगी, नहीं तो मौलवी साहब से किसी बुरे ख़याल की उम्मीद नहीं हो सकती।"

लेकिन चचा भला दूसरे की राय को कब ख़ातिर में लाते हैं। वे बोले—"दिला का हाल ख़ुदा जानता है, और इसके बारे में

कुछ कहना मेरे लिए कुफ़्र है। बहरहाल अभी सब कुछ खुला जाता है। तो जनाब-मौलवी साहब, आप रेलवे के दफ़्तर में क्लर्क हैं न? ख़ूब, और आपको एतवार के दिन छुट्टी भी होती है? बहुत ख़ूब!! और जनाबमन, आज एतवार का दिन था? नहीं, नहीं, बतलाइए, था या नहीं? ख़ुदा आपका भला करे! और जनाब, एतवार के दिन आप घर ही में रहते हैं, ठीक? तो सवाल यह है, कि अगर खिड़की खुलनी थी, तो एतवार ही के दिन क्यों खुली, जब आप घर में मौजूद थे? किसी और दिन क्यों नहीं खुली?"—यह कह कर चचा ने नथुने फुला कर विजय के गर्व के साथ बारी-बारी सब पर इस तरह नज़र डाली, मानो कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न करके मौलवी साहब को निरुत्तर कर दिया हो।

मौलवी साहब इस तर्क से परेशान-से हो गए। वे बोले—"हज़रत, इस बात का महत्त्व मेरी समझ में तो आया नहीं, बाक़ी क़िस्सा यह है, कि खिड़की की चाबी गुच्छे में है, गुच्छा मेरे पास रहता है, जब मैं घर पर रहूँगा, तभी गुच्छा घर पर होगा और उसी वक़्त खिड़की खुलने की सम्भावना भी है।"

चचा को इस जवाब की आशा न थी। सिर पीछे को डाल कर कुर्सी पर लेट गए और बोले— अब यह आपका हठ है, नहीं तो यह हक़ीक़त है, कि इस बात का जवाब आपके पास कुछ नहीं है।"

मौलवी साहब ने, न जाने जान-बूझ कर या अनजाने में ही, चचा पर थोड़ा रोग़न चढ़ाया। वे बोले—"साहब, जो असल वाक़या था, वह तो मैंने अर्ज़ कर दिया। अब आप अपनी क़ाबलीयत से जो नुक़ता चाहें निकाल सकते हैं, और मुझ से जाहिल की क्या हस्ती, कि बहस में आपसे आगे जा सकूँ।"

चचा प्रसन्न हो गए। मौलवी साहब के विरुद्ध, जो भाव अन्दर ही अन्दर काम कर रहा था, ठण्ढा पड़ गया। ऐसे ढंग से हँस पड़े, मानो अभी तक सिर्फ़ मन-बहलाव के लिए ये तर्क कर रहे थे। मुस्कुरा कर बोले—"मालूम होता है, आपको भी मन्तिक (तर्कशास्त्र) से दिलचस्पी है······'

ले आया वे हुक़्क़ा? रख दे इधर, अच्छा उधर ही रख दे। लीजिए मौलिवी साहब, लीजिए न। ज़रा तम्बाकू देखिए, सीधे मुरादाबाद से मँगवाता हूँ, नहीं तो यहाँ का तम्बाकू तो आप जानिए, निरा गोबर होता है। मुरादाबाद में अपने एक रिश्तेदार हैं, कलक्टरी में पेशकार हैं; मगर साहब, उनकी पहुँच का क्या कहना, वही कभी-कभी याद कर लिया करते हैं।"

मौलवी साहब ने हुक़्क़े के कश लगाने शुरू किए। खाँ साहब ने देखा, कि चचा तो मौलवी साहब की ओर झुके जा रहे हैं, ग़ुस्से से लाल-पीले हो गए और बोले—"जिस बात के लिए आपने बुलाया था, वह तो ······।"

चचा ने बात काट कर कहा—"जी हाँ, देखिए, मैं अर्ज़ करता हूँ, तो जनाबमन, बाक़ी रहा उस झगड़े का क़िस्सा। तो ख़ाँ साहब, मेरी निजी राय पूछिए, तो ताली एक हाथ से नहीं बजा करती। दुनिया में आज तक जितने भी झगड़े हुए, हमेशा उनमें दोनों तरफ़ से हिस्सा लिया गया।"

ख़ाँ साहब ने तुरन्त पूछा—"इस झगड़े में भला मेरा क्या क़ुसूर था?"

चचा ने जवाब दिया—'अरे भाई, कुछ न कुछ होता ही है न, तुम्हारा न सही, तुम्हारे घर वालों का सही; अब भला उन्हें इस वक़्त सहन में बैठने की क्या ज़रूरत थी, कोई वहाँ बाग़ तो लगा हुआ नहीं है। आप कहेंगे, कि आपके घर का सहन था। ज़रा देर के लिए मान लिया, कि था; मगर फिर ऊपर खिड़की की तरफ़ देखना क्या ज़रूरी था? वैसे मेरा कोई बुरा मक़सद नहीं, फिर भी देखिए न, कि बात को बढ़ाया जाय, तो कुछ की कुछ हो जाती है। मतलब मेरा यह है, कि ऐसे मामलों में तो जितना छानो उतना ही करकट निकलता है।"

मीर साहब इस कार्रवाई से तंग आ चुके थे। वे बोले—"अजी, अब क़सूर एक का था या दोनों का, इस बहस से आख़िर क्या फ़ायदा? आप इस क़िस्से को किसी ऐसी तरह निबटाइए, कि आइन्दा के लिए इन दोनों साहबों का इतमीनान हो जाय। मैंने तो यह तजवीज़ किया था, कि आइन्दा के

इतमीनान की ग़रज़ से मौलवी साहब की खिड़की में खाँ साहब अपना ताल डाल दें।"

चचा छक्कन ने कनखियों से मीर साहब की तरफ़ देख कर पूछा—"क्या मतलब ?"

मीर साहब ने कहा—"मतलब यह, कि मौलवी साहब के मकान की उस खिड़की में ताला बन्द रहे और उसकी चाबी इतमीनान के लिए खाँ साहब अपने पास रक्खें।

यह प्रस्ताव चचा को उचित जान पड़ा, लेकिन चूँकि यह मीर साहब की ओर से पेश हुआ था, इसलिए मानने को उन का जी न चाहा। वे बोले—"नहीं, नहीं यह तो कुछ......ऊँहूँ कुछ नहीं......इस तरह तो......ख़्वाहमख़्वाह खाँ साहब अपना एक ताला बेकार कर डालें; और अपने घर में किसी दूसरे का ऐसा दख़ल किसी हयादार को कब गवारा हो सकता है ? यह ताला-वाला कुछ नहीं, कोई और तजवीज़ होनी चाहिए; मुनासिब तजवीज़, जो दोनों फ़रीक़ों के लिए फ़ायदेमन्द भी हो और इतमीनान का बायस भी। क्यों साहब, अगर खिड़की चुनवा दी जाय, तो कैसा है ?"

खाँ साहब बोले—"अव्वल तो मालिक मकान अब यहाँ है नहीं, और अगर उसे लिखा भी जाय, तो वह इसे मंज़ूर न करेगा। मैंने एक बार यह तजवीज़ पेश की, तो वे कहने लगे, कि इस खिड़की के बन्द होने से कमरे में अँधेरा हो जायगा।"

चचा ने कहा—"यह दूसरी बात है, वरना तजवीज़ .खूब थी। सदा के लिए यह क़िस्सा ख़त्म हो जाता। मसलन आप दोनों के चले जाने के बाद कोई दो और किराएदार आ कर बसते, तो उनमें भी किसी क़िस्म का झगड़ा होने की सम्भावना न रहती। आया न ख़्याल-शरीफ़ में? मगर यह कमरे में अंधेरा हो जाने का सवाल बेशक टेढ़ा है। ख़ैर, न सही यों, किसी और तरकीब से काम लीजिए। तरकीबें बहुत—बेशुमार हैं। मुझे तो सिर्फ़ आप लोगों की सहूलियत का ख़याल है, नहीं तो मैं तो तजवीज़ों के ढेर लगा दूँ, परेशान कर दूँ आपको; बड़े-बड़े क़िस्से चुकाए हैं, इस एक खिड़की बेचारी की क्या हक़ीक़त है। तो यों क्यों न कीजिए, कि मसलन आप दोनों में से एक साहब मकान खाली कर दें और किसी दूसरी जगह जा रहें। क्यों साहब, क्या राय है?"

ख़ाँ साहब और मौलवी साहब पहले कुछ मुँह ही मुँह में बोले, फिर ख़ाँ साहब ने कहा—"साहब, मैं तो मकान छोड़ नहीं सकता। कहाँ नया मकान ढूँढ़ता फिरूँ?"

मौलवी साहब ने भी मजबूरी प्रगट की—"हज़रत, मेरे लिए तो यह फ़िलहाल नामुमकिन है। इतने किराए में इतनी गुञ्जायश भला और कहाँ मिलेगी।"

चचा की असंख्य तजवीज़ों का भण्डार इस पहली ही तजवीज़ के बाद समाप्त हो चुका था। वे बोले—"अब यों आप हर तजवीज़ में मीन-मेख़ निकालने लगें, तो तय हो चुका आपका

झगड़ा; यानी मकान बदलने में आख़िर बुराई ही क्या है। सीधी-सी बात है, कि भाई नहीं निभती तो अलग हो जाओ—न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी। क्या आपके ख़्याल में इस मकान के सिवा शहर-भर में और माक़ूल मकान ही नहीं? या और मकान बाल-बच्चेदार लोगों के रहने के लिए नहीं बनवाए गए? इनकार की कोई वजह भी तो होनी चाहिए। इससे तो ज़ाहिर होता है, कि आप लोग सुलह-सफ़ाई नहीं चाहते और चाहते हैं, कि रोज़ इसी तरह के झगड़े उठा करें। ऐसी हालत में मेरे लिए और कोई तजवीज़ पेश करना मुश्किल है। आप ख़ुद आपस में निपट लीजिए।"

मीर साहब बेचारे परेशानी की हालत में यह बातें सुन रहे थे और कुर्सी पर बार-बार पहलू बदलते थे। आख़िर उन से न रहा गया; हिम्मत करके वे बोले—"मैंने तो अर्ज़ किया न, कि दोनों के लिये सबसे अच्छी तरक़ीब यही है, कि खिड़की में ताला लगा रहे और उसकी चाबी.........।"

चचा जल कर बोले—"अजी, आप क्या एक वाहियात-सी बात के पीछे पड़ गए हैं और बार-बार कहे जा रहे हैं—चाबी-ताला, चाबी-ताला! यानी आप ने तो ऐसा कुछ समझ रक्खा है, जैसे एक ताले की दूसरी कुञ्जी बनवाई ही नहीं जा सकती।"

मीर साहब ने भी जल कर जवाब दिया—"फिर यों तो दीवार की ईंटें भी निकाल कर झाँका जा सकता है।"

बात चचा के समझ में न आई। वे बोले--"तभी तो कहा था, कि एक साहब मकान बदल दें। न मानें, तो इसका क्या इलाज ? अच्छी बात है, वह इनकी औरतों को देखा करें, यह उनकी औरतों को ताका करें।"

खाँ साहब ताव खा गए। बिगड़ कर बोले--"देखिए साहब, मुँह सँभाल कर बात कीजिए। औरतों का नाम यों ही नहीं लिया जाता। यह इज्जत का मामला है। हम ग़रीब सही, मगर नकटे नहीं हैं!"

चचा कुछ कुसमुसाए, मीर साहब घबराए, मौलवी साहब उठ खड़े हुए और बोले—"तो साहब, अब मैं इजाज़त चाहता हूँ। घर पर बाल-बच्चे परेशान हो रहे होंगे। जब कोई बात तय हो चुके, तो मुझे कहलवा दीजिएगा।"

खाँ साहब ने उठ कर उनका हाथ पकड़ लिया। वे बोले—"तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, हमारे बाल-बच्चे नहीं है? पहले फ़ैसला हो जाए फिर जाने दूँगा।"

मौलवी साहब ने हाथ छुड़ाना चाहा, मगर खाँ साहब की गिरफ़्त मज़बूत थी। वे बोले—"तो अपना ताला लाओ और खिड़की में डाल दो।"

खाँ साहब बोले—"ताला तुम दो, चाबी मेरे पास रहेगी।"

चचा को यह तजवीज़ शुरू ही से नापसन्द थी। वे बोले—"ताला यह क्यों दें, बेपर्दगी तुम्हारी औरतों की होती है, या इनकी ?"

चचा के समर्थन से मौलवी साहब को भी हौसला हुआ। वे बोले—"देखिए, तो सही !"

ख़ाँ साहब के आग लग गई। बढ़ कर मौलवी साहब की गर्दन पर हाथ डाला। मौलवी साहब के गले से एक इस तरह का स्वर निकला, जैसे ज़िबह होते हुए बकरे का निकलता है। मीर साहब 'हैं-हैं' करते लपक कर उठे। चचा बोले—"यह हाथा-पाई ठीक नहीं।" ख़ाँ साहब ने मीर साहब को ढकेला, तो वे लड़खड़ाते हुए दीवार से जा लगे। चचा ने हाथ पकड़ना चाहा, तो एक ज़ोरदार थप्पड़ उन्हें भी रसीद किया। मीर साहब तो चुपके खड़े रह गए, चचा दो क़दम पीछे हट कर बोले—"हाइ थू..!" लेकिन ख़ाँ साहब किसकी सुनते हैं। मौलवी साहब को गर्दन से पकड़ कर ढकेलते हुए बाहर निकल गए। मीर साहब आवाज़ें सुनते ही फिर बाहर को निकले। चचा चुप-चाप जहाँ थे वहीं खड़े-खड़े गाल सहलाते रहे !

खड़े ही थे, कि पर्दा उठा। चची अन्दर आ गई। ग़ुस्से के मारे उनका चेहरा तमतमा रहा था। वे बोलीं—"मैं कहती न थी, कि पराए क़िस्से में दख़ल न देना; मगर मेरी बात इस कान सुन उस कान उड़ा दी। अब आया होगा झगड़ा चुकाने का मज़ा। दो कौड़ी का आदमी बे आबरू कर गया।"

चचा इसके लिए तैयार न थे। वे बेक़ाबू हो गए—"देखो, इस वक़्त मुझसे बात न करो, वरना ख़ुदा जाने, मैं क्या कर बैठूँगा।"

चची जल कर बोलीं—"अब और क्या करोगे ? घर की इज्ज़त ख़ाक में मिला दी। मोहल्ले में किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहे। अभी कुछ और करने के अरमान बाक़ी हैं !"

चचा से जवाब बन न पड़ा। वे बोले—"इज्ज़त थी तो हमारी थी, तुम्हारी नहीं थी। तुम्हें क्या ?"

चची बोलीं—"यह उम्र होने को आई, बच्चों के बाप बन गए और बेइज्ज़त होते शर्म नहीं आती !"

इस के जवाब में चचा ने घर और बच्चों के सम्बन्ध में कुछ ऐसे अनुचित शब्दों का प्रयोग किया, जिन्हें यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

ग़रज़ यह, कि मोहल्ले के झगड़े की आवाज़ घर में आ रही थी, और घर के झगड़े की आवाज़ मोहल्ले में पहुँच रही थी !

शैतान की ख़ाला

उसका नाम चाहे जो भी रहा हो, लेकिन लोग तो उसे शैतान की ख़ाला ही कहते थे। कई वर्ष पूर्व जो लड़के थे, अब सयाने हो कर किसी काम में लग गए। उनकी जगह दूसरे लड़कों ने ले ली। इस चार्ज के बदलने में ज़रा भी विलम्ब न हुआ, और न किसी को उसका पता ही लगा! पानी की जगह पानी ने ले ली। शैतान की ख़ाला, शैतान की ख़ाला ही रही।

वह सचमुच शैतान की ख़ाला ही थी! उसे देख कर ऐसा जान पड़ता था, कि मानो अभी क़ब्र तोड़ कर भागी आ रही है। खुली हुई प्रकाशहीन आँखें, धँसे हुए गाल, उलझी हुई लटें, ये सभी बातें दिल दहलाने के लिए काफ़ी थीं। उसके शरीर पर सिवा एक फटे पाजामा के, जिससे आधे टख़ने खुले रहते थे, और अधिक से अधिक एक डेढ़ हाथ की ओढ़नी के, जो तार-तार हो रही थी, और कुछ न था। कदाचित् ईश्वर ने अपने बन्दों की परीक्षा के लिए उसकी ऐसी सूरत बनाई थी कि देखें कौन-कौन इस रचना पर मुग्ध होता है!

वह जिस राह से निकल जाती, भूकम्प-सा आ जाता। लड़के आसमान सिर पर उठा लेते। 'शैतान की ख़ाला!', 'ओ शैतान की ख़ाला!', 'अरे शैतान की ख़ाला!', 'कहाँ जाती हो?' की आकाश-भेदी आवाज़ें आने लगतीं। लड़कों का तो यह काम ही था, बड़े-बूढ़े, जवान—सभी इस तरह उसे पुकारने में ऐसे ख़ुश होते थे, मानों उन्हें कुबेर की सम्पद् मिल गई हो। इक्के वाले, ताँगे वाले, कुएँ पर पानी भरने वाली औरतें, कोई भी इस अवसर को हाथ से न जाने देता था। आगे-आगे शैतान की ख़ाला होती, पीछे लड़कों का झुण्ड! कोई तालियाँ बजाता, कोई उस पर कङ्कड़ियाँ फेंकता, "शैतान की ख़ाला जाती है! पकड़ो, जाने न पावे!"—अपनी इस आव-भगत से उसके मुँह से ऐसे-ऐसे फूल झड़ते, जो दुनिया में कहीं मुश्किल से सुनने को मिलेंगे।

हिन्दू अपने पूर्वजों को तृप्त करने के लिए जल-दान देते हैं, मुसलमान फ़ातिहा पढ़ते हैं। शैतान की ख़ाला हिन्दू भी थी, और मुसलमान भी। दोनों के दादों-परदादों, नगड़दादों की आत्माओं को मुक्ति दिलाने की कोशिश में जान निकाल कर रख देती। ज़िन्दा और मुर्दा उसकी नज़रों में बराबर थे। कभी-कभी वह रास्ते में खड़ी हो कर ख़ूब नाचती। कभी-कभी तो इतना मस्त हो जाती कि उसे किसी बात का ध्यान ही न रहता। देखने वाले चकित रह जाते। न कोई साज़, न पाँव में पौजेब, फिर भी उसके नाच से एक समाँ बँध जाता। कभी

उस फटी ओढ़नी से मुँह छिपा लेती और नई-नवेली बहू बन जाती। कभी अञ्चल को छिपा कर सङ्कोच से नीचे ताकती और थिरकती और कभी ललकार कर गाती :

चकिया सब रागन की रानी।
जाकी चकिया बन्द पड़ी है,
ताकी अकिल भुलानी।
चकिया सब रागन की रानी।

थोड़ी देर के लिए वह अपने को भूल जाती, और किसी युवती की तरह उसका दिल उमंगों से लहरा उठता। पिचके गालों पर लाली दौड़ जाती।

२

उसी महल्ले में हाजी वज़ीर ख़ाँ नामक एक वृद्ध रहते थे। रोज़ा-नमाज़ के बड़े पाबन्द, तसबीह हर समय हाथ में रहती। शरई कुर्ता और पाजामा पहिनते थे। माथे पर सिजदे का स्याह निशान था। धनवान थे, और रईस भी। मुन्सिफ़ी की चपरासगिरी कोई ऐसा-वैसा ओहदा न था। इसी की बदौलत तामील से लौटते समय सब्ज़ी का एक बड़ा बोझ लाठी में लटका कर लाते थे। कभी कन्धे पर ईख का बोझ होता था। कभी रस या राब की हँडिया साथ होती। सदरी का जेब अलग फूला न समाता। हाजी जी के लिए यह ओहदा किसी कामधेनु से कम न था। इस पेड़ में सदा फल

लगते थे। मौसम के मुहताज नहीं थे। उनकी आमदनी पर जलवायु का कोई असर नहीं था। दरवाज़े पर चार बकरियाँ और एक गाय हर समय बँधी रहती थीं। एक ख़ानदानी रईस के लिए चाहिए ही क्या!

३

हाजीजी शुरू से निकाह की अपेक्षा मुताह के क़ायल थे। लड़कपन में माँ-बाप से छिप कर बंगाल भाग गए थे। कई साल तक पता न चला। बाद में मालूम हुआ कि किसी लड़की को भगाए हुए इधर-उधर फिर रहे हैं, लाज के मारे घर नहीं आते। बाप ने पता लगा कर पत्र द्वारा समझाया—"बेटा, ऐसी भूलें सभी से होती हैं। एक बार मैं भी इसी जुर्म में ६ मास की क़ैद भुगत आया हूँ। यह कोई भूल नहीं है। उम्र का तकाज़ा है। बेटा, ग़रीब बाप को अब और न तड़पाओ, घर आ जाओ।"

पर वह सपूत थे, कपूतों की तरह घर बैठे-बैठे बाप की कमाई कैसे उड़ाते? एक महीना भी न होने पाया था कि फिर ग़ायब हो गए।

❀ ❀ ❀ ❀

पाँच साल बीत गए। वज़ीर ख़ाँ ने इस बीच दुनिया का नीचा-ऊँचा सब देख डाला। शराब भी पी। उसके ख़ुमार की वेदना भी सही।

जाड़ों की रात थी। आठ-नौ बजे होंगे, ख़ुरशेद जान का कमरा बिजली के प्रकाश से जगमगा रहा था। वज़ीर खाँ मसनद के सहारे आराम से बैठे थे। ख़ुरशेद उनके पहलू में थी। वज़ीर ख ने उसके गालों पर धीरे से दो-तीन चपत लगाए। ख़ुरशेद भी उन्हें ऐसी चितवनों से ताक रही थी, मानो प्यासी हिरनी चश्मे के पानी की ओर देख रही हो।

"आज की रात कितनी सुहावनी है, ख़ुरशेद !"

ख़ुरशेद उनकी आँखों में आँख डाल कर बोली, मानो कुछ समझती ही न हो—"क्या ?"

वज़ीर खाँ ने एक हलकी चपत और लगाई—"आज तुम कितनी प्यारी लगती हो, ख़ुरशेद !"

ख़ुरशेद मानो चौंक पड़ी—"यही मैं भी सोच रही थी, तुमने मुझे इतना कभी नहीं प्यार किया।"

"सच कहती हो, न जाने आज यह दिल तुम्हारी तरफ़ आप ही आप क्यों इतना खिंचा जा रहा है !"

ख़ुरशेद ने अपनी बाहें वज़ीर खाँ के गले में डाल दीं। "मुझे तो यही रञ्ज है कि तुम अब भी मुझे बाज़ारू मिठाई समझते हो। इस जीवन से तो अब जी ऊब गया है। यह अब मेरे लिए भार हो रहा है। यही जी चाहता है कि कहीं जा डूब मरूँ।" यह कह कर उसने मुँह दूसरी ओर कर लिया। गालों पर गरम-गरम आँसुओं के क़तरे बह आए।

वज़ीर ख़ाँ—"हैं ! यह क्या ? बड़ी नासमझ हो, ख़ुरशेद !"

ख़ुरशेद सिसकियाँ भर रही थी। बोली—"इतने दिन बीत गए, एक-दो नहीं, हज़ार बार, कह चुकी कि अब मैं आप का खिलौना बनने को तैयार नहीं हूँ। मेरे लिए तो यही अच्छा है, कि कुएँ-तालाब में जा गिरूँ !"

"ख़ुरशेद..............."

ख़ुरशेद ने बात काटी, "अब मैं कुछ नहीं सुन सकती। आज ही फ़ैसला कर दीजिए, या तो आज्ञा दीजिए कि बाक़ी ज़िन्दगी आपके क़दमों में बसर करूँ, या जवाब ही दे दीजिए ! मैं अपना रास्ता सोच चुकी हूँ।" यह कह कर वह फिर सिसकने लगी।

"वज़ीर ख़ाँ को अब अधिक लज्जित न करो, ख़ुरशेद ! वह रूपए वाला नहीं है, मगर दिल रखता है, उसकी क़द्र करना जानता है, उसका मूल्य समझता है। दुनिया की कोई ताक़त मुझे तुमसे जुदा नहीं कर सकती।

यह कह उन्होंने उसका मुँह अपनी ओर कर लिया। वह भी कुछ न बोली। गालों के आँसू सूख गए। आँखें नम थीं, पर मुस्कुरा रही थीं। उनमें आशा के आँसू थे। वज़ीर ख़ाँ ने कहा, मौक़ा देख कर दो-चार रोज़ में हम यहाँ से चल देंगे।

"कहाँ ?" ख़ुरशेद ने पूछा।

"जहाँ हमारे-तुम्हारे बीच कोई रोक-टोक न हो।"

खुरशेद मुस्कुरा दी। इस ज़रा सी-मुस्कुराहट में आशा और निराशा आँखमिचौनी खेल रही थी। न जाने ऐसे कितने वादे वह प्रतिदिन सुना करती थी। भय था कि कहीं यह भी धोका न हो। उसने सोचा कि वह उस बेचारे के साथ कितना अन्याय कर रही है। वज़ीर खाँ उसका आशिक़ नहीं, पुजारी है। उसने सन्तोष की साँस ली।

वज़ीर खाँ ने कहा—"साथ कुछ ले चलना होगा, मेरा हाथ तो आजकल बिलकुल खाली है।"

आशा ने पाँव निकाले। बोली—"इसकी कौन चिन्ता है। मेरे गहने ही इतने काफ़ी हैं कि बरसों गुज़र-बसर हो सकता है!"

वज़ीर खाँ इस मैदान के अच्छे खिलाड़ी थे। घात देख कर वार किया, "क्या कहती हो, ख़ुरशेद! ख़ुदा वह दिन न दिखावे, जब ऐसी नीयत हो।

खुरशेद ज़रा तेज़ पड़ी—"जभी तो कहती हूँ, तुम मुझसे दुई रखते हो। अफ़सोस, तुम मुझे अब तक न पहचान सके।"

वज़ीर खाँ ताड़ गए, चिड़िया बुरी तरह दाने पर गिर चुकी है—जाल में फँस चुकी है। मुस्कुरा कर बोले—"तुम्हें ज़ेवरों के जाने का ज़रा भी ग़म न होगा, खुरशेद, ईमान से कहती हो?"

ख़ुरशेद ने जोश से उत्तर दिया, "अपने सर की क़सम, ख़ुदा गवाह है।"

"मेरे सर की क़सम खाओ।"

ख़ुरशेद उदास हो गई।

वज़ीर ख़ाँ ने उसकी हथेली दबा कर कहा, "अच्छा देखूँ, तुम्हारे पास क्या-क्या है, जिस पर तुमको इतना भरोसा है!" यह कह कर वह फिर मुस्कुराए।

ख़ुरशेद उठी और आन की आन में एक मख़मली डिब्बा ला कर वज़ीर ख़ाँ के सामने रख दिया। सन्दूक़ खोलते ही वज़ीर ख़ाँ की आँखों में चकाचौंध पैदा हो गई। एक-से-एक क़ीमती ज़ेवर थे। मन ही मन समझ लिया कि एक लाख से कम के होंगे। दिल ख़ुशी से बल्लियों उछलने लगा। "इन्हें पहिन कर तुम रानी मालूम होगी, ख़ुरशेद! क्यों अपने साथ इतना ज़ुल्म करती हो?"

चिड़िया पर वाली थी, पर उसमें उड़ने की शक्ति अब न रही। उसकी जान अब शिकारी की मुट्ठी में थी। ख़ुरशेद ने भोली झिड़की दी—"तुमको इससे क्या ग़रज़? अपनी चीज़ चाहे जिस तरह फूँकूँ।" उसकी आँखों में आनन्द का सागर लहरा रहा था।

वज़ीर ख़ाँ—"आज से मैं अपने को एक रानी का राजा समझता हूँ।"

"इसमें भी कोई शक है ! मैं भी अपने राजा की रानी हूँ"
—.ख़ुरशेद ने उल्लास-भरे स्वर से जवाब दिया और वज़ीर ख़ाँ की छाती में अपना मुँह छिपा लिया।

"इस तख़्त-नशीनी की ख़ुशी में क्या अपने प्यारे हाथों से एक जाम न पिलाओगी ?"

ख़ुरशेद निहाल हो गई ! जाम पर जाम चलने लगे !!

यह वही ख़ुरशेद है, जिस के पैरों पर बड़े-बड़े रईस और धनवान माथा रगड़ते थे। जान तक देने को तैयार रहते, मगर वह सीधे मुँह बात तक न करती। समझती, यह मेरे खिलौने हैं। नादान आज इस मक्कार वज़ीर ख़ाँ के पीछे बे-अख़्तियार दौड़ पड़ी, जैसे मुद्दतों का प्यासा पथिक रेत को पानी समझ कर दौड़ता है !

❀ ❀ ❀ ❀

दो बजे थे। रात किसी बदनसीब के दिल की तरह काली थी। चारों ओर सन्नाटा था। हाथ को हाथ न सूझता था। उसी वक़्त वज़ीर ख़ाँ जेवरों की पोटली छिपाए .ख़ुरशेद के ज़ीने से उतरे और स्टेशन की ओर चल दिए।

४

इसको भी एक ज़माना गुज़र गया। वज़ीर ख़ाँ अब हर साल हज करने जाते हैं ! बाप-दादों का झोपड़ा अब एक पक्के मकान में परिवर्तित हो गया है। क़ुदरत ने जवानी की काली

दाढ़ी को उजले रंग में रँग दिया है। चपरासी हैं, तो क्या हुआ; शहर के मुसलमानों में उनका काफ़ी मान है। उनके बारे में हर आदमी की एक नई राय है। कुछ कहते हैं कि उनके हाथ कोई गड़ा हुआ खज़ाना आ गया है, नहीं तो चपरासगिरी में यह बरकत कहाँ? उनके भक्त यह सुन कर नाराज़ होते हैं। उनका विचार है कि यह कोई वली हैं। फ़रिश्ते हर साल इनको हज के लिए मार्ग-व्यय दे जाते हैं। इसी तरह की और कितनी ही बातें हैं। एक जमात की यह भी राय है कि इनके हाथ अलाउद्दीन का चिराग़ लग गया है। खैर, जो कुछ भी हो, इस भेद को पूछने की किसी में हिम्मत न थी।

एक दिन शाम को हाजीजी अपने दरवाज़े चौकी पर बैठे हुक़्क़ा पी रहे थे। दो-तीन आदमी बच्चों को लिए ज़मीन पर बैठे थे, जो झाड़-फूँक के लिए आए थे। एक लड़का बकरी दुह रहा था, दूसरा गाय के लिए करबी काट रहा था। अचानक एक स्त्री आकर खड़ी हो गई। उसका रूप अत्यन्त भयानक था। बदन पर चिथड़ों के सिवा कुछ न था। वह खिलखिला कर ज़ोर से हँसी। तनकर खड़ी हो गई, और अपनी आभाहीन आँखें मटका कर बोली, "राजा, मैंने तुमको खोज ही लिया! बहुत छिपे-छिपे फिरते थे।" यह कह वह अट्टहास करके हँसी। हाजी का खून सूख गया। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। किन्तु हिम्मत करके बोले "भई तू कौन है? अपना रास्ता ले। यहाँ क्या करने आई है?"

उसने फिर एक गगनभेदी क़हक़हा लगाया। "अब क्यों पहचानोगे राजा ! अच्छा, लो बतलाती हूँ। मैं तुम्हारी वही......हाँ, याद करो। इतनी जल्दी भूल गए। मैं तुम्हारी वही रानी ख़ुरशेद हूँ। अपने राजा की राजधानी देखने आई हूँ।" यह कह कर उसने फिर ज़ोर का क़हक़हा लगाया।

हाजीजी पर मानो आसमान टूट पड़ा। चेहरे पर एक रंग आने और एक जाने लगा। बुढ़िया बोली, "अच्छा जाती हूँ राजा, फिर मिलूँगी।" उस ने फिर एक क़हक़हा लगा कर वातावरण में कँपकँपी पैदा कर दी और चल दी। हाजीजी की जान में जान आई। एक सर्द आह भर कर वहीं लेट रहे। एक आदमी ने पूछा—"हाजी जी, यह कौन है ?" उन्होंने बेपरवाही से जवाब दिया—"कोई पगली होगी।"

दूसरा बोला—"दिल पर कोई गहरा सदमा पड़ा है।"

पहिला—"शायद लड़का मर गया है।"

तीसरा—"लड़के तो सभी के मरते हैं, कोई और बात होगी।"

"घर वालों ने निकाल दिया होगा।"

हाजीजी ने बात को टालने के लिए कहा, "अल्लाह की मर्ज़ी, यह सब उसी के करश्में हैं। इस ज़िन्दगी में फ़क़ीर को अमीर और अमीर को फ़क़ीर बनते देखा है।" यह कह कर उन्होंने फिर एक ठण्डी साँस ली।

पगली का अब यही नियम हो गया। वह प्रति दिन वज़ीर खाँ के दरवाज़े जाती। दरवाज़े पर एक क़हक़हा लगाती, और चल देती। दिन-भर मारी-मारी फिरा करती। कोई कुछ दे देता, तो खा लेती, नहीं तो सड़क के किनारे या किसी पेड़ के नीचे पड़ कर सो रहती। हाजी ने भी समझ लिया कि यह मुहब्बत की मारी उनका सब कुछ बिगाड़ सकने पर भी कुछ न बिगाड़ेगी। वह उससे कुछ न बोलते। परन्तु उनकी नव-विवाहिता पत्नी, हसीना, जिसको आए अभी एक साल ही हुआ था, उसकी आवाज़ सुनते ही रोने लगती। उसने हाजीजी को उससे पीछा छुड़ाने की अनेकों तरकीबें सुझाईं, मगर वह टालते ही आए।

एक दिन दोपहर के समय हसीना दरवाजे की आड़ से एक बिसाती से मिस्सी-सुरमा ले रही थी। घर पर कोई न था। हाजी तामील पर गए थे। लड़के जंगल में थे। चारों ओर सन्नाटा था। दोनों ख़ूब हँस-हँस कर मोल-भाव कर रहे थे। कौन किसका गाहक था, यह बतलाना कठिन था। हसीना कुछ कहने ही जा रही थी, कि पगली का क़हक़हा सुनाई दिया। उसने दरवाज़े पर खड़े हो कर दो-तीन क़हक़हे लगाए, फिर अपनी राह ली। प्रेमालाप में विघ्न पड़ने से हसीना जल-भुन गई।

दूसरे दिन पगली फिर उसी समय आई। हसीना भरी बैठी थी। ज्यों ही वह जाने के लिए मुड़ी कि हसीना ने एक

जलता हुआ चैला फेंक कर मारा। बेचारी बिलबिला उठी। मगर थोड़ी देर में फिर एक क़हक़हा लगा कर चल दी।

संसार इतना मूर्ख नहीं है, जितना हम समझते हैं। वह ज़बान से चाहे कुछ न कहे, पर अपने व्यवहारों से यह दिखला देना चाहता है, कि मैं तुम्हारी नस-नस पहिचानता हूँ। हाजीजी को देख कर अब लोग मुँह फेर लेते थे।

५

एक वर्ष और बीत गया। शैतान की ख़ाला अब नहीं दिखलाई पड़ती। लड़कों में भी अब वह पहिले वाली स्फूर्ति नहीं रह गई। हाजीजी भी अब निश्चिन्त देख पड़ते हैं। इतने पर भी प्रायः एक भेद-भरे भय से उनका मुखमण्डल पीला पड़ा जाता है।

❀ ❀ ❀

पगली एक दिन सड़क पर चली जा रही थी, बस्ती से कई मील दूर। पीछे लड़कों की भीड़ थी। वे चिल्ला रहे थे, "शैतान की ख़ाला जाती है, अरे शैतान की ख़ाला जाती है! अरे शैतान की ख़ाला कहाँ जाती हो?" इनसे पीछा छुड़ाने के लिए वह दौड़ी। लड़कों ने पीछा किया। सामने से एक मोटर आ रही थी। चाल तेज़ थी। ड्राइवर ने बहुतेरा ब्रेक लगाया। मगर रुकने के पहिले ही पगली उससे टकरा गई। सर फट गया। कई दिन अस्पताल में रहने के बाद शैतान की ख़ाला और लड़कों की खिलौना सदा के लिए शान्त हो

गई। मरते दम भी उसकी प्रकाशहीन आँखें खुली थीं, और उसके मुख से यह शब्द निकले थे, "हाय मेरे राजा, तुम्हें एक नज़र देख भी न सकी।"

६

रमज़ानशरीफ़ शुरू होने वाला था। लोग हज की यात्रा के लिए जाने लगे। वज़ीर खाँ भी हर साल इसी महीने में हज के लिए जाते थे। परन्तु इस वर्ष उन्होंने कोई तैयारी नहीं की। लोगों ने फिर उनको सन्देह की दृष्टि से देखा—

"अब क्या खाकर जायँगे। उस पगली की रक़म कब तक काम देगी! बेचारी दाने-दाने को तरस कर मर गई, और इस क़साई को उस पर दया न आई। औरत शरीफ़ थी। मरते दम तक उसका नाम लेती रही।"

एक दिन रात के समय वह अन्दर कमरे में सो रहे थे। पास ही दूसरी चारपाई पर हसीना लेटी थी। लड़के बाहर थे। वज़ीर खाँ ने देखा, पगली मुस्कुरा कर कह रही है, "वाह, मेरे राजा, कल से रमज़ानशरीफ़ शुरू होने वाला है, और तुम अभी हज के लिए नहीं गए। मुझे देखो। तुम से पहिले यहाँ पहुँच गई। सफ़र-खर्च तो अभी तुम्हारे पास है ही, उसे किस दिन के लिए रख छोड़ा है!"

वज़ीर खाँ ने रो कर कहा—"प्यारी ख़ुरशेद, मुझे तो वहाँ जाते भय लगता है। रास्ते में जंगली जानवर मुझे मार डालेंगे।"

.खुरशेद ने मुस्कुरा कर जवाब दिया—"घबराओ मत, मेरे राजा, वह तुम्हें तकलीफ़ न देंगे। साहस से काम लो। मैंने तुम्हारे लिए फूलों का रास्ता तैयार किया है! तुमको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा!"

"नहीं .खुरशेद, तुम झूठ बोलती हो। मुझे भुलवा देती हो। मुझे निगलने के लिए चारों ओर अजदहे मुँह फैलाए बैठे हैं। यह देखो, उनके मुँह से कैसे शोले निकल रहे हैं! अरे बचाओ! .खुदा के लिए बचाओ!! अपने वज़ीर पर तरस खाओ!" यह कहते-कहते वह चीख़ उठे। .खुरशेद मुस्कुराई और उसने अपने हाथ सहायता के लिए बढ़ा दिए!

चीख़ सुन कर हसीना घबरा कर उठ बैठी। वज़ीर ख़ाँ को जगाया; पर वह बेहोश थे। बदन तवे की तरह जल रहा था। साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी। लड़के दौड़ कर ओझा-सयानों को बुला लाए। झाड़-फूँक होने लगी। मुहल्ले वाले जमा हो गए। पास ही एक हकीम जी रहते थे। उन्होंने भी कई चूर्ण खिलाए। मगर नतीजा कुछ न निकला। सुबह होते-होते हाजीजी की आत्मा इस पिञ्जर-रूपी शरीर से सदा के लिए विदा हो गई।

❀ ❀ ❀

जितने मुँह उतनी ही बातें। किसी ने कहा, "बुड्ढा पाप के परिणामों से न बच सका। नरक में भी जगह न पायगा।" ऐसे भी लोग थे, जो कहते थे कि वली थे, सीधे स्वर्ग पहुँच गए!

हसीना बहुत दिनों तक इस मकान में शोक न मना सकी। उसकी दीवारें अब उसे काटने दौड़तीं। एक सप्ताह भी न होने पाया था कि एक रोज़ रात में ग़ायब हो गई। सुबह लड़कों ने देखा, तो ज़मीन पर चन्द गड्ढों के सिवा कुछ न पाया। हाय मार कर रह गए!

❀ ❀ ❀

एक युग बीत गया। वज़ीर ख़ाँ का मकान अब भी मौजूद है। मगर शाम होते ही लोग उधर से निकलना बन्द कर देते हैं। लड़कों का भी कुछ पता नहीं। लोगों का ख़याल है कि फिरंगी उन्हें किसी उपनिवेश में ले गए! मकान हाजीजी के एक दूर के सम्बन्धी के क़ब्ज़े में है, मगर कोई किराएदार उसमें एक दिन से ज़्यादा नहीं ठहरता। मुहल्ले वाले कहते हैं कि उसमें "हाय राजा! हाय राजा!!" की भयानक आवाज़ें आती हैं, और कभी-कभी क़हक़हों से उस की दीवारें हिलने लगती हैं!

आ - कू - छीं

दारोगा साहब खाना खा कर उठे ही थे कि उन्हें जोरों की छींक आ गई। रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफलता प्राप्त न हुई। अन्त में लाचार हो कर आपने मुँह फैला कर, आँखें सिकोड़ कर और नथुनों को फड़का कर छींक ही दिया—आकू—छीं !

इसके बाद वह बड़ी देर तक पटरे पर खड़े रहे, पेट पर बायाँ हाथ फेरते रहे और कुछ सोचते रहे। सोचते-सोचते वह यह भूल गए कि वह क्या सोच कर उठे थे। बड़ी देर तक कोशिश की कि वह याद आ जाय, किन्तु नहीं याद आई। उनके चेहरे पर परेशानी के भाव प्रगट होने लगे; कुछ क्रोध भी आने लगा। आपने फिर पेट पर हाथ फेरना आरम्भ कर दिया। इस बार दाहिना हाथ था, धुला नहीं था। पेट पर जब ठण्ढक-सी मालूम हुई, तो सिर झुका कर देखा। पेट पर खासी दाल चुपड़ी हुई थी ! पारा और चढ़ गया।

याद आ गई—आपके ज्ञान-चक्षु खुले, और आपको याद आ गई कि आप पटरे पर से हाथ-मुँह धोने के लिए उठे थे। आपके चेहरे पर की हवाइयाँ विलीन हो गईं, और उनके स्थान पर कुछ सन्तोष की आभा-सी झलकने लगी।

लेकिन हाथ-मुँह धोते कैसे? आप कहेंगे, पानी से। सो तो ठीक है! पानी से तो हाथ-मुँह धोया ही जाता है, भला कोई दूध-दही से भी हाथ मुँह धोता है! यहाँ पर तो इसका कोई प्रश्न ही नहीं था। यहाँ तो यह समस्या थी की हाथ-मुँह धुले कैसे? पहिले ही से तो गुत्थी पड़ गई थी—अपशकुन जो हो गया था!

आपकी भौहों पर फिर बल पड़ने लगे। माथे पर कर्क और मकरवत् रेखाएँ पड़ गईं। विकट प्रश्न था—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से भी गूढ़ और गृह-युद्ध (सामाजिक और राजनैतिक) से भी विकराल!

आपने सोचा और ख़ूब सोचा। खड़े-खड़े पैरों में दर्द-सा होने लगा और सोचते-सोचते मतिष्क में ऐंठन पैदा हो गई—रुलाई-सी आने लगी।

बीबी मायके गई थी। उन्हें अपने ही हाथों बनाना-खाना पड़ता था। जाते समय बीबी ने इनसे कह दिया था—"महराज लगा लेना"; किन्तु उन्होंने अपनी खोपड़ी इधर से उधर को घुमा दी थी। सोचा था—काहे को इतना पैसा बरबाद करें। कौन जीभ टपकती है। अपने ही हाथ से बना खा लेंगे।

कष्ट तो जरूर होगा, लेकिन क्या, पन्द्रह रोज़ की तो बात ही है—सब निभ जायगा।

कहने का अर्थ यह है, कि आपने महाराज नहीं लगाया। एक बार पड़ोस के शर्मा जी ने पूछा भी था—"कहिए तो महाराज लगवा दूँ।" आप कुछ हड़बड़ा कर जल्दी से कह उठे थे—"नहीं-नहीं, हमको महाराज नहीं लगवाना है।" और शर्माजी मुस्करा दिए थे।

दारोग़ा जो सनातनधर्मी थे—अन्धविश्वासी और कञ्जूस भी थे।

आपने धीरे से एक पैर ज़मीन पर रक्खा और मन में कुछ निश्चय-सा किया। क्या हुआ, जो छींक आ गई? देखा जाएगा, जो कुछ होगा। आखिर हम इतने चोर पकड़ते हैं, अफ़सरों से जूझते हैं, और हम—भला हम—एक सड़ी-सी छींक से डर जायँ! कभी नहीं, ऐसा होना कठिन है। एक बहादुर पुलिस के इन्सपेक्टर, और भयभीत हो जायँ एक साली छींक से!

परन्तु, प्राचीन संस्कारों में पला हुआ आपका मन काँप रहा था। हिम्मत बाँध रहे थे और 'डर न मन!' कह रहे थे। अब अपने दूसरे पैर को भी पटरे से सिंहासनच्युत किया और सँभाल कर क़दम रखते हुए नल की ओर बढ़े।

परन्तु बारह बज जाने के कारण नल बन्द हो चुका था। एक बर्तन में थोड़ा पानी था, उससे हाथ धोए और रूमाल से हाथ पोंछते हुए सोचते-सोचते खाट पर चित लेट गए।

२

मुश्किल से दस मिनट भी खाट पर न लेट पाए होंगे कि किसी कम्बख़्त ने दरवाज़ा खटखटाना शुरू किया। "दरोग़ा जी! दरोग़ा जी!!" की आवाज़ ने दारोग़ा जी के मधुर स्वप्नों को भंग कर दिया। आँखें खोले कुछ देर तक अचकचाए-से खाट पर पड़े रहे। फिर धीरे-धीरे उनकी संज्ञा जाग्रत हुई और उन्होंने यह महसूस किया कि वह पुकार उन्हीं के लिए है। दरवाज़ा खटखटाने का तुमुल रव और भी भीषण रूप धारण करता गया। "दारोग़ा जी!!" का सम्बोधन और भी अधिक तीव्र होता गया। साथ ही दो-चार मनुष्यों की फुसफुसाहट और दबी हुई बातचीत भी कर्णगोचर होने लगी।

लाचार, दारोग़ा साहब उठे और उन्होंने काँखते हुए लँगड़ाते-से जा कर द्वार खोल दिया। वह अपने सामने का दृश्य देख कर कुछ सहम-से गए और दो क़दम पीछे हट गए।

सामने एक कटी-फटी-सी लाश थी। लाश के साथ दो आदमी भी खड़े थे। एक जवान था। उसके हाथ में लाठी थी और छाती पर रीछ-जैसे घने बाल थे। दूसरा बूढ़ा था। उसकी बारह इञ्ची डाढ़ी बिल्कुल सफ़ेद थी। उसकी सूरत भीष्म पितामह से मिलती-जुलती थी।

"मालिक, बीमार हैं क्या?" भीष्म पितामह ने पूछा।

"नहीं तो! क्यों? बात क्या है?"—दारोग़ा जी ने कुछ

सहम कर पूछा। किसी अज्ञात आशंका से उनके वक्षस्थल में कुछ प्रेरणा-सी होने लगी। भूकम्प आ गया!

"तो माँ-बाप, यह लेप काहे को लगाए हैं?"—पितामह ने माँ-बाप के पेट को छू कर कहा। (माँ-बाप के पेट पर खासी दाल चुपड़ी थी!)

"अरे, कुछ नहीं, यूँ ही......" दारोग़ा जी ने दोनों हाथों से पेट को छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"अरे, बाबू जी कुछ तो बता दें...क्या हुआ है?"

दारोग़ा जी जानते थे कि देहाती बड़े बातूनी होते हैं और बिना जाने पिण्ड छोड़ने के नहीं। उन्होंने यूँ ही कह दिया—"कुछ नहीं—ज़रा पेट में स्क्वायर रूट (Square root) हो गया था। अब बिलकुल आराम है।"

"हाँ!"—बूढ़े ने गरदन हिलाते हुए कहा। पर हुज़ूर सँभले रहें। बदपरहेज़ी से बढ़ जाता है—क्या नाम बताया मालिक इसका?"

"स्कूयर रूट।" कुछ झेंपते हुए दारोग़ा जी बोले।

"बड़ी खराब बीमारी है, हमारी मेहरारू भी इसीसे मरी—ठण्ढ से बढ़ जाती है।"

जवान बोला—"अच्छा, हुज़ूर यह देख लें।" उसने उस लाश की ओर सङ्केत किया। "हुज़ूर, यहाँ से तीन मील पर तीन बाघ आए हैं!"

"तीन शेर !" दारोग़ा जी का ढोल-नुमा शरीर काँप उठा और उनका रोम-रोम रोमाञ्चित हो उठा।

"हाँ हुज़ूर ! एक मादा और दो बच्चे।"

दारोग़ा जी ने सन्तोष की साँस ली। तीन शेरों का नाम सुन कर उनके हृदय में हड़कम्प पैदा हो गया था। थे तो बहादुर, फिर भी तीन शेर, एक दो नहीं—पूरे तीन—हँसी-मज़ाक़ नहीं ! दुनली की जगह ति-नली बन्दूक़ की ज़रूरत पड़ती !

"और यह है भगेलू।"—बूढ़े ने लाश की ओर सङ्केत करते हुए कहा।

"यह तो लाश है।"—दारोग़ा जी ने सहम कर कहा।

"हाँ, तो भगेलू की लाश है। एक ही तमाचे में उसके प्राण निकल गए। यह देखिए !"

जवान बोला—"कल शाम को केहू अहीर की एक भैंस खा गई थी और नरसों न जाने किसकी घोड़ी खा गई थी।"

"भैंस ! घोड़ी !"—दारोग़ा जी ने आतङ्क में आकर पूछा।

हाँ, एक हड्डी भी नहीं छोड़ी, सब खा गई।"

दारोग़ा जी थोड़ी देर तक शेरनी के ज़बरदस्त हाज़मे की बाबत सोचते रहे। मन में कहा—"यहाँ तो चार रोटी हज़म नहीं होती, चूर्ण खाने पर भी—और एक पूरी भैंस, १०० प्रति-शत घोड़ी ! ग़ज़ब हो गया—कमबख़्त का पेट क्या है, मानो अस्तबल है !!"

"अच्छा तो, इसको ले जाओ डॉक्टर के पास और थोड़ी देर में हमारे पास आओ, हम उसे मारने चलेंगे।"—दारोग़ा जी ने कुछ देर सोच कर कहा।

और जब तक कि वे दोनों बुद्धू अपने अस्तित्व की गुत्थी सुलझाने में मशग़ूल थे, दारोग़ा जी अन्दर चले गए और जल्दी-जल्दी पेट वग़ैरह धोने लगे। दाल सूख कर सख़्त हो गई थी, इसलिए उन्हें इस क्रिया में काफ़ी समय लग गया।

३

"अजी डॉक्टर साहब, क्या पूछते हो!"—दारोग़ा जी ने उत्साह के साथ कहा, "जब मैं पिछली बार उस दहिवाड़े के शेर को मारने गया था तो......।"

सामने से एक मोटर कार आ रही थी, और जब वह हमारे शिकारियों की कार के पास से गुज़र गई, तो पीछे एक धूल का ग़ुबार छोड़ती गई। इसके कारण दारोग़ा जी के उत्साह में ख़लल पड़ गया, और उन्हें पाँच मिनट तक कठोर प्राणायाम-साधन करना पड़ा।

"तो?"—डॉक्टर ने पूछा।

"क्या पूछना था। हम तो सीधे चले हाथ में बन्दूक़ लिए, न मचान बाँधा और न हाँका कराया। चुपचाप पहुँच गए और सामने देखा, कोई बीस गज़ पर वह प्रसिद्ध आदमख़ोर—दहिवाड़े का शेर!

"क्या ? काहे का शेर ? दही-बड़े का ?"

"नहीं भाई ! दहिबाड़े का। उसने पहिला आदमी इसी नाम के गाँव में खाया था, इससे उसका नाम यही पड़ गया।" —कुछ झुंझला कर दारोग़ा जी बोले।

"अच्छा हाँ, बढ़े चलिए"—डॉक्टर ने प्रोत्साहन दिया।

"तो बीस गज़ की दूरी पर वह ख़ूँख़्वार आदमख़ोर खड़ा था। मैंने क्या किया, जानते हो ? सीधे मज़बूत हाथों से बन्दूक़ उठाई और पुष्ट पुट्ठों पर रक्खी......"

"जाँघ पर ?"—डॉक्टर के मुँह से निकल पड़ा। उसने तुरन्त ही क्षमा-याचना की और दारोग़ा जी आगे बढ़े—"कन्धों पर, समझे, उलूल-जुलूल प्रसाद !—जाँघ पर रख कर बन्दूक़ नहीं दाग़ी जाती। फिर मैंने आँखों में निशाना लगाया और...।"

"शेर मर कर गिर पड़ा ! बड़ी कटीली आँखें हैं आपकी—ओह, Excuse me !"

"चुप रहो ! हाँ तो, मैंने निशाना लगाया और......।" दारोग़ा जी चुप हो रहे।

सामने से एक बिल्ली रास्ता काट कर निकल गई ! डॉक्टर ने बिल्ली को नहीं देखा।

"कहिए, चुप क्यों हो गए। तो आपने निशाना साध कर लगाया और फिर क्या हुआ ?"

दारोग़ा जी ने सहम कर धीरे से कहा—"बिल्ली रास्ता काट गई।"

"जंगल में बिल्ली !! और रास्ता काट गई, जब आप निशाना लगा रहे थे ! वाह साहब, वाह ! ख़ूब कहते हैं !! आप जैसा झूठा तो मैंने अभी तक देखा क्या सुना तक नहीं ! ख़ूब, भला बिल्ली को क्या पड़ी थी कि रास्ता काट जाती ?"

दारोग़ा जी बिलकुल चुप थे। उनके मुँह से शब्द निकल नहीं रहे थे। ओंठ सूखे जा रहे थे और ज़बान तालू से चिपक गई थी। फिर भी उन्होंने प्रयत्न करके कहा, "अभी, अभी, एक बिल्ली...गुज़र गई......रास्ते से।" सवेरे की छींक को याद कर उनकी रही-सही हिम्मत पस्त हो गई। मुँह सूख कर छुहारा हो गया।

"बड़े अन्धविश्वासी हो ! मुझे ऐसा नहीं मालूम था, जो मैं जानता कि इतने चोचले खेले जाएँगे, तो मैं अकेला ही न चला आता ! या यह सब अपना बोदापन छिपाने के बहाने हैं, क्यों यार ? बोलते क्यों नहीं ? मैं तो बहादुर समझता था; लेकिन दोस्त, तुम तो बड़े बोदे निकले !

भीष्म पितामह को ज़ोरों की हँसी आ गई। वे भी मोटर में पीछे बैठे थे, शेरनी का स्थान बताने के लिए।

डॉक्टर साहब बिलकुल चुप हो गये। उन्हें, बोलने की सनक में, पीछे बैठे हुए दो भूतों का कुछ ख़याल ही नहीं रहा था और नतीजा यह हुआ कि वे अनाप-सनाप बक गए। बाद में उन्हें बड़ी शरम लगी और पीछे घूम कर देखने की उनकी हिम्मत ही न पड़ी।

दारोग़ा जी का बुरा हाल था। सुबह की छींक के तो दुष्परिणामों को वह भूल ही नहीं सके थे। और अब यह कमबख्त बिल्ली......डॉक्टर के चुभते हुए शब्द और एक बाल-बच्चेदार शेरनी का शिकार!

इसके आगे कुछ वार्तालाप नहीं हुआ। मोटर की आवाज़, कभी-कभी डॉक्टर की खाँसी और दोनों देहातियों की फुसफुसाहट को छोड़ कर और कोई भी शब्द उत्पन्न नहीं हुआ; क्योंकि वातावरण क्षुब्ध था और सभी कुछ न कुछ सोचने में मग्न थे।

"बस"—देहाती जवान ने कहा—"यहीं आस-पास कहीं वह मिल जाएगी, उसकी खोज में हमें ज्यादा दूर न जाना पड़ेगा।"

डॉक्टर ने मोटर का दरवाज़ा खोल दिया और नीचे उतर पड़े। दारोग़ा जी की हृदय-गति बन्द होने पर थी। लड़खड़ाती हुई टाँगों के बल वह उलटे और रुँधे कण्ठ से प्रयत्न कर किसी तरह बोले, "म...म...मचान तो बाँधा ही नहीं गया!"

सब के सब चौंक पड़े। इसका तो किसी को खयाल ही नहीं था। अब? कैसे क्या हो? यकायक सबके मन में लौट चलने का विचार आ गया, किन्तु किसी ने मुँह से कहा नहीं, क्योंकि सभी जानते थे कि उनकी हँसी होगी।

पास ही एक पेड़ की डालें हिलीं। सब ने चौंक कर देखा। दारोग़ा साहब के घुटने काँप उठे और मौक़ा पा कर उनके पैरों तले की ज़मीन और खोपड़ी पर का आसमान खिसक गया।

"अच्छा हुज़ूर,"—बूढ़े ने कुछ सोच कर कहा, "एक तरक़ीब बताऊँ, हुकुम हो तो।"

"कहो।"

"शेरनी की बास बीस गज़ से आती है। जब बास आए, तो हम लोग जल्दी से पेड़ पर चढ़ जाएँ और जब पास आए तो, दे धड़ाम !!"—उसने समझाते हुए कहा।

"लेकिन"—डॉक्टर ने एक आपत्ति की, "शेरनी अगर यहाँ न आए, तो ?"

"अगर होगी, तो ज़रूर आएगी। आदमी की बास उसको बड़ी दूर तक मालूम हो जाती है, ज़रूर आएगी।"

"लेकिन, अगर आदमी बास न करे, तो ?"

"आदमी के करने न करने से क्या होता है ? शेरनी अपने आप जान लेती है कि बास आ रही है।"

सब के सब सतर्क हो कर खड़े हो गए। अपनी-अपनी नाक ऊपर कर बार-बार हवा सूँघते, जब एक थक जाता तो दूसरा नाक-भौं सिकोड़ कर 'सूँ-सूँ' करना आरम्भ कर देता। बड़ी देर तक यही तमाशा होता रहा। जब सब के सब थक गए, तो चुपचाप सब पेड़ पर चढ़ गए। लेकिन पेड़ पर चढ़ने के बाद भी दारोगा साहब 'सूँ-सूँ' करते रहे। इस पर डॉक्टर ने कहा—"आप नीचे चले जाइए और वहाँ से ऊपर मुँह कर 'सूँ सूँ' कीजिए, जब बास आने लगे तो ऊपर आ जाइएगा।

दारोग़ा जी को कुछ क्रोध-सा आ गया, किन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा—फ़क़त 'सूँ-सूँ' करते रहे। इस पर उस देहाती ने, जो कि अपने वक्षस्थल पर रीछ जैसे बाल धारण किए था, स्वयं जाने का विचार किया। वह नीचे उतर आया और ऊपर चढ़े हुए मानवों की ओर देख कर प्राणायाम करने लगा—"सूँ-सूँ......।"

आध घण्टा बीत गया, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। जवान भी इतनी देर में अपनी विचित्र ड्यूटी से तंग आ गया और उसने उपर चढ़ कर एक डाली पर आसन ग्रहण किया। इतने में पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई दी और झाड़ी के बीच से एक छोटा-सा शेर का बच्चा प्रगट हुआ। वह एक बहुत मोटी बिल्ली के समान था। मोटा-मोटा, गुदला-सा बड़ा ही सुन्दर लगता था। वह बड़ी देर तक इन लोगों की ओर ग़ौर से देखता रहा। बार-बार सर हिला कर, और फिर कुछ हिम्मत कर के दबता-सा पेड़ के पास आकर, अपना नन्हा-सा मुँह फाड़ कर एक-एक .फुट उछलने लगा और खिलवाड़ में पेड़ के तने को बार-बार पञ्जों से कुरेदने लगा। दारोग़ा जी की सिट्टी-पिट्टी भूल गई !

इतने में उस बच्चे की माँ भी हँड़िया-जैसा मुँह लिए आ गई। दारोग़ा जी काँपने लगे और उन्होंने सहारे के लिए एक डाल कस कर पकड़ ली। किन्तु वह डाल नहीं थी, बल्कि भीष्म पितामह की टाँग थी ! भीष्म ने गुर्रा कर कहा,—"अरे,

हमारी टाँग काहे पकड़ ली?" दारोग़ा जी ने और ज़ोरों से उस टाँग को थाम लिया! उनका हाथ काँप रहा था, और इसके कारण वह टाँग भी काँपने लगी।

"अरे बाबा, हमारी टाँग कौन हिला रहा है?"—बूढ़े ने दरियाफ़्त किया। (बात यह थी कि उसका मुँह दूसरी तरफ़ था और वह शेरनी को देख नहीं पाया था।) "हमारी टाँग छोड़ दो, नहीं तो हम नीचे ढकेल देंगे!"

धमकी सुन कर दारोग़ा जी अधमरे हो गए और उनका हाथ और भी वेग से काँपने लगा। इस पर भीष्म ने उन्हें ढकेल दिया, किन्तु वे टाँग पकड़ कर बड़ी देर तक लटके रहे। डाल पकड़ कर बूढ़ा भी भूल गया और दारोग़ा जी नीचे आ रहे। शेरनी उन पर झपटी और बनारसो कुश्ती होने लगी। इतने में न जाने कैसे बन्दूक़ छूट गई—"आ-क्-छीं"...... दारोग़ा जी की नींद खुल गई! उन्होंने देखा कि वे फ़र्श पर औंधे पड़े हैं और बार-बार लोट-लोट कर बेरहमी के साथ छींक रहे हैं। "आक्—छीं......ठाँय!"......वे उठ बैठे। अपने पेट की ओर दृष्टिपात किया और सोचा, "अब बम्बा खुल गया होगा!"

कहानीकार मिस्टर वर्मा

बन्दर का मुँह, बनमानुष की नाक, भालू की छाती, ऊँट की पीठ, गदहे की टाँगें और हाथी का धड़, यदि एक साथ ये सभी आदमी की शकल में जड़ दिए जाएँ, तो किसी न किसी प्रकार से मिस्टर वर्मा की सूरत से मेल खा जाएँगे !

मिस्टर वर्मा के सामने जो भी परीक्षाएँ आईं, उनका उन्होंने एक वीर की भाँति सामना किया और उनमें सफलता भी प्राप्त की। इस प्रकार आपने अपने तीस वर्ष हँसते-हँसते बिता दिए।

गत वर्ष जब केन डेवलपमेण्ट में भरती हो रही थी, तो उसमें आप को भी एक सुअवसर मिला और इस प्रकार आप उसमें सुपरवाइज़र हो गए।

सागर को आज तक किसी ने तैर कर पार नहीं किया। किन्तु यदि शौक़ ही सागर हो, तो मिस्टर वर्मा ने उसे भी पार करने के लिए बीड़ा उठा लिया था।

सुनते हैं, बीड़ा उठा लेने पर वीर ऊदल जान की बाज़ी लगा देता था—प्राण हथेली पर ले कर मैदान में कूद पड़ता था। इसी प्रकार दुनिया के शौक़ को एक-एक करके पूरा करने के लिए आप भी किसी ऊदल से कम नहीं निकले।

किसी शौक़ में कोई पुरस्कार मिला और किसी में कोई। केवल आँख की लड़ाई में आप की पीठ ऐसी पीटी गई, जैसे सड़क।

इधर आपका शौक़ कहानी-लेखक बनने का है। यह एक ऐसा शौक़ है, जिसमें किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती—एक पैसे की पेन्सिल और एक पैसे का काग़ज़ बाज़ार से मँगा लिया और कहानी लिखना आरम्भ कर दिया।

मिस्टर वर्मा सोचा करते थे, कि यदि उनकी आप-बीती कोई लिख दे, तो वह संसार का सबसे बड़ा उपन्यासकार हो सकता है, और इसके साथ ही उनका ख़्याल था, कि मिस्टर जी० पी० श्रीवास्तव ने उन्हीं की आप-बीती का एक अंश ले कर अपना 'लतख़ोरीलाल' नाम का उपन्यास लिखा होगा। फिर स्वयं मिस्टर वर्मा कैसे कहानी लेखक नहीं हो सकते थे?

भीख भी भेस ही से मिलती है। कहानी लिखने के पहिले मिस्टर वर्मा ने सोचा—कहानी-लेखक की पोशाक होनी चाहिए। अस्तु, आपने इस दिशा में प्रेमचन्द जी का आदर्श रक्खा—कुर्ता, धोती और चप्पल में आप पूरे प्रेमचन्द बन गए। रहा प्रश्न मूछों का। उसे भी आपने बाज़ार से एक झबरी मूछ

ख़रीद कर हल किया। कहानी लिखने-मात्र का ध्यान होते ही आप उसे लगा लिया करते थे।

भेस तो बन गया, लेकिन यह भेस बना क्यों, इसे किसी ने नहीं जाना। अस्तु, इसका विज्ञापन करने के लिए मिस्टर वर्मा स्त्री-पुरुषों, बाल-बच्चों, जवान-बढ़ों—सबसे यह बात कहते, कि मुझे कहानी लिखनी है। इस तरह दूर-दूर तक के सभी लोग यह जान गए, कि मिस्टर वर्मा को कहानी लिखनी है। रास्ते चलते स्कूली छोकरे उन्हें छेड़ उठते—"वर्मा जी, कहानी लिखी गई?"

वर्मा जी पहले कृतज्ञता प्रगट करने के लिए हाथ जोड़ते, फिर कहते—"लिखने ही वाला हूँ। कुछ देर हो गई है।"—यही पेटेण्ट जवाब उनका सब के लिए था।

एक दिन ज्यों ही मैं घर से निकला, त्यों ही क्रम से तीन चीज़ें सामने आईं—नाक कटा बन्दर, बड़वा साँड़ और मिस्टर वर्मा। इसके साथ ही मुझे छींक आई—एक-दो-तीन। इन सुन्दर शकुनों से मैं काँप गया, लेकिन कहानीकार मिस्टर वर्मा की चाल ऐसी थी, कि मैं हँस पड़ा, क्योंकि वे एक डग में लचकते-फैलते, ठुमकते और तनते चले जाते थे, जैसे 'पन्त' स्कूल के सुकवि।

मेरी इस हँसी को उन्होंने अपना स्वागत समझा। फिर क्या था, आप अपनी बतीसी दिखलाने लगे। इतना ही नहीं, अपने कर-कमलों से आपने मेरे हाथों को भी पकड़ लिया और बिना

रुके कहना प्रारम्भ किया—"भाई, कहानी शुरू कर दी है। आपको सुनना होगा और जरूर सुनना होगा !"

मैंने कहा—"मैं सुनूँगा, सुनूँगा, जरूर सुनूँगा !" मेरे त्रिवाच्य भरने पर वे किसी तरह मेरा गला छोड़ने के लिए तैयार हुए।

दूसरे दिन सुबह एक और घटना हो गई। मिस्टर वर्मा अपनी कोठरी में बैठे कहानी लिख रहे थे और उसी के बगल में सुकवि श्वानों ने अपना कवि-सम्मेलन प्रारम्भ किया। यह बात मिस्टर वर्मा के लिए असह्य हो उठी। वे एक लट्ठ लेकर उनके पीछे पड़ गए और गली-गली घूम कर उन्हें मारते फिरे। लोगों के कारण पूछने के पहले ही आप कह उठते—"साले, मुझे कहानी नहीं लिखने देते !"

इस बीच उनके पिता के कई पत्र आए। उनमें लिखा था—'बेटा, मैं बीमार हूँ। आओ, देख जाओ या कोई दवा भेज दो तथा कुछ रुपया भी। पर मिस्टर वर्मा को कहाँ फ़ुर-सत ! हाँ, परेशान हो कर अन्तिम पत्र का जवाब आपने यों दिया—"जानते नहीं, मैं कितना परेशान हूँ। आप तो केवल बीमार हैं, और मैं, न पूछिए, सब काम छोड़ कर इस समय कहानी लिख रहा हूँ। कहानी लिखने के बाद ही दवा भेजने में समर्थ हो सकूँगा—इसके पहले नहीं।"

कहानी लिखी जा रही थी। प्रेमचन्द जी का रूप धारण कर आप कहानी लिख रहे थे। किसान आते और फेरी लगा

कर चले जाते। सरकारी ऑर्डर आते और बिना खोले हुए मेज़ के एक किनारे पड़े रहते। मिस्टर वर्मा मन में सोचते— जीवन-भर तो सरकारी काम करना ही है। जब कहानी शुरू कर दी, तो कम से कम इसे ख़त्म तो कर लें।

आख़िर कहानी ख़त्म हुई। सोलह पौण्ड बादामी काग़ज़ के कई दस्ते रँगे गए। बहुत प्रयत्न करने पर भी मिस्टर वर्मा स्वयं उसे पाँच घण्टे में सफलतापूर्वक समाप्त नहीं कर पाते, क्योंकि कहानी के साथ-साथ पाठकों के लाभार्थ आपने उसकी अगल-बग़ल टिप्पणी, अर्थ, भावार्थ, शब्दार्थ, सन्धि, समास और कथा-प्रसंग भी लिख डाला था। फिर इस भागवत महा-पुराण के लिए श्रोता कहाँ मिलता ?

एक दिन, मेरा सौभाग्य कहिए या दुर्भाग्य, मिस्टर वर्मा मुझे अपनी कहानी सुनाने के लिए मेरे घर आ पहुँचे। मैंने उनकी हज़ार आरज़ू की, मिन्नतें कीं ; किन्तु उनके सामने सब बेकार ! लाचार हो मैंने कहा—"मिस्टर वर्मा, घड़ी में सवा नौ बज रहे हैं। मुझे ऑफ़िस जाना है, आफ़िस-टाइम दस है। इसी बीच में पाँच रुपए का इन्तज़ाम कर मुझे एक उधार वाले को देना है। इसलिए आज मुझे क्षमा करो भाई !" किन्तु मिस्टर वर्मा क्यों मानने लगे ? अन्त में यह तय हुआ, कि वे मुझे अपने घर चल कर पाँच रुपया उधार दे देंगे ; अब मैं मजबूर था और उनके साथ-साथ चल दिया।

रास्ते में मिस्टर वर्मा कहानी की तारीफ़ करते जा रहे थे और मैं पाँच रुपए का स्वप्न देखता जा रहा था। हम-दोनों उनके घर पहुँचे। वे मुझे कुर्सी पर बिठा पाँच रुपए का नोट हाथ में लिये कहानी का बण्डल खोलने लगे—कहानी पढ़ने के लिए। ठीक इसी समय घड़ी ने अद्धा बजाया। मैं यह सुनते ही उठ-बैठा। इसके साथ ही आप भी मुझे फ़ौरन पकड़ कर खड़े हो गए और कहने लगे—"कम से कम दो-चार पृष्ठ तो सुन कर जाइए।"

ऐसी हालत में मैं क्या करता? फिर तो रस्सा-कसी शुरू हुई। मैं बाहर खींचने लगा, और वे भीतर। दो मिनट के बाद मैं तगड़ा पड़ा और हाथ छुड़ा कर भग चला। मैं भगा जा रहा था और उनकी गालियों के बम मेरे कानों में लगातार गोलाबारी करते जा रहे थे। ख़ुदा हाफ़िज़!

❀ ❀ ❀

इस घटना के दो सप्ताह बाद मालूम हुआ, कि वह इधर कई दिन से पोस्टमैन से भिड़ने पर तुले हैं। मिलने पर उससे कहते—"कहो, मेरा कोई पत्र आया है? तुम्हारे पास अवश्य होगा? बताओ, तुम क्यों रोज़ देर करके आते हो?"—ऐसे ही सैकड़ों सवाल उससे करते और बेचारा पोस्टमैन सुन कर हक्का-बक्का-सा रह जाता। वह सोचता—इनके सिर पर न जाने कैसा शैतान सवार हुआ है?

बात यह थी, कि आपने अपनी कहानी कहीं प्रकाशनार्थ भेजी थी। उसकी स्वीकृति-सूचना पाने के लिए आप व्यग्र थे।

बेचारे सम्पादक को क्या मालूम, कि यहाँ लेखक पर क्या बीत रही है?

प्रतीक्षा करते-करते मिस्टर वर्मा से न रहा गया और एक दिन आप स्वयं पोस्ट ऑफ़िस गए। संयोगवश उस दिन उनके दो पत्र आए हुए थे—एक थी उनकी कहानी, जो सम्पादक ने छापने से अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए सधन्यवाद लौटा दी थी, और दूसरा एक लिफ़ाफ़ा था। मिस्टर वर्मा ने इसे खोल कर देखा, यह सरकारी ऑर्डर था, जिसमें जनता की शिकायतों के और काम न पूरा करने के अपराध में उन्हें चार माह के लिए मुवत्तली सूचना दी गई थी।

पीछा

आजकल एक शख्स निहायत मुस्तैदी से मेरा पीछा कर रहा है। कॉफ़ी हाउस में, सड़क पर, किसी महफ़िल में जहाँ कहीं मेरी उससे मुठभेड़ होती है, वह छूटते ही मुझसे सवाल करता है—"महाशय, आपको प्रेमचन्द का कौन-सा उपन्यास पसन्द है?"

देखने में सीधा-सादा सवाल है, जिसका जवाब देना कुछ मुशकिल नहीं। लेकिन जिस आदमी ने प्रेमचन्द के उपन्यास पढ़े ही न हों, उसके लिये कुछ इतना आसान भी नहीं। यह ठीक है कि पिछले दिनों प्रेमचन्द की बरसी के अवसर पर मैंने एक निबंध पढ़ा था जिसका शीर्षक था—"प्रेमचन्द—एक उपन्यासकार के रूप में"! इस निबंध की बेहद तारीफ़ की गई। सभापति महोदय ने तो यहाँ तक कह दिया कि प्रेमचन्द पर ऐसा सर्वागं सुन्दर निबंध हिन्दी भाषा में आज तक न लिखा गया है और न लिखा जाएगा। और बड़ी हद तक, अनभिज्ञता के कारण ही सही, सभापति

महोदय अपनी जगह बिलकुल सही भी थे। क्योंकि वह निबंध मैंने सारे का सारा एक अंगरेज़ी पुस्तक से, जो कि आधुनिक आलोचक ने ओ० हेनरी पर लिखी थी, चुराया था। अवश्य ही उसमें थोड़ा-सा इधर-उधर से बदलना पड़ा था। यानी जहाँ-जहाँ ओ० हेनरी का नाम आया था, वहाँ-वहाँ प्रेमचन्द का नाम लिख दिया था। उस सभा के ख़त्म होने पर मुझे वह आदमी मिला और मुझे बधाई देने के बाद उसने कहा—"मैं पिछले पन्द्रह वर्ष से प्रेमचन्द्र पर एक पुस्तक लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ। मैं इस विषय पर आपसे विस्तार से विचार-विमर्ष करना चाहता हूँ।

मैंने साधारण शिष्टाचार का प्रदर्शन करते हुए कहा—"बड़े शौक़ से। आप कभी मेरी कुटी में पधारिये।"

लेकिन जब कुछ दिनों के बाद वह सचमुच मेरे मकान पर आ धमका तो मेरे होश उड़ गये। बात दर असल यह है कि मैंने प्रेमचन्द का कोई उपन्यास शुरू से आख़ीर तक नहीं पढ़ा। किसी की भूमिका देखी है, किसी का पहला अध्याय पढ़ा है और किसी का आख़िरी। ख़ैर उस दिन तो मैंने उसे यह कह कर टाल दिया, कि आज मुझे ज़ुकाम है और जब ज़ुकाम हो तो अच्छी चीज़ भी बुरी लगती है चाहे वह प्रेमचन्द्र की कहानी ही क्यों न हो लेकिन जब इतवार के दिन वह फिर आया तो मैंने उसे इधर-उधर की बातों में लगाने की कोशिश की। पूछा —"आपको देशी शलग़म पसन्द हैं या विलायती, आपको

पतंगबाज़ी से शौक़ है या बटेरबाज़ी से? आपकी पतलून नई है या सेकिन्ड हैंड?" लेकिन वह ज़ालिम हर तीसरे मिनट के बाद अपना सवाल दोहरा देता—"आपने यह नहीं बताया कि आपको प्रेमचन्द का कौन-सा उपन्यास पसन्द है?"

आख़िर एक दफ़ा मैंने हिम्मत करके कह दिया—"मुझे प्रेमचन्द के सारे उपन्यास पसन्द हैं।

उसने आश्चर्य-चकित होकर कहा—"यह कैसे हो सकता है? आख़िर सारे उपन्यास तो सर्व-श्रेष्ठ हो ही नहीं सकते।"

"तो आप यह जानना चाहते हैं कि मेरे ख़याल में प्रेमचन्द का कौन उपन्यास सर्वश्रेष्ठ है?"

उसने स्वकारात्मक ढंग से सिर हिलाया।

मैंने धीरे से कहा—"रंगभूमि।"

अब वह पूछने लगा—"क्यों पसन्द है?"

मैंने चेहरे पर गम्भीरता उत्पन्न करते हुए कहा—"देखिये, यह उपन्यास सब भले आदमियों को पसन्द है। मुमकिन है, आपको नापसन्द हो लेकिन इसके यह मानी तो नहीं कि मुझे भी अच्छा न लगे।"

"छोड़िये इस बात को।" उसने जल्दी से कहा—"यह बताइये कि इस उपन्यास में आपको कौन-सा चरित्र पसन्द है?"

"नायक का।"

"नायक के अलावा?"

"नायिका का।"

"नायिका के आलावा ?"

"नायिका के अतिरिक्त मुझे कोई चरित्र पसन्द नहीं।"

"कारण ?"

"कारण यह है कि नायक और नायिका के अलावा जितने भी चरित्र हैं, मैं उन्हें चरित्र ही नहीं समझता।"

"आप उन्हें क्या समझते हैं ?"

"घसियारे।"

सौभाग्य से इस मौक़े पर एक मित्र आ गये और मैंने उससे माफ़ी माँग ली। कुछ दिन आराम से बीते। इसके बाद वह फिर आ गया और कहने लगा—"उस दिन आपके जवाब कुछ ऐसे उलझे हुये और अस्पष्ट थे कि मेरी तसल्ली नहीं हुई। आज मुझे विस्तार से बताइये कि आप 'रंगभूमि' को मुन्शी प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास क्यों मानते हैं ?"

मैंने 'रंगभूमि' की शान में कुछ शानदार शब्दों का प्रयोग किया—"देखिये उस उपन्यास में प्रेमचन्द ने जीवन का चित्र खींचा है। कुछ स्थानों पर तो वे शैक्सपियर से भी ऊँचे दिखाई पड़ते हैं। चरित्र-चित्रण में तो वे फ़ील्डिगं, स्कॉट, जेम्ज़ ज्वॉयस से भी बाज़ी ले गये हैं। वर्णन शैली में वे हमें टॉमस हार्डी, मेरीडेथ और वर्जीना वुल्फ़ की याद दिलाते हैं। दो-एक अध्यायों में प्रेमचन्द्र ने चार्ल्स डिकेन्स, थैकरे, मोपासाँ और मैक्सिम गोर्की से टक्कर ली है।"

उसने सन्दिग्ध नेत्रों से मेरी ओर देखा और कहा—"जैसे-जैसे किसी अध्याय में।"

मैंने अपनी घबराहट को छिपाते हुए जवाब दिया—"मेरे विचार में अन्तिम अध्याय में या प्रथम अध्याय में।"

उसने 'रंग-भूमि' खोल कर मेरे सामने रख दी और कहा—"आप ठीक से सोच कर बताइए। पहले अध्याय में या अन्तिम अध्याय में?"

मैंने माथे से पसीना पोंछा और जल्दी से घड़ी की तरफ़ देखते हुए कहा—"माफ़ कीजिएगा इस समय मुझे स्टेशन पहुँचना है। मेरी मौसी का भाई .फ्रान्टियर मेल से आ रहा है। आप फिर किसी समय आइए।"

एक हफ़्ते के बाद वह फिर मुझे मेरे घर पर मिला। उस दिन मैंने झूठ-मूठ फ़ुर्सत न होने का बहाना किया—"मुझे आज एक मिनट की भी फ़ुरसत नहीं। भैंस बीमार है। उसे हस्पताल ले जाना है, ऑल इण्डिया रेडियो के लिए बहत्तर पृष्ठों का एक फ़ीचर लिखना है, बच्चों के लिए ख़रगोश ख़रीदना है।"

उसने गम्भीरता से कहा—"कोई हर्ज नहीं, मैं परसों आ जाऊँगा।"

"परसों न आइएगा, मैं रावलपिण्डी जा रहा हूँ।"

"बहुत अच्छा, एतवार को सही।"

"देखिए एतवार को मेरे भतीजे की शादी है। उस दिन न आइएगा।"

"सोमवार को आ जाऊँ ?"

"मेरे एक बहुत बड़े दोस्त बीमार हैं। शायद वह सोमवार को चल बसें इसलिए आप सोमवार को न आइएगा।"

"मंगलवार को आ सकता हूँ ?"

"हाँ-हाँ, मंगलवार को जरूर आइएगा, लेकिन शाम को।"

मंगलवार की शाम को मैं एक दोस्त के घर छिप कर बैठा रहा और इस तरह उस दिन यह बला टल गई। चन्द दिनों के बाद उसने मुझे कॉफ़ी हाउस में आ दबोचा। और पूछा—"गोदान और रंग-भूमि में आप किस उपन्यास को श्रेष्ठ समझते हैं ?"

मैंने कहा—"गोदान मुन्शी जी का अन्तिम उपन्यास है, इस दृष्टि से मैं उसे रंगभूमि से अच्छा समझता हूँ।"

"यह तो कोई उचित कारण नहीं ?"

"उचित कारण क्यों नहीं ? आखिर जो ड्रामे शैक्सपियर ने आखिरी दिनों में लिखे, उन्हें हमेशा उन ड्रामों से अच्छा समझा जाता है, जो उसने शुरू में लिखे।"

"लेकिन इससे आप इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँच सकते हैं कि लेखक की आखिरी रचना उसकी पहली रचनाओं से हमेशा अच्छी होती है ?"

"क्यों नहीं।"

"आप किस दृष्टि से 'गोदान' को 'रंग-भूमि' से अच्छा समझते हैं ?"

"इसलिए कि...इसलिए कि...इसका अन्त अच्छा है।"

"किस दृष्टि से ?"

"इस दृष्टि से कि जब हम 'गोदान' पढ़ते हैं तो हमें महसूस होता है कि इसका अन्त वही होना चाहिए था, जो है।"

उसको संतोष न हुआ और उसने फिर किसी दिन इस विषय पर बहस करने के लिए मुझसे समय माँगा। उस दिन के बाद कई बार वह मेरे मकान पर आया और मैंने हर बार अन्दर से कहलवा भेजा कि मैं घर पर नहीं हूँ। आजकल वह मेरे मकान पर नहीं आता, लेकिन जहाँ कहीं मुझसे मिलता है, पूछता है—"आपने विस्तार से नहीं बताया कि आपको प्रेमचन्द का कौन-सा उपन्यास पसन्द है ?" और मैं झट यह कह कर कि—"इस समय मुझे ज़रा जल्दी है, फिर बतलाऊँगा" कन्नी काट जाता हूँ। कभी सोचता हूँ कि किसी दूसरे शहर चला जाऊँ, कभी ख़याल आता है कि उससे एक दिन साफ़-साफ़ कह दूँ कि मैंने प्रेमचन्द का कोई उपन्यास नहीं पढ़ा। लेकिन फिर सोचता हूँ कि उस निबन्ध का क्या बनेगा जो मैंने प्रेमचन्द की बरसी के अवसर पर पढ़ा था ?
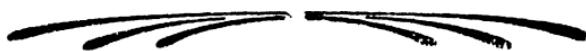
मुल्ला जी की बीबी

एक ज़माना था, जब बी० एन० आर० की ट्रेनें मेरे लिए उन लावारिस गधों की तरह थीं, कि जिन पर कोई भी जीन कसकर बैठे जाए, उसे कोई रोकने वाला नहीं। इसी तरह मैं भी निर्द्वन्द्व ट्रेन में बैठ कर मटरगश्ती किया करता था। फ़स्ट, सेकेण्ड, इण्टर और थर्ड मेरे लिए सब बराबर थे। मुझे जब कभी कहीं जाना होता, तो जहाँ पर मैं खड़ा रहता था, वहाँ पर कोई-सा भी डिब्बा खड़ा हो जाता, मैं उसी में बैठ जाता, —चाहे वह ज़नाना ही क्यों न हो! बहुत-सी औरतें तो देख कर घबरा जातीं और कहने लगतीं—"क्यों?...क्यों? आप तो मर्द हैं, इस डब्बे में क्यों चढ़ आए? उतरिए, नहीं तो चेन खींचती हैं।"

सिर्फ़ उन्हें बताने के लिए इतना कह देता—"घबराइए नहीं, मैं कोई चलता-फिरता चोर या ठग नहीं हूँ। मेरे पहिचान की एक महिला कटनी में उतर गई हैं उनका कुछ सामान छूट गया है, वही देखने आया हूँ। अगले स्टेशन पर

उतर जाऊँगा।" तब कहीं उनको विश्वास होता था, परन्तु खड़े-खड़े अगले स्टेशन तक जाना होता था और नज़रों को क़ब्ज़े में रखना पड़ता था ?

कलकत्ते से नागपुर तक के स्टेशन-मास्टरों से मेरी जान-पहिचान थी; क्योंकि मेरे पिता जी भी एक रेलवे अफ़सर थे। एक दिन मुझे बिलासपुर से नागपुर जाना था उस वक़्त वहाँ बॉम्बे-टॉकीज़ का 'पुनर्मिलन' चल रहा था। उसमें मुझे स्नेह-प्रभा प्रधान के भावमय अभिनय, चुलबुले गाने और थिरकता नाच देखना था।

मेल आई। मैं इण्टर के एक डब्बे में बैठ गया। उसी में एक मुल्ला जी तथा उनकी बीबी साहेबा अपनी तशरीफ़ का टोकरा रक्खे हुए थीं। मेरा अन्दर दाखिल होना था, कि बुरक़े का नक़ाब चढ़ गया, और मैं देख भी न पाया, कि जनाबा काली थी या गोरी। उस डब्बे में सिर्फ़ तीन सीटें थीं। वे दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने बैठे हुए थे। मैं जा कर उनकी बीबी वाली सीट पर थोड़ा बग़ल से बैठ गया।

मेरा वहाँ बैठना मुल्ला जी को इतना अखरा, कि वे लगे मुझे सिर से पैर तक घूर कर देखने। मैं भौचक्का रह गया। मुझे ऐसा लगा, मानो मुल्ला जी ने मुझे कोई जिन समझा हो और मन ही मन मुझे भगाने के लिए किसी सिद्ध मन्त्र का जाप कर रहे हों। उन्होंने लगातार कई मरतबा ऐसा किया. तो मुझे भी ग़ुस्सा आए बिना न रहा। मैंने तो सोच लिया

कि मुल्ला जी चाहे कोई भी क्यों न हों, इनसे बिना उलझे काम न चलेगा। मैं बोल ही तो उठा—"क्यों साहब, क्या घूर-घूर कर देख रहे हैं ?"

मुल्ला जी कुछ झेंपते हुए बोले—"जी नहीं, हमारे यहाँ ज़रा परदा होता है। आप अपना डब्बा बदल लीजिए।"

"आपके यहाँ परदा होता है, तो उससे मुझे क्या ? मैं क्या कर सकता हूँ ? पाखाने में बिठा दीजिए, जिससे इन्हें कोई देख न सके, क्योंकि आप जहाँ भी बिठाएँगे, वहाँ आदमी तो ज़रूर आवेंगे। बेहतर तो यह है, कि जब कभी आप किसी भी जनाने के साथ सफ़र किया करें, एक पूरा डब्बा रिज़र्व करा लिया कीजिए।"

मुल्ला जी पाखाने में बिठा देने वाली मेरी बात से इतना चिढ़े, कि शायद अन्दर ही अन्दर कबाब हो गए हों। मेरा उनकी बीबी के साथ बैठना उन्हें इतना खल रहा था, कि मुल्ला जी की हालत उस कुआरी (कुआर के) कुत्ते की तरह हो रही थी, जो दूसरे कुत्ते को देखते ही बम की तरह फट पड़ता है। उसके माथे पर शिकनें पड़ गईं। मुल्ला जी ने त्योरी बदलते हुए कहा—"जनाब, आप इस सीट पर आ जाइए, वहाँ पर नहीं बैठ सकते !"

मुल्ला जी की बातों का तो मैंने कोई विशेष ख़याल नहीं किया, मगर मन में सोचने लगा, कि आख़िर मुल्ला जी ने कितनी टिकटें ख़रीद रक्खी हैं। बड़े शक्की मिज़ाज के हैं।

अगर मैं उनकी बीबी के बग़ल में बैठ गया हूँ, तो क्या उन्हें उड़ाए लिए जा रहा हूँ, या उन्हें निगल जाऊँगा ? अजीब परदा कराने वाले हैं, कहीं मेरी नज़र न लग जाय, मगर 'नज़र-प्रूफ़' परदा तो उनके चेहरे पर लगा ही हुआ है।

मैंने कहा—"मुल्ला जी, मालूम पड़ता है, कि औरंगजेब के बाद एक आप ही शक्की-मिज़ाज रह गए हैं, जो किसी का अपने पास बैठना भी पसन्द नहीं करते। मैं तो यहाँ से नहीं उठ सकता, अगर आप को एतराज़ है, तो किसी वीरान डब्बे में ठिकाना कर लीजिए।"

अपनी दाल गलती न देख, मुल्ला जी मुझे धमकी देने लगे—"बतलाइए जनाब आपका टिकिट कहाँ है?"

सचमुच मेरी हालत उस समय ऐसी थी, कि मुल्ला जी का टिकिट के बारे में शक करना वाजिब था। वजह यह थी, कि उस वक़्त मेरे बाल बिखरे हुए थे—लोफ़रों की-सी वेश-भूषा थी। मैं समझ गया, कि मुल्ला जी को मेरी ड्रेस पर शक हुआ। फिर मेरे पास साथ में कुछ था भी नहीं; सैलानी जो ठहरा! जहाँ कहीं गया, पचीसों दोस्त! इन जनाब को तो यही मालूम हुआ, कि मैं कोई ठग या गिरहकट हूँ।

मैंने कहा—"जनाब, मालूम पड़ता है, कि आप का दिमाग़ दुरुस्त नहीं है! आप हैं कौन टिकिट पूछने वाले? समझ लीजिए, मेरे पास टिकिट नहीं है, भला आप क्या करेंगे मेरा?"

"मैं अभी चेन खींच दूँगा। गार्ड से कह दूँगा, कि यह शख़्स हम लोगों को धमकी दे रहा था। कहता था, कि मुझे सब माल-असबाब दे दो, नहीं तो तुम दोनों का गला घोंट दूँगा!"—मुल्ला जी बोले।

मुल्ला जी की बातों पर मैं एक बार ठहाका मार कर हँस पड़ा—"क्या ख़ूब! क्या ख़ूब!! मुल्ला जी, ऐसा मालूम पड़ता है, कि आप अभी किसी अजायब घर से निकल कर चले आ रहे हैं। आपकी दाढ़ी भी अजीब है और दिमाग़ का तो कहना ही क्या!"

दाढ़ी का नाम सुनते ही मुल्ला जी और भी बिगड़ उठे और कहने लगे—"तौबा, तौबा! ख़ुदा आपको अक़्ल दे! वाहीयात बातें न कीजिए। बातें मुझसे हो रही हैं या मेरी दाढ़ी से?"

"जी नहीं, मुल्ला जी! आप थोड़ा शुरु से ही अकड़ गए, इसलिए मजबूरन मुझे बेजा अलफ़ाज़ काम में लाने पड़े। कहिए जनाब, ये बग़ल में बैठी हुई आपकी हमशीरा हैं क्या?" यह तो मैं जानता था, कि यह जनाबा उनकी बीबी ही होंगी, परन्तु मज़ा जो देखना था, इसलिए मैंने उनसे यही पूछा।

अपनी बीबी को हमशीरा सुन कर, तो उनका ख़ून खौल गया। वह बोले—"वाह जनाब! ये तो मेरी बीबी हैं। मेरे साथ इतनी देर तक रहे, फिर भी आपके दिमाग़ में यह अदना-सी बात न आई, कि ये मेरी बीबी हैं, या हमशीरा?"

"तो जनाब, आपने बताया ही कब था, कि ये आपकी बीबी हैं?"

इतनी देर की बात-चीत में मुल्ला जी सरकते-सरकते अपनी सीट के आख़ीर तक पहुँच गए। मैं समझ गया, कि मुल्ला जी हैं सोलहो आना सनकी! न मालूम क्या सोच कर अचानक वे फट पड़े—"आप बड़े बदमाश हैं!" इतना कहना था, कि आप 'धम' से अपनी बीबी साहेबा की जूतियों पर, जहाँ केले और सन्तरे के छिलके भी पड़े हुए थे, चकिया कुम्हड़े की तरह लुढ़क गए। गिरते ही मुल्ला जी का पाजाम चर्र हो गया। केले-सन्तरे के छिलकों पर जो फिसले, तो एक हाथ आगे सरक गए। पाखाने का दरवाज़ा खटाक से आपकी खोपड़ी पर लगा, और छिलके दाढ़ी से जा चिपके। मुल्ला जी हड़बड़ा कर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए उठे। उनकी टर्किश कैप दूर जा पड़ी, मानो वह मुल्ला जी को तलाक़ देना चाहती थी!

अब उनकी बीबी, जो अभी तक बिलकुल चुपचाप बैठी थीं, बुरक़ा ऊपर उठा कर देखने लगीं, कि क्या हो गया? उन्होंने समझा था, कि मैंने मुल्ला जी को उठा के पटक दिया है। वह चट से उठीं और चेन खींच दी। गाड़ी थोड़ी दूर चल कर रुक गई। गार्ड दौड़े आए। यात्री भी घबरा गए, कि आखिर क्या हो गया? मेरे डब्बे के सामने अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई। मिस्टर जे० के० शर्मा गार्ड थे, जिनके

यहाँ मैं महीनों रह कर दावतें खा चुका था। अस्तु, मेरे लिए कोई डर की बात थी नहीं।

जैसे ही शर्मा जी पहुँचे, मुल्ला जी गिड़गिड़ा कर अपना बयान सुनाने लगे—"देखिए साहब, इस बदमाश को; यह हमें तरह-तरह की धमकियाँ दे रहा था। हमसे कहता था, कि माल-असबाब मेरे हवाले करो, नहीं तो मार डालूँगा।"

मैं समझ गया, मुल्ला जी मुझे फँसाना चाहते थे; क्योंकि मैंने उन्हें रास्ते भर तंग किया था।

मिस्टर शर्मा मुझसे पूछने लगे—"क्या मामला है मिस्टर नारायण! ख़ुलासा कहिए?"

शुरू से अन्त तक का सारा क़िस्सा मैंने उन्हें सुना दिया, जिससे उन्हें भी हँसी आए बिना न रही। मैं यह भी कहना नहीं भूला, कि ये मुझसे टिकिट माँग रहे थे।

अब तो उलटी बला मुल्ला जी के गले पड़ी। शर्मा जी बोले—"क्यों जनाब, आपको क्या अथॉरिटी थी, जो आप किसी यात्री से टिकिट माँगे? आप कौन होते हैं, किसी को डब्बे से निकालने वाले, किसी शरीफ़ आदमी को गिरह-कट या बदमाश कहने वाले? आप कैफ़ियत दीजिए, नहीं तो आप पर केस चलाया जायगा। मुल्ला जी हक्के-बक्के रह गए। कह भी क्या सकते थे? बोले—"बाबूजी!"

मिस्टर शर्मा यह सुनने के पहले वहाँ से रवाना हो चुके थे।

मैंने देखा मुल्ला जी दूसरे कम्पार्टमेण्ट में तशरीफ़ ले जा चुके थे। मुझे याद आया, जिस वक़्त उनकी बीबी साहेबा चेन खींचने उठी थीं, मैं उनकी नक़ाब से खुली हुई सूरत देख चुका था। वे काली-कलूटी थीं! इसी स्याह परी पर मुल्ला जी ने इतना बखेड़ा व्यर्थ ही मोल लिया!

शेर का शिकार

यह जब का ज़िक्र है कि अल्लामियाँ ने वह दिन दिखाया कि हमारे सेहरे बँधे. और श्रीमतीजी को दुलहन बना कर लाए।

जब हम लोग एक मुख्तसर बारात की सूरत अख्तियार करने लगे, तो भाभीजान ने हलक़ फाड़कर इस बात का एलान किया, कि दुलहन के कमरे को कब सजाया जायगा......वह कमरा जिसमें नैहर से दुलहन आकर उतरेगी? तजवीज़ें होने लगीं कि कौन जगह सबसे मुनासिब है। सभी ने अपनी अपनी अक़्ल पर ज़ोर दिया। मतलब यह कि सिवा नीम के दरख्त के ग़ालिबन् तमाम मौज़ूँ मुक़ाम तजवीज़ हो कर रद्द हो गए। तब कहीं जाकर भाभीजान को अक़्ल आई—मेरी बीवी खुद मेरे कमरे में क्यों न ठहरे? साफ़ बात थी! भाभीजान खुद तजरबेकार ठहरीं! बेहतर यही था। बस फिर क्या था! टूट पड़े सब के सब कमरे पर और लगे ऐसी-वैसी और बदसूरत चीज़ें हटाने (मुझे नहीं), और

आरायश का सामान सजाने। भाभीजान जिस काम में हाथ डालें और भला तारे न चढ़ जाएँ! उन्होंने न अपनी देखी, न पराई। जिस किसी की भी उम्दा आरायश की चीज़ देखी, कमरे में ला सजाई और पल-भर में कमरे को सचमुच दुलहन बना दिया!

जब कमरा सचमुच सज-सजा कर दुलहन बन गया और कोई कसर बाक़ी न रह गई, और चारों तरफ़ से भाभीजान की तारीफ़ों के पुल बँध गए, तो भाभीजान को और भी जोश आया। वल्ला, दौड़ी हुई अपने कमरे में जाके अपनी शेर की खाल उठा लाईं और उसको क़रीने से मसहरी के पास डाल दिया।

अब इस खाल की कहानी भी सुन लीजिए। जब हमारी शादी श्रीमतीजी से तय हो गई और मँगनी भी हो गई, तब तक एक दफ़ा हम दोनों भाई बतखों के शिकार को गए। वहाँ एक बेवक़ूफ़ शिकारी हमें शेर का शिकार कह कर जंगल में ले गया, ऐसा दहशतनाक जंगल कि वहाँ एक हू का आलम था और दरख़्तों की छाँह से अंधेरा था। यहाँ हमारा नातक़ा बन्द हो गया। थक अलग गए और हैरान अलग हुए। बच गए, वरना शेर ख़ुद खा लेता। लिहाज़ा यह सोच कर कि अगर हमें शेर खा गया, तो श्रीमतीजी के साथ बेहद ज़ुल्म होगा, हमने जब देखा कि शेर से झपट होगी, तो हम एक दरख़्त पर चढ़ गए। क़िस्सा मुख़्तसर यह कि शेर को भाई साहब

ने मार लिया। जब मर गया, तो हम भी मौक़ा वारदात पर पहुँचे। भाई साहब ने कहा—शेर में अभी जान है, बन्दूक़ तैयार रक्खो। जब क़रीब गए, तो वह मज़ाक़ में चीखे कि मारो। मैंने घबराहट में रायफ़ल चला दी। और ख़ुद झाड़ियों में उलझ गया। शेर मुर्दा था और यह गोली शेर की दुम में लगी। शेर मर कर जब घर आया, तब भाभीजान का मारे ख़ुशी के बुरा हाल हो गया। और हमें पता चला कि दर-असल हम से ग़लती हुई। हमें ख़ुद एक शेर अलग मारना चाहिए था। वालिद साहब अलाहिदा ख़फ़ा हुए कि शेर की दुम में भी कोई गोली मारता है! भाभीजान ने इस बात को यों साफ़ किया कि जिनका इरादा बजाय शेर के शेर की दुम मारने का हो, वह ऐसा ही करते हैं। चुनान्चे जब कभी भी इस शिकार का ज़िक्र आया, भाभीजान ने ख़ुश होकर इसी बात पर ज़ोर दिया, जिसकी वजह से मुझे अकसर शरमिन्दा होना पड़ा। और वाक़या यह है कि अगर कहीं अपनी शादी का मामला दरपेश न होता, तो कभी का शिकार में जाकर या तो शेर मार लाया होता या फ़ना हो गया होता। भला ख़ुद ग़ौर कीजिए कि कहाँ नई दुलहन और कहाँ कम्बख़्त शेर! इनमें से शेर से मुलाक़ात क़तई वाहियात। चुनान्चे मैंने शेर मारना शादी बाद तक मुल्तवी कर दिया कि जब घर वाली आ जाएगी तब उससे पूछ-पाछ के जाएँगे और शेर एक छोड़ दो मार लाएँगे। वरना अभी जो बदहवासी की तो मारना तो

और बरहक़ है, लेकिन शादी से पहिले कुछ वक़्त पहिले सा हो जायगा। दर-असल श्रीमतीजी का चेहरा, जो एक दफ़े छिप-छुपा कर देखने में आ चुका था, उसको दोबारा देखने की ज़रूरत हो रही थी।

२

जब हम श्रीमतीजी को ब्याह कर लाए तो उन्हें इसी कमरे में निहायत ही ठाटसे लाकर उतारा गया। इस सिलसिले में कुछ ऐसी हरबोंग मची कि "दुलहन" के देखने के सिलसिले में हर शख़्स; बच्चा, बूढ़ा, नौकर-चाकर गोया बे-टिकट घुस पड़े। कमरे में रौंद-सी मच गई। भाभीजान की हलक़ कट गई। मगर लोगों ने शेर की खाल मसल फेंकी। इसमें मखमल की गोट लगी थी। कोई जूता पहिने तो कोई नंगे पैर। ग़रज़ इस खाल को पलक मारते, दुलहन के उतरते-उतरते, रगड़ फेंका। भाभीजान क्या करतीं? मुनासिब साइज़ के दो-चार नौकरानियों के बच्चों को ठोंक दिया, फिर ज़ोर से पुकार कर हुक्मे-आम दिया कि "जो भी इधर आएगा, मारा जाएगा।" और फ़ौरन ही "जो भी" चले आते हैं! यानी चले आते हैं सामने से भाई साहब इधर!

भाई साहब ने सुना नहीं कि बीबी साहबा क्या फ़रमाती हैं! बोले—"क्या है···?" इन्हें यह नहीं मालूम था कि इधर आना मना है और बीबी साहबा मारपीट का वादा-आम

फ़रमा रही हैं। आते ही बोले—"यह तो क्या वाहियात है···हम लोग भी आखिर दुलहन को देखेंगे·····।"

"चूल्हे में गया देखना। छोटे तो छोटे, बड़े·····।" यह कहते हुए भाभीजान ने भाई साहब को सख़्ती से मखमल की गोट रौंदने से रोका और गुल मचाकर, कई क़ायदों का हवाला देकर, उन्हें और मुझे दोनों को कमरे से निकाल दिया।

इसी रात का ज़िक्र है। मैंने आहिस्ता से कमरे में झाँक कर देखा—श्रीमतीजी और उनकी लौंडी थी, जो घर से आई थी। मैंने चुपके से झाँक कर देखा। मैं आपसे क्या अर्ज़ करूँ—कमरा बिजली से जगमगा रहा था। माँगे-ताँगे की सजावट ने सितम ढाया था, और इस सामाने आरायश में एक नगीने की तरह श्रीमतीजी चमक रही थीं। दोनों कुहुनियाँ मसहरी की पट्टी पर रखकर दोनों हाथों की हथेलियों पर अपनी ठोड़ी रक्खे चेहरे पर एक दिलरुबा ताज्जुब। बड़ी दिलचस्पी से शेर की खाल को झुकी देख रही थीं, जिस पर उनकी लौंडी बैठी हुई एक किनारा उठाए हुए थी।

श्रीमतीजी ने हाथ के इशारे से लौंडी को हटाया। खाल का किनारा हाथ में लिया कि मैं आहिस्ता से कमरे में दाखिल हुआ। मैंने कहा—"अस्सलामालेकुम या......"

श्रीमतीजी ने घबड़ा कर खाल वहीं छोड़ दी। लौंडिया एक तरफ़ को लुढ़क गई।

अब मेरी अक़्ल पर पड़ें पत्थर कि मुझसे एक अजीब हिमाक़त हो गई।

बातचीत शेर की खाल के मुताल्लिक़ हुई। पता चला कि शेर का मारना अच्छी बात है। श्रीमतीजी के पड़ोस में एक नवाब हैं, जिनकी मग़रूर बहू ने लोगों का (श्रीमतीजी का) नातक़ा बन्द कर रक्खा है; क्योंकि उनके ख़ाविन्द से भी किसी शेर को गोली लग गई थी। श्रीमतीजी को यह नहीं मालूम कि यहाँ ख़ुद भाभीजान से जान आफ़त में है। अब सवाल यह था कि यह खाल कहाँ से आई। मैंने सच-सच बता दिया —हम दोनों भाइयों ने शिकार किया है। दो गोलियाँ उन्होंने मारीं और एक मैंने। अब गोलियाँ कहाँ लगीं, यह बहस फ़िज़ूल थी। अब मैं क्या अर्ज़ करूँ श्रीमतीजी की हिमाक़त पर। मारे ख़ुशी के इनका बुरा हाल हो गया। किसने मारा? कब मारा? कहाँ मारा? किस तरह मारा? ये सवाल पैदा हुए। कहो, तुम नई दुलहन हो। तुम्हें इन झगड़ों से क्या मतलब? मगर मजबूरी; अब मुझे मालूम हुआ कि ओफ़ ओह! हमें क्या ख़बर थी! ग़लती हुई जो हम पेड़ पर चढ़ गए। जो भाई साहब के साथ रहे होते, तो मुमकिन था हमीं इस शेर के सही माने में क़ातिल होते। अब आप ख़ुद ग़ौर फ़रमाएँ कि क्या मैं कह देता श्रीमतीजी से कि तुम्हारी मुहब्बत व मुलाक़ात की ख़ातिर मैं इस कमबख़्त शेर से दूर रहा कि कमबख़्त कहीं मुझे खा-पीकर बराबर न कर दे या मैं यह कैसे कह देता कि मरे हुए

शेर के पास रायफ़ल लेकर पहुँचा और भाई साहब चौंके ज़ोर से, तो वहीं मैंने रायफ़ल सर कर दी और गोली दुम में लगी और मैं झाड़ियों में उलझ कर रह गया, और उसके बाद सबने मुझे बुरा-भला कहा और मज़ाक़ भी उड़ाया। लिहाज़ा श्रीमतीजी को मैंने क़िस्सा इस तरह सुनाया कि ख़ुद को भाई साहब के साथ ही दिखाया और क़िस्से में नमक-मिर्च मिला कर वह रंग दिया कि सुना कीजिए। क़िस्सा मुख़्तसर—हम दोनों ने शेर को मारा। श्रीमतीजी का मारे ख़ुशी के बुरा हाल हो गया। उन्होंने मुझसे दबी ज़बान से कहा कि यह क़ीमती खाल जब दोनों के शिकार की कमाई थी, तो मुझे इससे दस्त-बरदार होकर भाई जान को न देना चाहिए था। मैंने भाभीजान के क़ब्ज़े की वजह यह बताई कि उन्होंने उसे कानपुर से रँगवाया, अस्तर दिया, गोट लगवाई। हालाँकि वालिद साहब ने अपने ख़र्चे से बनवा दी थी और मेरी वह फ़ज़ीहत हुई थी कि वालिद साहब ने कह दिया था कि मैं सख़्त बुज़दिल हूँ और मरे शेर से डर जाता हूँ।

कहने को तो श्रीमतीजी से सब कुछ कह दिया, मगर मुझे यह थोड़े मालूम था कि भाभीजान ऐसी हो जाएँगी कि सारा भंडा फोड़ देंगी। श्रीमतीजी से मैंने पुख़्ता वादा कर लिया कि हम तुम्हें इससे भी बड़ा शेर ला देंगे। उसकी खाल इससे भी उम्दा होगी।

३

ख़ुदा भला करे भाभीजान का। दूसरे ही दिन इन्होंने भंडा फोड़ दिया। हिमाकत ख़ुद श्रीमतीजी ने की। ले बैठीं वह शिकार का दुखड़ा और खाल का क़िस्सा। भाभीजान को यह कब गवारा था! इन्होंने कैफ़ियत हाल खोल कर रख दी बल्कि श्रीमतीजी से यह कह दिया कि मैं सख़्त बुज़दिल हूँ। सारे क़िस्से में नमक-मिर्च लगा कर दिल से जोड़ कर न मालूम क्या कह दिया। इतने में मैं जो पहुचाँ, तो "उई अल्लाह" कह कर भाभीजान हँसी से बेहाल हो गईं। मैं भला ऐसे मौक़े पर क्या कहता? बात को हँसी में टाला। श्रीमतीजी ने फिर जो हक़ीक़त दरयाफ़्त की, तो मैंने कह दिया कि उनसे भाभीजान मजाक़ करती हैं। मालूम हुआ कि श्रीमतीजी को यह मज़ाक़ पसन्द न आया। फिर भाभीजान ने इसी पर बस न की। उठते-बैठते श्रीमतीजी के सामने औरों से मेरी गप हाँकने को तादीद की। किसी को गवाह बनाया, किसी के सामने वह सीन पेश किया, जब वालिद साहब ने मुझे अहमक़ और गधा और बुज़दिल क़रार दिया था। क़िस्सा-मुख़्तसर—श्रीमतीजी बिचारी को ऐसा गोदा कि अब इनको भी शुबहा होने लगा कि हो न हो। दाल में काला है। मैंने अब यह देखा तो और दाँव चला। भाई साहब खड़े थे। इनसे मैंने कहा कि "भाई, ईमान से कहना, शेर किसने मारा?" वह बोले—"तुमने"। भाभीजान ने कहा—"इनकी गोली कहाँ लगी थी?" भाई साहब माथे पर

उँगली रख कर बोले—"यहाँ"। ख़ैरियत हुई, श्रीमतीजी ने भाई साहब को नहीं देखा कि वह माथा बता रहे हैं। भाभी-जान चीख़ कर बोलीं—"माथे में...!"

मैंने कहा—"माथे में क्यों..."। भाई साहब को मैंने इशारा कर दिया और इन्होंने अब सीने में बता दिया, जहाँ मैंने श्रीमतीजी को बताया था। नतीजा यह कि भाभीजान खिसियानी हो गईं। भाई साहब से जिरह करने लगीं। जिसका नतीजा यह निकला कि उन्होंने बहुत ठीक जवाब दिए। इससे साफ़ साबित हो गया कि शेर हम दोनों ने मारा। भाभीजान हँस भी रही थीं, और रो भी रही थीं।

श्रीमतीजी से मैंने अकेले में कह दिया कि भाई साहब ने इनको ख़ुश करने के लिए न मालूम क्या-क्या मज़ाक़ में कह दिया था। बस उसीको अब वह मशहूर किए चली जाती हैं। श्रीमतीजी ने इन तमाम बातों को मद्देनज़र रख कर तय किया कि जल्द एक शेर ख़ुद मार लेना चाहिए और खाल उठाकर भाभीजान को वापस दे दी। वैसे भी माँगे-ताँगे का सामान-आरायश जिसका था, उसको वापिस किया जा रहा था। भाभीजान ने श्रीमतीजी से कहा—"भई, ऐसी जलदी क्या है। अभी पड़ी रहने दो खाल।" मगर इन्होंने कहा—"ना बहन, तुम्हारी खाल ख़राब हो जाएगी...।"

४

थोड़े दिन बाद श्रीमतीजी ने ज़ोर दे कर मुझे शेर मारने

भेजा। भाई साहब भी साथ गए। एक और भी रिश्ते के भाई साथ गए। नतीजा बड़ा ख़राब रहा। गए थे शेर के शिकार को। श्रीमतीजी का मारे .खुशी के बुरा हाल था कि अब आती होगी शेर की लाश। लेकिन क्या अर्ज़ किया जाए।

एक अहमक़ और साथ हो लिए थे। इनके साथ बटेरों का जाल था। नतीजा यह हुआ कि वहाँ इस बटेर के जाल में हम फँस गए और लगे बटेरें पकड़ने! और असल पूछो, तो वाक़या भी यही है कि बटेर का शिकार शेर के शिकार से बेहतर होता है; बल्कि एक शेर किसी बटेर का मुक़ाबिला नहीं कर सकता। यक़ीन न हो तो खाकर देख लीजिए।

नतीजा इस बटेरबाज़ी का यह हुआ कि हम एक गन्ने के खेत में बटेरें बीनते रह गए, और भाई साहब और उनका शिकारी "बीहड़" में घुस के कोई तीस मील आगे निकल गए। एक जंगल में पड़ाव कर रात को एक ताल पर से एक शेर को मार, भागे-भागे क़रीब के स्टेशन पर पहुँच कर शेर लेकर दिन के साढ़े बारह बजे घर पहुँचे। और फिर हम उसी रोज़ शाम को पाँच बजे वाली गाड़ी से दस-पन्द्रह बटेरें लेकर घर पहुँचे। अब आप से क्या बताएँ क्या ग़ज़ब हो गया! हमें क्या खबर थी, वरना हम सिरे से खाली हाथ ही पहुँचते।

आह! हमारी चहेती घर वाली शेर का इन्तज़ार कर रही थी और हम पहुँचे बटेरें लेकर! भाभीजान के ऊपर

नूर चढ़ा। फिर एकदम से ख़ुशी की बिजलियाँ तड़पने लगीं। "ऐ लो बहन.........।" श्रीमतीजी को उन्होंने पुकार कर कहा—"निरे शेर ही शेर......। पिंजरा भरे आ गए।" और फिर जो इन शेरों को देख कर "उई अल्लाह" कह कर इनके ऊपर हँसी के एक सख़्त ख़तरनाक दौरे का हमला हुआ है, तो न पूछो; मुँह सुर्ख़ हो गया, उच्छू लग गया, गले में फन्दा पड़ गया; खाँसती-उकती बिचारी मारे हँसी के गोल-गुप्पा होकर अपने कमरे में जाकर मसहरी पर गिरीं। घर में हुल्लड़ हो गया! उधर तो शेर पड़ा और इधर बटेरों का मनहूस पिंजरा। वालिद साहब भी खड़े हँस रहे थे। कहने लगे—"उल्लू हो तुम निरे।" अब मैं क्या करता! क्या बटेरें छोड़ देता या कन्धे पर जो शेर मारने का ख़ौफ़नाक रायफ़ल रक्खा था, उसे फेंक देता। भाभीजान को देखिए कि देखती हैं और मारे हँसी के दीवानी हुई जाती हैं। इधर श्रीमतीजी का हाल मालूम है? क्या अर्ज़ किया जाए। जब यह अबतर हालत न देखी गई तो वह अपने कमरे में भाग गईं और भाभीजान पुकारती ही रह गईं—"ए बहन......ऐ शेर अफ़गन वाली बहन......अपने शेर तो सँभालो!" वह पिंजरा हाथ में उठाए थीं, जो हँसी के मारे छूटा पड़ता था।

श्रीमतीजी के साथ सिवा हमदर्दी के और मैं क्या कर सकता था। सब मामला समझाया। मुझे बटेरों में लगा छोड़ के भाई साहब आगे बढ़ गए। रही यह बात कि मैं बटेरें क्यों

लाया—बेशक ग़लती हुई। मगर मुझे मालूम भी तो हो कि शेर आ चुका है। .खैर, वैसे तो कुछ नहीं, मगर हाँ एक बात है। भाई साहब को चाहिए न था कि .खुद शेर मार लें। श्रीमतीजी ने मुझे मशविरा दिया कि आइन्दा भाई साहब से अलहिदा जाओ।

५

बहुत दिन तक शेर के शिकार की नौबत न आई। आइन्दा शिकार की उम्मीद ने श्रीमतीजी को फिर शिगुफ़्ता कर दिया था। अकसर चर्चे होते थे। श्रीमतीजी को शिकायत थी कि भाई साहब ने "हमारा" शेर मार लिया। मैंने क़िस्सा ही कुछ ऐसा बना के कहा था। आख़िर क्या वजह, जो भाई साहब ज़रा न टिके। मेरी परवाह तक न की। हालाँकि शिकार की मुहिम में दाम मेरे लगे थे।

फिर .खुदा की मर्ज़ी ऐसी हुई, मौक़ा आया। कई और दोस्त शामिल जाने को तैयार हुए। (यह तब का ज़िक्र है, जब मैं फ़र्स्ट इयर में पढ़ता था) चार रोज़ की छुट्टियाँ हुईं। इसमें एक दिन सनीचर का ग़ोता मिला कर इतवार जोड़ के पूरे छः रोज़ मिल गए। तजवीज़ यह हुई कि एक मोटर लॉरी की जावेगी। कोई तीस मील के फ़ासले पर एक गाँव में सदर मुक़ाम होगा और वहाँ से इधर-उधर मुख़्तलिफ़ शिकार-पार्टियाँ रवाना होंगी। जो बतखों और तीतर वग़ैरह के शिकारी हैं, वह अलग रहेंगे और हम शेर के शिकारी अलहिदा दूसरी

तरफ़ जाएँगे। अर्ज़ है कि शेर के सिर्फ़ दो शिकारी थे। एक मैं और एक मेरे दोस्त, जो सरहदी पठान थे। इनके पास बारह नम्बर की छर्रे की बन्दूक़ थी और मेरे पास रायफ़ल थी। भाई साहब अपनी पार्टी में थे। वह बतखों के शिकार का इरादा रखते थे।

शाम के चार बजे लॉरी रवाना होने लगी। मैंने और मेरे दोस्त ने यह तय किया कि हम रात को जाड़े में मरने कहाँ जाएँ। बड़े सुबह तड़के एक्का एक ले लेंगे और रवाना हो जाएँगे, ऐसे कि आठ बजते-बजते पहुँच जाएँगे। बारह बजे हमारा शिकार हमें मिल जाएगा। हम जल्दी जाकर क्या करेंगे।

❀ ❀ ❀

रात के दो बजे उठकर श्रीमतीजी ने नाश्ते का इन्तज़ाम शुरू कर दिया। असल पूछिए तो और सब झूठी बात है। शिकार का मज़ा ही नाश्ते में है वरना; शिकार कम्बख़्त में धरा ही क्या है। मेरे दोस्त रात को यहीं सोये थे। एक्का वाले से कह दिया था कि सुबह तड़के आ जाए। अब नाश्ता तैयार होने को आया और एक्का नदारद! घबड़ाहट में मुलाज़िम को भेजा कि एक एक्का पकड़ लाओ। वह ढूँढ़ता-ढूँढ़ता पहुँचा तो उसे एक थर्ड क्लास का एक्का मिला। उसे वह पकड़ लाया। इस एक्के का हाँकने वाला एक देहाती लौंडा था, कोई चौदह या पन्द्रह वर्ष का। मालूम हुआ कि असल एक्का वाला नहीं

है, बल्कि एक्का वाले का साला है। यह गाँव से अपनी बहन से मिलने आया था। बहनोई ने कहा कि ढाई बजे की गाड़ी निकाल आओ। उसने जब शिकार में चलने से इन्कार किया, तो हमारे दोस्त, खान, ने शिकारी चेहरा निकाल कर उसे क़त्ल कर देने को कहा। बेचारा देहाती लौंडा सचमुच डर गया। एक दम से काँप गया और चुपचाप राज़ी हो गया।

हम दोनों दोस्त अपना-अपना बिस्तर, बन्दूक़ें और दूसरे सामान रखकर अँधेरे में ही रवाना हो गए! रास्ते में हमारे खान को शरारत सूझी। इधर-उधर की बातें करते-करते जी में आया कि इस लौंडे को फिर डरायें। आहिस्ता-आहिस्ता हम दोनों ने आपस में बातें करनी शुरू कीं, मगर इस तरह कि लौंडा सुन ले।

खान—"क्यों जी, बहुत दिन से किसी लौंडे का गोश्त नहीं खाया ?"

मैं—"इसका (एक्का वाले का) गोश्त कैसा होगा ?"

खान—"उस दफ़ा जब शिकार को चले थे, तो एक्का वाले का गोशत तो खराब निकला था।"

मैं—"वह तो बुड्ढा था। यह...।"

लौंडे ने खौफ़ज़दा होकर मुड़ कर देखा।

मैंने लड़के से कहा—"देख, तू ज़रा तेज़ चलाये चल।"

खान—(सरगोशी करते हुए)—इसे जंगल में ले जा के पहिले बन्दूक़ मार देंगे, फिर हलाल कर लेंगे।"

मैं—"और जो कोई आ गया तब ?"

खान—"कह देंगे कि हिरन को मार रहे थे यह बीच में आ गया। लग गई इसके।"

मैं—"वह सड़क छोड़ कर जंगल में जायगा कैसे ?"

खान—"रुपए का लालच देंगे।"

लड़के ने इन्तहा से ज्यादा घबड़ा कर फिर देखा। ख़ान ने चुमकार कर लड़के से कहा—"देख तो, हमें तू वहाँ (जंगल की तरफ़ इशारा कर के) उधर वह गड्ढे जो हैं, ज़रा वहाँ ले चल।"

लड़के ने बिसूरती आवाज़ में कहा—"ना...नहीं।" सर हिलाया।

खान—"अरे रुपए देंगे हम !"

लड़का—(रोनी आवाज़ से) "नहीं।"

खान—"अरे हम तुझे मारेंगे थोड़े।"

लड़का—(रोते हुए)—"अरे मुझे मार डालोगे। अरे दादा रे......।"

लड़के ने एक्का रोक दिया और दहाड़ना शुरू किया। इधर हमने डाँटना और चुमकारना शुरू किया। बड़ी मुश्किल से लड़का चुप हुआ। हाथ जोड़ने लगा कि मुझे मत मारना। सामने से कुछ गँवार राहगीर भी आ रहे थे। लड़के को चुपके-चुपके धमकियाँ देकर चुप किया और दिलासा दिया।

फिर थोड़ी देर बाद ख़ान बोले—"क्यों जो, इसे इस एक्के पर ही गोली मार दें।"

मैं—"कह देंगे कि चल गई बन्दूक़।"

उसने मुड़ कर देखा और यहाँ चुपके से नाल के बजाय हमने कुन्दा उसकी तरफ़ किया था। ख़ान ने बजाय कारतूस के अपनी बन्दूक़ में नाल की तरफ़ छोटा चाक़ू डाल दिया।

लड़का चिल्लाया—"अरे मार डाला...अरे... ।"

जब उसे ख़ूब रुला लिया, तो फिर उसे दिलासे दिए, तसल्लियाँ दीं। ग़रज़ ख़ूब मशग़िला हाथ आया।

इसी तरह मजे में कोई आधा रास्ता तय किया होगा कि सड़क को पार कर के चार मुरग़ाबियाँ दाहिनी तरफ़ सामने ही एक ताल में गिरीं। ताल क्या एक बड़ा-सा गड्ढा था। हम दोनों तड़प कर एक्के से उतरे। झट से इन्होंने अपनी बन्दूक़ में दो कारतूस लगा लिए। मैंने भी अपना रायफ़ल हाथ में ले लिया। एक्का वाले से ठहरने को कह कर हम लपके। फ़ासला ही कितना था? मगर हमें एक खेत का चक्कर काट कर जाना पड़ा। बीच में कीचड़ का एक नाला आ गया। उससे बचाव के लिए एक खेत का और चक्कर काटा। गड्ढे पर पहुँचे हैं कि मुरग़ाबियाँ उड़ गईं। उड़ते ही फ़ायर किया। एक सरसों के खेत में फ़ासिला पर गिरी; ढूँढ़ा मगर न मिली। आख़िर थक, हार कर सड़क के किनारे पर आए; बहुत कुछ जहाँ से उतरे थे, वहाँ से कोई एक-दो फर्लांग आगे निकले। यह सोचा

कि इक्के वाले को आवाज़ दे लें कि हम आ गये हैं, और वह यहाँ आ जाय। अब जो देखते हैं, तो इक्का नदारद! ज़रा और आगे बढ़ कर देखा—और देखा; फ़ौरन पता चला कि वह भाग गया। अब परेशान होकर दौड़े। एक्के का कहीं पता नहीं था। बदहवास होकर जहाँ एक्का खड़ा था, पहुँचे। पहिये के निशानों से पता चला कि एक्का वाला भाग गया मय हमारे कोटों, बिस्तरों, कारतूसों, टोपियों वग़ैरह के! सब लेकर भाग गया! क्या यह मुमकिन था? जी हाँ, सामने से दो आदमी आ रहे थे। उनसे पूछा कि एक्का तो नहीं मिला? कहने लगे—"एक लौंडा एक्के को उड़ाये लिए जाता था। उस पर बिस्तर भी थे। सामान भी।" मारे डर के दरअसल भाग गया लड़का। सवाल यह था कि क्या हो! बीस मील पैदल चलें, तब घर पहुँचें। और पन्द्रह मील पैदल चलें, तो शिकार के सदर मुक़ाम पर पहुँचें! मगर मैं सदर मुक़ाम पर रायफ़ल के कारतूसों के बग़ैर जाकर क्या करूँ! फिर जाऊँ भी तो कोट और बिस्तर नदारद। सरदी का ज़माना। इतने में एक और राहगीर मिले। उनसे भी एक्के का पता चला। भागा जाता था। चार व नाचार, नंगे सर, पैदल, कोट नदारद, घर की तरफ़ डबल मार्च किया। मेरे कन्धे पर रायफ़ल और खान के कन्धे पर बन्दूक़। खान अपनी हिमाक़त पर पश्तो में बकते हैं। मगर क्या होता है।

आपसे क्या अर्ज करें कि कैसी मुसीबत आई। भारी रायफल ने कन्धा तोड़ दिया। राहगीर एक से एक बदमाश। ग़ौर से हमारी शक्ल देखते हैं। कोई मसखरा पूछता है—"क्या मारा ?" "तेरा सर !" खान झल्लाकर कहता है। कोई राहगीर आपस में बातें करते हैं, हम दोनों की सूरत देख कर—"कुछ मिला नहीं ?" कोई दबी ज़बान से कहता है—"शिकारी है… …।" जी में यही आता, इन कम्बख्त राहगीरों को पकड़ कर हिला मारें और इनसे हाल बयान करें और पूछें कि बदतमीज़ों, तुम्हें भी वह एक्का मिला या नहीं। मगर किस-किस से पूछते ? थोड़ी दूर जाकर एक्के का देखने वाला भी नापैद हो गया।

शाम को घर पहुँचे। गर्द में डूबे हुए, भूखे, ख़स्ताहाल। मालूम हुआ एक्का वाला बिस्तर और सामान वग़ैरह सब दे गया, यह कह कर कि हम लोग एक्का छोड़ कर न मालूम कहाँ चल दिए। अब बताइए कि हम तो इस मुश्किल में और भाभीजान मारे हँसी के लोट-पोट हुई जाती हैं। तजवीज़ इनकी यह है कि मुझे शेर का शिकार एक सिरे से ज़रा नहीं आता। यहाँ खान का और मेरा मारे ग़ुस्से का यह हाल कि मिल जाय एक्का वाला, तो उसे धुन के डाल दें। अगर भूखे न होते, तो उस लड़के को तलाश करके पहिले मारते। मगर फ़िलहाल तो बेहद भूखे थे। श्रीमतीजी बिचारी ने चुपचाप हम दोनों को बचा हुआ नाश्ता गरम करके खिला दिया। खान ने एक लपलपा बेंत लिया और कहा—"चलो, उस लौंडे को मारें।"

दरअसल एक्के पर बातों ही बातों में एक्के वाले का घर भी पूछ लिया था। श्रीमतीजी से वादा किया कि लौंडे को ख़ूब मारेंगे।

६

जिन्होंने अलीगढ़ देखा है, वह लोग इस मुक़ाम को ख़ूब पहचान लेंगे। कठपुले से नीचे उतर कर दाहिने को ढालुवाँ सड़क चली गई है। लबे सड़क दरख़्त, झोपड़ियाँ, तमाम मकान कच्चे हैं। पूछते-पूछते हम दोनों यहाँ पहुँचे। एक मैली-सी लालटेन जल रही थी और लौंडा हमें देख कर कोठरी में घुस गया। एक अदद बुढ़िया थी। दो और औरतें पूछने को आईं कि क्या मामला है। हमने लौंडे को पाजी क़रार देकर उसके पीटने की बात उठाई। एक बुढ़िया बोली—"वाह, हमारे लाल को डरा दिया तुमने।" एक दूसरी ने माफ़ी चाही। एक तीसरी औरत ने हिमायत की। एक चौथी ने किराया माँगा। और ख़ुद साहबज़ादे साहब ने अब ज़रा आज़ाद होकर किवाड़ पर हाथ रख कर झाँका। और उधर ख़ान का पारा तेज़! लौंडा मुस्कुराया। ख़ान ने लपक कर लौंडे का हाथ पकड़ लिया। घसीटा जैसे ही, तो पसर गया और मचाई जो उसने दुहाई तो ख़ान ने ग़ज़बनाक होकर उसे खींचा। और वह जो दहाड़ा है, तो तीन-चार चुड़ैलें उसे लगीं छुड़ाने। इधर ख़ान को मैंने मदद दी। बस फिर क्या था। हरबोंग मच गई। कश्मकश में ख़ान ने लौंडे पर बेंत चला दिया। मगर

नतीजा ठीक न निकला। न मालूम किस तरफ़ से टूटी हुई चारपाई का एक झिलंगा आकर गिरा। एक पीढ़ा का पाया किसी तरफ़ से आकर मेरी पुश्त में लगा। किसी तरफ़ से एक झाड़ू मुँह पर आकर पड़ी। न मालूम किस चुड़ैल ने खान के अँगूठे को काट खाया। और हुआ जो है हुल्लड़, तो अड़ोस-पड़ोस के मुसण्डे जो इधर लपके—तो हम दोनों जो वहाँ से इधर भागे तो कठपुला पार करके घंटा-घर पर आकर दम लिया। मालूम हुआ कि कमीज़ें भी फट गईं। झिलंगों और झाड़ुओं की मार से मुँह में धूल अलग घुस गई। खान के सर पर एक मुर्ग़ी बन्द करने का टोकरा भी लगा था। अब क्या करते? पिट-पिटा कर घर वापस आये। श्रीमतीजी ने पूछा—"क्या हुआ ?" मैंने कहा—"मार आये उसे।" उन्होंने पूछा—"बेंत कहाँ गया ? मैंने कहा—"खान के पास है।" खान ने कहा—"वहीं रह गया।" ख़ैर। बक़ौल कहे उस बदमाश लौंडे से हम बदला तो ले आये। ज़रा ग़ौर करना, यह कम्बख़्त शेर का शिकार जाकर खत्म कहाँ हुआ! मगर नहीं साहब, अभी तो फिर शिकार को जाना है !!

मेरी फ़ज़ीहत

आज से क़रीब पाँच साल पहले का क़िस्सा है, जबकि मैं आठवीं जमात में तालीम पा रहा था; और मेरी उम्र थी क़रीबन १४ साल। उन दिनों मैं अपना वक़्त खेल-कूद और तरह-तरह की शरारतों में बिताया करता था!

उन्हीं दिनों मेरे भाई साहब नए-नए एक से दो हुए थे, याने उनकी शादी हुई थी। इस नए शौक़ की वजह से वे दोनों एक साथ खाते-पीते, बातें करते और मौज उड़ाते थे। ग़रज़ यह, कि भाई साहब ने मुझे क़रीब-करीब बिलकुल ही भुला दिया। जहाँ पहले वह मुझे ख़ूब प्यार करते, कहानियाँ सुनाया करते और मेरे साथ खेला करते थे, वहाँ अब मुझे उनका दर्शन भी न मिलता था; पर मुझे उनका यह बर्ताव कुछ अखरा भी नहीं; क्योंकि एक तो उन्हीं की तरह बोलने, प्यार करने और हँसने वाली भाभी मिल गई थीं, दूसरे यह, कि मैं कुछ अपने ख़याली पुलाव भी पकाने लग गया था। मैं भाभी को तरह-तरह से तंग व परेशान भी करता था; वह भी अक्सर

झुँझुला कर कहा करतीं—"लाला, तुम मुझे क्यों तंग करते हो, तुम तंग करना अपनी मेम साहबा को।"

यह सुन कर मैं अकसर हँस दिया करता; और अपने ख़याली पुलावों में मस्त हो जाता! सोचता, जब मेरी शादी हो जायगी और भाभी-सी सुन्दर बीबी मेरे घर आवेगी, तब मैं भी भैया की तरह उसे ख़ूब प्यार किया करूँगा, और जब वह रूठ जाया करेगी, तो उसे बड़े प्रेम से समझा कर ख़ुशामद करके मनाया करूँगा। ग़रज़ यह, कि इसी तरह मेरे दिन हँसी-ख़ुशी में बीत रहे थे।

२

बहुत दिन बीत गए—क़रीब-क़रीब दो साल। इन दिनों मैं मैट्रिक के इम्तहान की ज़ोर-शोर से तैयारी कर रहा था। इधर मेरे घर वाले एक नया ही मन्सूबा बाँध रहे थे। कहने का मतलब यह, कि मुझे चौपाया बनाया जाने का इरादा किया जा रहा था। पर मैं इस दुनिया से अलग, अपनी किताबी दुनिया में रहता था। इसी तरह क़रीब डेढ़ माह के और बीत गया।

उस दिन मेरा इम्तहान खतम ही हुआ था, और मुझे होस्टल में एक दिन भी बिताना भारी मालूम हो रहा था। बस, मैं फ़ौरन ही घर रवाना हो गया। घर पहुँचते ही मुझे भाभी ने परेशान करना शुरू कर दिया। मैं कुछ समझ न सका। बड़े अचम्भे से उनकी ओर देखने लगा। बातों ही बातों में

मुझे पता चला, कि मेरी शादी की बातचीत अमृतसर में ठीक हो गई है। और शगुन वग़ैरह कल आने वाला है।

इस रसम के अदा हो जाने के बाद, मैं छुट्टियाँ बिताने पहाड़ चला गया। और पहाड़ से लौट कर कॉलेज में पढ़ने के लिए बनारस। ग़रज़ यह, कि डेढ़ साल का अर्सा बीत चला। इधर मेरे घर वालों ने मेरी शादी फ़रवरी में पक्की कर दी।

बड़े दिन की छुट्टियाँ शुरू होने के पहले ही मैं घर गया; वहाँ भाभी और बहन ने मुझसे सब क़िस्सा कहा। मेरा इरादा शुरू ही से था, कि बग़ैर बीबी के देखे शादी न करूँगा इसलिए मैंने पिता जी से कहा, कि अव्वल तो मेरा इरादा अभी शादी करने का है ही नहीं, दूसरे, मैं लड़की देखे बिना शादी न करूँगा; बस पिता जी बिगड़ गए और मुझसे बातचीत भी बन्द कर दी! मगर अम्मा और दादी ने मुझे समझाना शुरू किया। दादी कहतीं—"बेटा, अब मेरा आख़िरी वक़्त है, मुझे मरने के पेश्तर अपनी बहू की सूरत तो दिखा दो।" भाभी कहतीं—"लाला, मुझसे बात करने वाली कोई मेरी हमजोली नहीं है, बीबी ला दो, तो मेरा जी भी बहले।"

मैंने हार कर कुन्दन से राय ली; उसने कहा—"यार, शादी तो करनी ही होगी, तो एक काम करो; बाबू जी की

बात मान लो, और बीबी को देखने का तरीक़ा मैं तुम्हें बता दूँगा।

३

कॉलेज के साथियों के साथ जब मैं बम्बई की ट्रिप पर चलने लगा, तो पिता जी ने फिर शादी के बारे में मेरी राय पूछी। मैंने कहा—"मुझे आपके हुक्म से क़तई एतराज़ नहीं है।"

दोस्तों को बम्बई का रास्ता दिखा कर मैं अमृतसर चल दिया। वहाँ मानसरोवर होटल में अपना असबाब रख कर आवश्यक ज़रूरतों से फारिग़ हो, मैं अपनी भावी ससुराल की ओर चला। उनका पता मैंने भाभी से पहले ही मालूम कर लिया था। मकान के पास पहुँचा ही था, कि मेरी निगाह अपने मामा पर पड़ी, जो सामने से चले आ रहे थे। मैं उनको देख कर चकपका उठा।

मामा ने पूछा—"यहाँ कहाँ?"

मैंने कहा—"मामा जी, मैं भी तो यही पूछता हूँ, कि आप यहाँ कहाँ?"

ख़ैर, मेरा तो अभी पहली से यहाँ तबादला हो गया है; पर तुम कहाँ आए हो?

"मैं अपनी कॉलेज-मण्डली के साथ ट्रिप पर आया हूँ।"—मैंने कहा। क्योंकि यह कहना तो नामुनासिब था, कि बीबी देखने आया हूँ।

"तो घर चलो।"

मैं मन ही मन मायूस-सा हो उनके साथ चल पड़ा। और दिल में कहने लगा 'आए थे हरी भजन को ओटन लगे कपास!'

थोड़ी देर बाद जब मामा दफ़्तर चले गए, तो मैं मामी से कह कर होटल से सामान लाने चला गया। जब सामान ले कर लौटने लगा, तो मैंने सोचा, चलो ससुर जी के मकान से होते चलें, जो कि उसी मोहल्ले में था, जिसमें मेरे मामा का मकान था, पर लज्जा की वजह से जा न सका!

जब मैं सामान रख कर ग़ुसलख़ाने में नहा रहा था, तो सुना मामी कह रही थीं—"मुरली जी, पुष्पा को भेज दीजिएगा।" मैं चौंक पड़ा, कि मुरली जी मेरे ससुर का नाम था। मैंने सोचा, सम्भवतः मामी मेरे आने का उद्देश्य समझ गई हैं। और उसी उद्देश्य से मेरी भावी पत्नी को बुलाया है।

दोपहर को मेरे भोजन करते समय, मामी ने मेरे अमृतसर आने का उद्देश्य पूछा। मैंने कॉलेज के साथियों के साथ आने का बहाना किया; पर वह मुस्कुरा कर बोलीं—"झूठ, और वह मुझ से ही!"

मेरी गर्दन अनायास ही झुक गई। इसी समय वह फिर बोलीं—"क्यों, बीबी को देखने आया है?" मैं चुप रहा, वह फिर कहने लगीं—"अच्छा, घबरा मत मैं तुझे तेरी बहू किसी-न-किसी बहाने दिखा दूँगी।"

थोड़ी देर बाद एक लड़की ने घर में क़दम रक्खा। मैंने पर्दे की आड़ से उसे देखा और ख़ूब देखा; यहाँ तक कि तेरह वर्ष की सुन्दर-सी मृग के समान काली-काली आँखों वाली वह शक्ल मेरे दिल में बसने-सी लग गई। मैंने सोचा शायद यही मेरी पत्नी है।

उसी समय मामी ने कहा—"पुष्पा, तुम आ गईं।" सुन कर मेरा सन्देह दूर हो गया।

कपड़े पहन कर जब मैं बाहर जाने लगा, तो मामी ने मुझे बुला कर अपने पास बैठा लिया। थोड़ी देर बात करने के बाद जब मामी ने उसका परिचय दिया, तो मुझे मालूम हुआ, कि वह मेरी पत्नी नहीं, बल्कि उसकी बहन है!

मेरी आशाओं के महल पर भूकम्प का धक्का लगा; पर महल इस उम्मीद पर खड़ा हो रहा, कि जब यह इतनी सुन्दर है, तो इसकी बहन भी अवश्य ही सुन्दरी होगी।

शाम को जब मैं मामा के साथ बरामदे में बैठा बातें कर रहा था, तो मेरी नज़र उनके बरामदे की ओर थी। मामा इसे ताड़ गए और बोले—"बेटा, दो दिन और सब्र करो। फ़रवरी ज्यादा दूर नहीं है।" मैं शर्म से गड़ गया। पर इतना होने पर भी मेरी निगाहें उधर उठ ही जाती थीं! बहुत देर वहाँ रहने पर भी मुझे वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया।

अगले दिन जब मैंने चलने के बारे में कहा, तो मामा ने

तीन दिन ठहर कर अपने जन्म-दिन की दावत खा कर जाने की सलाह दी। मैं रुक गया।

तीसरे दिन मामा की वर्ष-गाँठ में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों में मेरे भावी ससुर साहब भी आए! उनके साथ कई लड़कियाँ भी थीं। मैंने सोचा, शायद इनमें मेरी पत्नी भी हो। पर परिचय कराए जाने पर मेरे हाथ नाउम्मेदी रही। मैं मन ही मन कह उठा :

क़िस्मत की बदनसीबी को सैयाद क्या करे?
सिर पर गिरा पहाड़, तो फ़रयाद क्या करे!

रात को बात ही बात में मैंने मामी से ज़िक्र करते हुए कहा—"मामी, मेरे यहाँ आने का मक़सद तो हल न हुआ।"

मामी ने कहा—"अच्छा, कल शाम के वक़्त क़रीब ६ बजे दरबार साहब में आना; मैं उसे साथ ले कर आ जाऊँगी, तुम अपने मन की मुराद पूरी लेना।

४

किसी तरह अगली शाम हुई, क़रीब साढ़े पाँच जब मैं दरवाज़े पर ताँगे के इन्तज़ार में खड़ा था, मैंने देखा, कि हमारे दरवाज़े के आगे एक ताँगा आ कर खड़ा हुआ। मैंने सोचा, शायद मामी उसे ले कर यहाँ ही आ गई हैं। मैं आगे बढ़ा, पर उस पर की सवारियों के देखते ही मैं चीख पड़ा। मेरे कलेजे पर साँप-सा लोटने लगा! उस ताँगे पर से मेरे भाई प्रेम तथा भाभी साहबा उतर रही थीं!!

उन्होंने मुझे देखते ही कहा—"कैसी अच्छी बम्बई की सैर है, मुझे नहीं मालूम था, कि अमृतसर भी बम्बई का एक मुहल्ला है!"

मैं झेंप गया, पर शर्म मिटाने के लिए कहा—"हमारे ट्रिप ने बम्बई न जाकर पञ्जाब आना निश्चित किया, इसलिए यहाँ आ गए।"

"हो सकता है; हमारी भी शादी हुई है, और हमने भी इसी तरह की शरारतें की हैं। पर यह तो कहो, कि अपने मक़सद में कामयाब हुए या नहीं।"

मैं चुप रह गया। भाभी ने कहा—"अच्छा, लाला! घबराओ नहीं, मैं उसका इन्तज़ाम कर दूँगी।"

५

शादी के बाद जब मैंने बीवी से इसका ज़िक्र किया, तो वह बोली—"फ़ज़ीहत तो आपकी अच्छी हुई थी। ख़ैर, आपने तो मुझे नहीं देखा था, पर मैंने आपको ज़रूर देख लिया था।"

मैं मुस्करा कर रह गया!

मैं सम्पादक !

मैं—सम्पादक !

जी हाँ, मैं भी 'भूतपूर्व सम्पादक' हूँ ! यह तो ठीक है कि मेरे अखबार का एक ही अङ्क निकला था……। लीजिए तमाम बात बतलाए ही देता हूँ ।

मेरे एक दोस्त थे; नाम—समझ लीजिए 'शूशू बाबू' । आप समझ गए होंगे, कि नाम असली नहीं है ।

हाँ, तो एक दिन मैं क़लम-काग़ज़ लिए झक मार रहा था, कि आ पहुँचे । मैंने देखते ही काग़ज़ खिसका दिया ।

शूशू बाबू में एक विशेपता थी । वह सदा नई से नई स्कीम बना कर लाते थे रुपया कमाने की; बिल्कुल पक्की स्कीम ! सो उस दिन भी वह आकर दन से मेज़ पर बैठ गए ।

मैंने कहा—"भई, मेज़…।"

"ऊँह"—उन्होंने कई बार मेज़ को चरचरा कर कहा—जाने भी दो । अगर तुम मेरी बात मानो, तो हज़ार रुपए की मेज़ पर बैठ सकते हो !

"मेज़ पर बैठ सकता हूँ !"

"यानी मेज़ तुम्हारे आगे आ सकती है !" मैं सब बात चुपचाप सुनता गया। लाचारी थी। स्कीम थी एक अखबार निकालने की !

शूशू ने कहा—"यह क्या दुनिया-भर के लिए तुम लिखा करते हो ! मज़ा तो तब है, जब लोग तुम्हारे लिए लिखें !"

मुझे ध्यान आया उन छोटी-छोटी छपी स्लिपों का, जिन्हें बिलकुल बेतकल्लुफ़ी से सम्पादक लोग मेरे लेखों के साथ लगा कर वापिस भेज देते थे। किसी में वह अपनी असमर्थता पर अफ़सोस ज़ाहिर करते थे, और किसी में जगह की कमी का रोना रोते थे ! समझ में नहीं आता कि ऐसे नालायक़ लोग—जिन्हें इस प्रकार की चिट्ठियाँ छाप कर रखनी पड़े—क्यों सम्पादक बन जाते हैं, और बन जाने पर फिर अचल क्यों बने रहते हैं !

ख़ैर, मेरे दोस्त, शूशू, की खींची हुई तस्वीर बड़ी मनो-मोहक थी। बढ़िया-सा ऑफ़िस, घण्टी, अर्दली, सब कुछ। लेखों, कहानियों का ढेर...और मैं; जी हाँ मैं ही, उनमें से, जिसे जी चाहे...ओह !

हृदय बैठ-सा गया।

"पर शूशू,"—मैंने कहा—"भइया, बड़ा रुपया लगेगा। और जो अखबार न चला तो ?"

"न चलने का क्या अर्थ ?"—उसने फ़र्माया "भागेगा सरपट ! भई, मकान, फ़र्नीचर, नौकर सब को तो महीने के बाद ही रुपया देना पड़ता है। रहा थोड़ा-सा ख़र्च रोज़ाना का, सो वह एजेण्टों की पेशगी से चल जायगा।"

सच मानिए, मेरे शरीर में स्फूर्ति पैदा हो गई। ख़ून में गर्मी की मात्रा बढ़ गई !

"न चलने के क्या मानी, आप ही बताइए !"

आखिर एक साप्ताहिक निकालने की ठहरी। मैं बड़ी गम्भीरता पूर्वक ऑफ़िस में जा कर बैठा। अर्दली का सलाम लिया, ज़रा सिर झुका कर।

उस दिन, एक युगान्तरकारी पत्र का जन्म हुआ। और मैं...मैं...कमरे के बाहर छोटी-सी तख़्ती पर लिखा जो था—'सम्पादक' वही था मैं !! दो-एक दिन बाद ही मुझे एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा। काम था बड़ा आवश्यक, इसलिए जाना ही पड़ा, और लौटने में भी काफ़ी देर होने की सम्भावना थी। मुझे तो घबराहट थी, पर शूशू ने छाती ठोक कर कहा—"ओह ! तुम जाओ, मैं सब कर लूँगा। बिलकुल !"

मैं ज़रा हिचकिचाया—"पर, सम्पादकीय...?"

"वह तुम लिख कर रख जाओ, अगर चाहो तो।"

बात ज़रा ओछी-सी थी, पर मैंने सम्पादकीय लिख ही डाला। बिलकुल, लाजवाब ! बेजोड़ !!

धीरे-धीरे खिसकती हुई पहिली तारीख आई। मैंने शहर के छहों एजेण्ट ढूँढ़ डाले, पर मेरा अखबार न मिला! आखिर स्टेशन पर ह्वीलर के यहाँ देखा उसे—ऊपर कवर पर, देखा, एक सिनेमा के एक्टर महोदय आँख मिचका कर जीभ निकाल रहे थे। कैसा बेहूदापन था! यह शूशू भी......!! और तस्वीर के नीचे छपा था—सम्पादक, ...और 'सम्पादक' के नीचे मेरा नाम !!

मैंने जल्दी से इधर-उधर देखा। कम्बख्त ने सम्पादक का नाम किस बेमौक़े छापा! मालूम होता था, मानो ऊपर की बेहूदा तस्वीर सम्पादक महोदय की ही हो!

मैं लौट आया।

सूट, टाई से लैस मैं पहुँचा अपने दफ़्तर, लेकिन वहाँ बिलकुल सन्नाटा था! अन्दर घुस कर देखा, अखबारों का अम्बार लगा था। बिलकुल ठीक। इतनी माँग थी हमारे अखबार की! तब तो......

अन्दर बढ़ कर देखा, शूशू चीड़ के बक्स पर बैठा था, परेशान-सा। सच ही तो, बेचारे को बड़ा काम करना पड़ा होगा।

"शूशू!" मैंने कहा।

"ओह! तुम !!"

कुछ अधिक प्रसन्नता न दिखाई थी उसने। ख़ैर!

"यह सब," मैंने ढेर की तरफ़ इशारा करके कहा,—"शायद नया अङ्क है।"

शूशू ने एक उसाँस ले कर कहा—'पहिला ही है।"

मैं हैरान था। इतने में बाहर धमाके की आवाज़ सुनाई दी। एक लड़का एक पार्सल लिए अन्दर आया, और धड़ाम से उसे डाल कर चल दिया।

मेरी हैरानी देख कर शूशू ने कहा—"देख क्या रहे हो, एजण्टों के यहाँ से वापिस आ रही हैं प्रतियाँ!"

"कितनी कॉपियाँ बिकीं?" मैंने पूछा।

"ग्यारह।"

मैं चुप। कहता भी क्या?

"सुनते हो, भई"—शूशू ने सहसा कहा, "तुम्हारा देहात वाला मकान कहाँ है?"

"क्यों?"

"वहाँ चलना पड़ेगा एक दम...! काग़ज़ वाले का, प्रेस का, मकान का...देना है न...।"

कुछ देर चुप रह कर उसने फिर कहा—"बड़ा बेवकूफ़ देश है, भइया! मैंने कैसे-कैसे लेख, कैसी-कैसी कविताएँ...।"

बात काट कर मैंने पूछा—"लेख कहाँ से मँगाए थे? किन-किन के?"

शूशू ने मुस्करा कर कहा—"उसमें तो मैंने कमाल ही कर दिया था। एक वार ही साल-भर के लेख इकट्ठे कर लिए थे,

और बिलकुल मुफ़्त में !! बस एक दिन शहर के तमाम अख़बारों के दफ़्तरों की रद्दी की टोकरियाँ ख़रीद ली थीं।"

सच जानिए, जी में आया कि कम्बख़्त के एक हाथ दूँ कस के। पर चुपचाप हाथ पकड़ कर कहा—"चलो !"

और वह फिर भी यही कहता है कि इस मुल्क के आदमी ही बेवक़ूफ़ हैं !

ऐसी सम्पादकी की थी मैंने !!

रिफ़ॉर्मर

"हमारा समाज क्यों नहीं सुधरता ?" क्योंकि इसके रिफ़ॉर्मर लड़कियों के मोहसिन और लड़कों के बाप होते हैं।"

मेरे ससुर जी भी अपनी लड़की की शादी के पहिले एक रिफ़ॉर्मर थे। दहेज के सख्त मुख़ालिफ़ और नई तहज़ीब के जानी दुश्मन ! शादी-विवाह के अवसरों पर बेजा रसूमात और फ़िज़ूलखर्ची को फूटी आँखों भी न देख सकते थे।

पिता जी पर तो उन्होंने ऐसी मोहिनी डाली, कि मेरी शादी बिला किसी पशोपेश के तुरन्त मन्ज़ूर कर ली गई। पिता जी ने कहा था—"जब आपने लड़के को लड़की के लिए पसन्द कर लिया, तो लड़की ज़रूर अच्छी होगी। आख़िर आप भी तो दोनों की ज़िन्दगी के इस मसले को ख़ूब समझते हैं।" मेरी होने वाली गृहिणी की फ़ोटो बिना देखे ही वापस कर दी गई। शराफ़त का पूरा-पूरा इस्तेमाल किया गया। ससुर जी ने शायद इसी को ग़नीमत समझा और बिना कुछ कहे-सुने फ़ोटो जेब में रख ली।

दूसरे ही महीने मेरी शादी बड़ी धूम-धाम से हुई। पिता जी ने बड़ी सावधानी से काम लिया। फिर भी काफ़ी हौसला दिखाया। ससुर जी आदि से अन्त तक रिफ़ॉर्मर ही बने रहे।

श्यामा मेरी अर्द्धांगिनी बन कर आई। अपनी कमज़ोरी क्यों छिपाऊँ, उसे देख कर मैंने अपनी क़िस्मत ठोक ली। आप ही आप एक आह मुँह से निकल गई। मगर मैं धार्मिक वातावरण में पला था, तुरन्त ही अपना कर्त्तव्य याद आया। श्यामा को मैंने गले से लगाया; मैं उसका हो गया, वह तो मेरी थी ही।

२

मैं श्यामा को पहिली बार बिदा कराने ससुराल गया हुआ था। ज्यों ही मेरा ताँगा कोठी के सामने रुका, साले और सालियों ने दौड़ कर मेरा स्वागत किया। ससुर जी, सास जी; सभी वहाँ नज़र आईं। सबके सब अच्छे-अच्छे वस्त्र पहने थे। लड़के सूट पहने ऐंठते फिरते थे। लड़कियाँ जॉर्जेट की साड़ियों में उभरी पड़ती थीं। मैंने छिपी नज़रों से श्यामा की तलाश की; मगर वहाँ वह न दिखाई दी।

सास जी ने मुझे सोफ़े पर बिठाते हुए कहा—"अच्छे समय पर आए भैय्या, हम सब तो तुम्हारी राह ही देख रहे थे।"

ससुर जी ने उनकी तरफ़ देखा। बोले—"इनको भी साथ लेती चलो।" मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने पूछा—"कहाँ?"

सास जी हँसी। "हाँ, हाँ, इन्हें तो चलना ही पड़ेगा। सरहज तो इन्हीं की पसन्द की होनी चाहिए।"

अब मैं समझा। बातें हो ही रही थीं, कि मेरी छोटी साली ने एक फ़ोटो ला कर मेरे हाथ में रख दी। यह एक कुँआरी लड़की की तस्वीर थी। मैं शरमा-सा गया और चाहते हुए भी उसकी तरफ़ न देख सका। साली ने ताली बजा कर कहा—"वाह जीजा जी, आप शरमाते क्या हैं ? देखिए यह हमारी भाभी होने वाली हैं !"

साले साहब अंगरेज़ बने बैठे थे। उनकी माँ ने कहा—"भय्या तस्वीर तो बहुत अच्छी है, मगर (लड़के की तरफ़ इशारा करके) मोहन कहता है, कि इसका कुछ एतबार नहीं। ख़ास कर रंग का पता, तो चल ही नहीं सकता।" मैं चुप था।

ज़रा देर बाद सब ने मिल कर खाना खाया। फिर सबके सब लड़की देखने के लिए रवाना हुए। मुझसे भी बहुत कहा गया। सालियों ने ख़ुशामदें कीं। साले साहब ने अंगरेज़ी में ज़िद की। मोटर बड़ी देर तक इन्तज़ार में रुकी रही, लेकिन मैं न गया।

जब सब चले गए, तो मैं आकर कमरे में लेट गया। मेरे दिमाग़ में एक उलझन थी। एकाएक श्यामा मुस्कुराती हुई आई। मैंने पूछा—"तुम नहीं गई ?"

वह बोली—"मम्मी बहुत कहती रहीं, मगर मुझे यह तरीक़ा कुछ पसन्द नहीं है। और फिर मैं ही कौन बड़ी

सुन्दर हूँ। यह कह कर वह फिर मुस्कुराने लगी। फिर बोली—
"और भैय्या भी तो फटे ईसाई-से लगते हैं।"

३

शाम होते-होते यह लोग लौटे। कमरे के भीतर से मैंने सुना, सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मोहन साहब कह रहे थे—
"देखा मम्मी, कैसी काली है। मैं तो उसे देख कर डर गया।"

ससुर जी बोले—"लाला जी ने खासा धोका दिया था। अगर देख न लेते, तो मोहन को ज़िन्दगी भर रोना पड़ता।"

माँ को यह बात ज़्यादा पसन्द न आई। बोलीं—"काली है तो क्या हुआ, हमारे मोहन से उसका रंग फिर भी साफ़ है और स्वभाव भी बड़ा अच्छा जान पड़ता है।"

छोटी साली, जो खुशी से उछली पड़ती थी, बोल उठी—
"मम्मी, भाभी ने मुझे अपने हाथों सन्तरा खिलाया। मुझे तो बड़ी अच्छी लगती हैं।"

छोटे साले को बहिन की यह बात अच्छी न लगी। रुष्ट हो कर बोले—"तुम्हीं को क्या, मुझे नहीं खिलाया? मैं तो मारे शर्म के खाता ही न था। उन्होंने ज़बरदस्ती मेरा मुँह खोल कर सन्तरे की फाँक रख दी थी।"

मैं भी बाहर आ गया था। देखा, मोहन साहब ऐसा मुँह बनाए थे, जैसे काले साहब ने चिरायता पिया हो। एक हाथ पतलून की जेब में था, दूसरे से माथे पर ग़ुस्सा उतार रहे थे।

ससुर जी मेरी तरफ़ मुख़ातिब हुए—"मिस्टर किशोर, लड़की हमें पसन्द नहीं आई। रंग अच्छा नहीं है!"

मैं चुप रहा। बोलता भी क्या? उनके यहाँ कॉकेशस के जलवे थे! वह फिर बोले—"और फिर चार हज़ार से ज़्यादा देने को भी तो नहीं कहते!"

मैंने दिल में कहा—बेशक यह उनका दूसरा जुर्म है!!

मिस्टर टॉम

मिस्टर टॉम ने कमरे में पैर रखते ही अपना हैट मेज़ पर फेंका और ज़ोर से अपने नौकर चारली को आवाज़ देते हुए दूसरे कमरे में गए। वहाँ से आप चारली को आवाज़ देते हुए वापस आए। बेचारा चारली घबड़ा गया, कि आज साहब को क्या हो गया, जो इस तरह चिल्ला रहे हैं! वह भागता हुआ साहब के पास पहुँचा। टॉम साहब चारली को देखते ही एक साँस में कहने लगे—"क्यों, कहाँ था? बहरा हो गया? मेरा चिल्लाते-चिल्लाते गला पड़ गया, सुन, जल्दी सुन, मैं एक बहुत ज़रूरी काम से बाहर जा रहा हूँ। जल्दी से मेरा असबाब ठीक कर दे, बहुत जल्दी। देख, गाड़ी को सिर्फ़ एक घण्टा रह गया है। अरे, जल्दी कर, जल्दी।"

इतना कह कर टॉम साहब ने एक सूट-केस खोला, उसके कपड़े निकाल कर चारपाई पर डाल दिए और दूसरे ट्रङ्क से दो सूट निकाल कर उसमें रख लिए। दो-तीन क़मीज़ें, दो कॉलर, टाई वग़ैरह रखने के बाद क्रीम, पाउडर का नम्बर आया; जैसे ही

एक शीशी उठाई वह हाथ से छूट गई और चूर-चूर हो गई। आपने दूसरी शीशी उठाई और ट्रङ्क की तरफ़ भागे। इत्तफ़ाक़ से आपका पैर फिसल गया, और आप चारों ख़ाने चित गिर पड़े। चारली, जो बिस्तर बाँध रहा था, साहब को गिरता देख, फ़ौरन दौड़ कर आया और उसने साहब को उठा कर खड़ा किया। टॉम साहब ने जल्दी-जल्दी किसी तरह असबाब ठीक किया और स्टेशन पहुँचे। वहाँ उन्होंने जल्दी से टिकट ख़रीदा और एक डब्बे में जा बैठे। जल्दी में वह, बजाय तीसरे दर्जे के, दूसरे दर्जे में जा बैठे। डब्बा ख़ाली था, उन्होंने इतमीनान से अपना असबाब एक तरफ़ रख दिया और खिड़की के पास बैठ कर सोचने लगे, कि अपनी भावी ससुराल पहुँच कर क्या करेंगे। अभी बेचारे कोई बात तय भी न कर पाए थे, कि उनके विचार एक टिकट-चेकर साहब ने टिकट माँगते हुए भंग कर दिए। टॉम साहब ने टिकट निकाल कर टिकट-चेकर साहब के हवाले किया। टिकट-चेकर ने टिकट देख कर कहा—"जनाब आपके पास तीसरे दर्जे का टिकट और आप बैठे हैं दूसरे दर्जे में। अब आपको दूसरे दर्जे का किराया देना पड़ेगा।"

टिकट-चेकर की बात सुन कर टॉम साहब बोले—"यह डब्बा ख़ाली था, इसलिए बैठ गया, अगर कोई बैठा होता, तो न बैठता। आख़िर, डब्बा ख़ाली ही तो जा रहा था।"

टिकट-चेकर साहब बोले—"जनाब, अगर ऐसी ही बात

होती, तो सब लोग, जिसको जहाँ जगह मिलती बैठ जाते। फिर इन दर्जों की क्या ज़रूरत होती? एक तो जुर्म किया, दूसरे हमीं को उल्लू बनाते हो।"

टॉम साहब ने कहा—"जनाब, नाराज़ न हूजिए, अगर आप इसको जुर्म समझते हैं, तो लीजिए मैं इस डब्बे से उतर कर दूसरे में चला जाता हूँ।"

इतना कह कर टॉम साहब ने सूट-केस उठाया और दरवाज़े की तरफ़ बढ़े। जैसे ही उन्होंने दरवाज़ा खोला, टिकट-चेकर ने ज़ोर से चिल्ला कर कहा—"क्या मरना है, देखते नहीं गाड़ी चल रही है।"

साहब ने जो सुना, कि गाड़ी चल रही है, तो उनको होश आया, और जो जल्दी मुड़े, तो पैर फिसल गया! पैर फिसलते ही वे टिकट-चेकर से जा टकराए। टिकट-चेकर साहब इस धक्के को बरदाश्त न कर सके और वह भी सीट पर औंधे मुँह जा पड़े। इतने में गाड़ी स्टेशन पर आ कर खड़ी हो गई। इधर टिकट-चेकर ने उठ कर फ़ौरन टॉम साहब को मय इनके सूट-केस के बाहर ढकेल दिया। टॉम साहब फ़ुटबॉल की तरह प्लेटफ़ॉर्म पर जा गिरे। फिर किसी तरह जल्दी से उठ कर एक डब्बे में पहुँचे। उस डब्बे में इतनी भीड़ थी, कि बेचारे टॉम साहब को खड़ा होना भी मुश्किल हो गया। उनके पीछे भी दो-तीन आदमी खड़े थे। गाड़ी चलते ही टॉम साहब पीछे वालों पर गिर पड़े। उनके गिरते ही पीछे वालों ने उनको

ज़ोर से धक्का दिया। इस धक्के से टॉम साहब अगली सीट के मुसाफ़िरों पर जा गिरे। उन आदमियों ने इनको पीछे की सीट पर उछाल दिया। पीछे वाले भला क्यों बरदाश्त करते, उन्होंने टॉम साहब को फिर आगे ढकेला। फिर क्या था, इनका वॉलीबॉल बना कर मैच शुरू हो गया! आगे वाले इनको पीछे ढकेलते और पीछे वाले आगे। इस फेंका-फेंकी में इनके कोट-पतलून ने जवाब दे दिया। कोट की जेबें फट गईं। पैण्ट भी साबित न बचा। टोप महाशय तो इतने नाराज़ हुए, कि आपने फ़ौरन डब्बे से निकल कर बाहर का रास्ता लिया। बेचारे टॉम का बहुत बुरा हाल था। इस फेंका-फेंकी में उनकी हड्डी-हड्डी में दर्द होने लगा था। इतने में स्टेशन आ गया। किसी तरह जान बचा कर टॉम साहब भाग खड़े हुए। डब्बे से उतरते ही उनको मालूम हुआ, कि इसी स्टेशन पर उनको उतरना भी था। टॉम साहब ने ठण्डी साँस ली और स्टेशन से बाहर आ कर एक बैलगाड़ी किराया पर की। वे उसमें जा बैठे। दर्द से बेचारे का बुरा हाल था, इसलिए वे कोट उतार कर और सिरहाने रख कर लेट गए। धक्का खाते-खाते वे बहुत थक गए थे, इसलिए लेटते ही सो गए। पर यकायक चें-चें की आवाज़ से चौंक पड़े और इस ज़ोर से उछले, कि आप गाड़ी के बाहर जा गिरे। गाड़ी-वाले ने फ़ौरन गाड़ी खड़ी कर के पूछा—"साहब, क्या बात हुई?"

टॉम साहब बोले—"अरे, यह गाड़ी चें-चें क्या करती है।?"

गाड़ी वाला बोला—"हज़ूर, पहिया बोलता है, कच्ची सड़क है।"

टॉम साहब फिर गाड़ी में जा बैठे। उनको मालूम था, कि उनको कहाँ जाना है, वहाँ रात के आठ-नौ बजे से पहिले नहीं पहुँचेंगे, इसलिए, वे फिर लेट गए और फिर उन्हें नींद आ गई। इधर अँधेरा हो गया। गीदड़ों ने आवाज़ करना शुरू कर दिया। टॉम साहब गीदड़ों की आवाज़ सुन कर जग गए। उन्होंने पहिले कभी गीदड़ों की आवाज़ न सुनी थी। चारों तरफ़ से उन्होंने 'हुआँ-हुआँ' की आवाज़ें जो सुनीं, तो उनकी रूह फ़ना हो गई और वे उठ कर उतरने लगे और घबड़ाहट में गाड़ी वाले के ऊपर जा गिरे। गाड़ी वाला इस अचानक हमले को न सँभाल सका और गाड़ी के नीचे जा पड़ा। टॉम साहब भी उस पर जा पड़े। बेचारा गाड़ी वाला समझा, कि शायद साहब का दिमाग़ ख़राब हो गया है, और मुझे मार डालना चाहते हैं। वह उठ कर भागा। टॉम साहब तो बुरी तरह डरे हुए थे, वह भी उसके पीछे भागे और कुछ दूर पर उसको पकड़ कर उससे चिपट गए। गाड़ी वाला लगा चिल्लाने—"साहब, मुझे मत मारो, मेरा क्या क़सूर है, मुझे छोड़ दो।"—बेचारे को क्या मालूम, कि साहब की यह हालत गीदड़ों के कारण है। इधर टॉम साहब गाड़ी वाले से बुरी तरह चिपटे जा रहे थे, उधर, इत्तफ़ाक़ की बात है, एक गीदड़ टॉम साहेब के पीछे बोल उठा। उसकी आवाज़ सुन कर टॉम

साहब गाड़ी वाले के कन्धे पर जा चढ़े। गाड़ी वाला बेचारा कैसे यह बोझ सँभालता? वह औंधे मुँह गिर पड़ा, टॉम साहब थे उसके ऊपर! गाड़ी वाला टॉम साहब को धक्का दे कर भागा, पर उनके हाथ में उसकी धोती आ गई। इतने में टॉम साहब की निगाह एक गीदड़ पर जा पड़ी, जो कुछ ही दूर पर खड़ा था। उसको देखते ही टॉम साहब उछल कर फिर गाड़ी वाले से जा चिपटे और गीदड़ की तरफ़ इशारा करके बोले—"व...ह...व......ह आ गया!"

गाड़ी वाले ने गीदड़ को जब देखा, तो उसकी समझ में आ गया, कि साहब गीदड़ों ही से डर कर मेरी यह हालत कर रहे थे। किसी तरह समझा-बुझा कर गाड़ी वाला टॉम साहब को गाड़ी पर लाया; पर साहब ने गाड़ी वाले से अलग बैठना मुनासिब नहीं समझा और बिलकुल उससे सट कर बैठे। जैसे-तैसे टॉम साहब रात को नौ बजे मिस्टर पीटर के यहाँ पहुँचे। पीटर साहब इनको बैठक में ले गए, और वहाँ अपनी एक कुरसी पर बैठने का इशारा किया। ग़लती से टॉम साहब टूटी हुई कुरसी पर जा बैठे। उनके बैठते ही कुरसी उलट गई और वे सर के बल गिरे। मिस्टर पीटर ने उनको किसी तरह टूटी कुरसी से निकाला। टॉम साहब ने बड़ी बेतकल्लुफ़ी से माफ़ी माँगी और बिछे हुए तख़्त पर बैठ गए।

खाना खिलाने के बाद मिस्टर पीटर ने टॉम साहब से आराम करने के लिए कहा और सुबह बात-चीत करने को

कह कर अन्दर चले गए। इधर टॉम साहब तख़्त पर लेटे और लेटते ही ज़रा देर में खर्राटे भरने लगे। बेचारे शायद घण्टे भर ही सो पाए होंगे, कि खटमलों से परेशान हो कर उठ बैठे और तख़्त छोड़ कर खड़े हो गए। खड़े होते ही उनकी नज़र चमकती हुई दो आँखों पर पड़ी। उनको क्या मालूम, कि मौसी बिल्ली चूहों पर ताक लगाए बैठी हैं। नज़र पड़ते ही उनको कँपकँपी आ गई और यकायक उनके मुँह से चीख निकल गई। इधर मिसेज़ पीटर ने जो चीख सुनी, तो वे पीटर साहब को जगा कर बोलीं......"जल्दी उठो, मिस्टर टॉम के कमरे में चोर घुस आया है, मैं बड़ी देर से खट-पट सुन रही हूँ, और अभी-अभी वह चिल्लाए भी हैं। इतना सुनते ही पीटर साहब डण्डा ले कर उस कमरे में पहुँचे। दरवाज़ा खुलते ही बिल्ली उछल कर टॉम साहब के पास से भाग गई। उसके भागते ही टॉम साहब और ज़ोर से चिल्लाए—"वह भागा!"

इधर मिस्टर पीटर जैसे ही कमरे में घुसे वैसे ही टॉम साहब के टकराते ही मिस्टर पीटर ने चोर समझ के टॉम को कस कर एक डण्डा रसीद किया! टॉम साहब डण्डा खाते ही सड़क की तरफ़ का दरवाज़ा खोल कर भाग खड़े हुए और ऐसा भागे कि सीधे स्टेशन जा कर साँस ली। जब स्टेशन पहुँचे, तो उनका बुरा हाल था। वहाँ पहुँच कर उन्होंने क़सम खाई कि अब कभी गाँव में शादी करने का नाम नहीं लूँगा।

चिढ़

मुझे पान से बेहद चिढ़ है। आप भले ही चाव से पान खाते हों; परन्तु वह मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं आता। कोई ऐसी बात नहीं है, कि वह मुझे खाने में ख़राब लगता हो; परन्तु पान खाया किस तरह जाता है, यह मैं नहीं जानता। पान खाया नहीं, कि बच्चों की लार की तरह लाल-लाल मुँह से चू पड़ता है। गालों पर ख़ून-सा बहने लगता है, और कत्थे के दाग़ कपड़ों पर साफ़ नज़र आने लगते हैं। मैंने बहुत कोशिश की, कि पान खाना मुझे आ जाय, परन्तु आज तक यह कला मैं न सीख सका।

मैं सोचता था, अगर आज नहीं, तो कल मैं ज़रूर पान खाना सीख जाऊँगा। इसी आशा से मैं निरन्तर कोशिशें करता रहा। दोस्त उल्लू बनाते, कहते—"देखना भाई, ज़रा गनेश को, कैसा अच्छा मुँह बनाया है!" यह कह कर वे ठहाका मार कर हँस देते। मैं क्या करता, चुपचाप झेंप मिटाने खड़ा रह जाता। मुझे समझते देर न लगती, कि पान मुँह से चू पड़ा है। इस

कला के पीछे मैं इस क़द्र पड़ा, कि एक दिन यों ही बैठे-बैठे क़सम खा ली; कि बिना इसे सीखे दम नहीं लेंगे; चाहे लोग हमें कितना ही क्यों न बनाया करें !

इस के रिहर्सल के लिए हमने रात का वक़्त ज्यादा अच्छा समझा। एक दिन रात को खा कर सो रहे। सवेरे उठते ही श्रीमती जी मुझे देख खिलखिला कर हँस पड़ीं। मैं सोच रहा था, अजीब औरत है ! सो कर उठा नहीं, और इसने हँसना शुरू कर दिया; और वह भी मुझे देख कर। बाहर दोस्त बनाया करते हैं, और घर में यह मुझसे उलझी रहती हैं। गोया सारा दिन ही बनते कटता है। आफ़त है—दोनों तरफ़ दुधारे हैं ! इस ओर कुआँ है, उस ओर खाई है ! क्या बताऊँ, मुझे उस वक़्त उनके हँसने पर बड़ा ग़ुस्सा आया; दिल में आया; कि पकड़ के झोंटा पटक दूँ यहीं पर: परन्तु यह सोच कर, कि ऐसा करने से निर्जला एकादशी मनाना पड़ेगी, ग़ुस्से को पी गया। अभी मेरे सोने की ख़ुमारी भी दूर नहीं हुई थी; पर मुझे बनाने का उपक्रम जारी हो गया। भगवान् ख़ैर करे, पूरा दिन कैसे कटेगा ?

इस समय मैं वहीं पर खड़ा-खड़ा सोच रहा था, कि कहीं रात-भर में भगवान् ने मेरा स्वरूप तो नहीं बदल दिया। कान की जगह नाक और मुँह की जगह सिर तो नहीं हो गया ! मैंने टटोल कर ब.ख़ूबी देखा, तो वे अपनी-अपनी जगह पर

सही-सलामत थे। मेरा टटोलना देख कर उनके हँसने की स्पीड और तेज़ हो गई! मैं बड़ी हैरत में पड़ा! आख़िर मुझे हो क्या गया है, जो श्रीमती जी इतनी ज़ोरों से मेल ट्रेन की तरह, बिना रुके ही, हँसती चली जा रही हैं। मैं बोला तो ज़रा भी नहीं, क्योंकि मेरी समझ में कुछ आ ही नहीं रहा था, कि आख़िर बात क्या हो सकती है? मैं ग़ौर से उनकी तरफ़ घूर ज़रूर रहा था। श्रीमती जी वहाँ से भाग निकलीं। मैंने जी-भर कर साँस ली। मैं बड़ा ख़ुश हुआ, कि चलो छुट्टी मिली। परन्तु एक ही मिनिट बाद मैं देखता हूँ, कि वे आइना लिए चली आ रही हैं। बहुत झल्लाया। वे पहुँचते ही बोलीं—"ज़रा अपनी सूरत तो देखिए आइने में।" मैंने आइना उनके हाथ से छुड़ा लिया और ग़ौर से देखने लगा उसमें अपनी सूरत। मुझे ऐसा लगा, जैसे आइने में किसी और की सूरत हो परन्तु वह किसी और की हो कैसे सकती थी, जब मैं ख़ुद देख रहा था। वह तो मेरी ही होनी चाहिए। मेरी सूरत पर उस वक़्त मैंने देखा, कि गालों के सपाट मैदान में चाइनीज़ लेटरों की शक्लें बनी हुई थीं। कहीं से नदी निकली थी और कहीं जाकर गिर गई थी। अजीब सूरत बनी हुई थी। ऐसा लगता था, मानों किसी रीछ ने सारा मुँह अपने पञ्जे से खँरोच लिया हो! यह सब पान की कृपा थी। सोते समय यहाँ-वहाँ बह गया था। अब मेरी मोटी अक़्ल में अच्छी तरह आ रहा था, कि श्रीमती जी उठते ही क्यों हँस पड़ी थीं। मुझे भी हँसी आए बिना

न रही, और श्रीमतीजी ने दिल खोल कर मेरा साथ दिया, क्योंकि ऐसी बातों में उनका मन ख़ूब लगता है।

तब से पान से मुझे बेहद चिढ़ है, या यूँ कहिए, कि हो गई है। पाँच रुपए की शीरनी बाँट कर मैंने अपनी क़सम वापस ले ली है; और उस दिन से तो दिमाग़ में यही रहता है, कि पान कभी नहीं खाएँगे, और जहाँ तक बनेगा, उससे दूर रहेंगे ! आजकल मैं अपने दोस्तों के यहाँ भी कम बैठने-उठने लगा हूँ, क्योंकि डर लगता है, कहीं पान खाने को न कह दें, और मुझे बेकार बनना पड़े। वजह यह, कि दोस्तों के सामने 'नहीं' तो चलती नहीं। बाज़ार जाता हूँ, अगर कहीं पान की दूकान नज़र आ गई, तो देह में सिहरन-सी पैदा हो जाती है, और देखने लग जाता हूँ अपने चारों ओर, कि कहीं कोई पहिचान का तो नहीं है। क्योंकि जान-पहिचान वाले अक्सर कहने लग जाते हैं—"आइए, पान खा लीजिए तब चलेंगे।" और अगर कभी किसी ने बुलाया, तो वहाँ से ऐसा सरक जाता हूँ, जैसे सुना ही न हो।

दुनिया में मैं आज अनुभव कर सका हूँ, कि जिस बात से घृणा करो, वही सामने टाँग पसारे पड़ी नज़र आती है। मैं जितना ही पान से घृणा करता हूँ, उतना ही मुझे घेरे रहता है। मैं चिढ़ कर कभी-कभी तो भगवान् को भी कोस बैठता हूँ, कि उसने पान ऐसी चीज़ बनाई क्यों ?

एक दिन की बात है। मैं अपना सफ़ेद सूट पहिने साइकिल पर चौक-बाज़ार से गुज़र रहा था। मेरे आगे-आगे एक ताँगा जा रहा था। उस पर एक 'बटरफ़्लाई', क़रीब उन्नीस-बीस साल की रही होगी, बैठी थी। कत्थई रंग की साड़ी, गौर वर्ण, सोने की इयरिंग पहने, मुँह पर पाउडर लगाए, छल्लेदार बाल बनाए, चमकीला चुस्त ब्लाउज़ पहने थी, और उसके उन्नत उरोज उसकी ख़ूबसूरती को दूना बढ़ा रहे थे। मैं तो फिसल पड़ा! एक टक देखने लग गया, उसकी ओर। भगवान् जाने, मेरी सूरत से उसे क्यों नफ़रत-सी हो गई, कि मेरा देखना उसे बिलकुल ही अच्छा नहीं लगा। उसने तुरन्त ही मेरी तरफ़ से अपना मुँह फेर लिया। मुँह फेरते वक़्त मैंने बख़ूबी देखा, उसका दाहिना गाल सूजा हुआ था।

मैं उसे देखने में इतना तल्लीन हो गया था, कि हज़ार कोशिशें करने पर भी मैं साइकिल ताँगे से आगे नहीं बढ़ा सका। एक मरतबा तो साइकिल ताँगे से चिपटते-चिपटते बची। मैंने अचानक उस लड़की को अपनी तरफ़ गर्दन मोड़ते देखा, और जैसे उस बे-शऊर को कुछ दीखा ही न हो, पच्च् से उसने मेरी तरफ़ थूक दिया। उसके थूक का माल-मसाला ठीक मेरे मुँह पर आ कर पड़ा! ईश्वर जाने, कि उस बदतमीज़ ने यह कुकर्म जान-बूझ कर किया था, या उसे सचमुच धोखा हुआ था। मेरे ऊपर थूक पड़ता देख, वह घबरा गई! ताँगा खड़ा हो गया। उतरते ही बोली—"I am extremely sorry." इधर

मैं हृदय के आन्तरिक पट से खीझ रहा था। यह भी अजब शिष्टाचार है। किसी को मार दो, और कह दो 'Sorry'; बस उसका क़ुसूर माफ़ हो गया।

"माफ़ कीजिएगा, मैं देख नहीं सकी, बड़ी ग़लती हुई!"— कहते हुए उसने अपने ब्लाउज़ के परत से एक क़ीमती सेण्टेड रूमाल निकाला और मेरे मुँह का थूक पोंछ दिया। उसके चेहरे से मालूम हो रहा था, कि वह बहुत डर गई थी, कि कहीं मैं उसके ऊपर बिगड़ न पड़ूँ। क्योंकि किसी के ऊपर थूक देना मामूली बखेड़ा नहीं है।

मैं बोला तो कुछ नहीं, एकटक उसकी तरफ़ देखता रह गया। वह सहम गई। मुझे ग़ुस्सा कम तो नहीं आया; परन्तु क्या बताऊँ? मैं एक स्त्री से सरे-बाज़ार उलझना भी नहीं चाहता था, फिर जब वह मेरी ओर विनयपूर्ण कातर दृष्टि से देख रही थी। उस 'बटरफ़्लाई' की जगह अगर कोई आदमी होता, तो फिर समझ लीजिए, मैं उसका क्या करता? बच्चू को वहीं उठा के पटक देता! इतना तो मैं सब अपने जी में सोच रहा था; पर मुझे इसका ख़्याल ही न रहा, कि जिन लोगों ने उस स्त्री की बेजा हरकत देख ली थी, मेरे आस-पास खड़े हो कर मेरी खिल्ली उड़ा रहे थे। चौक बाज़ार था; काफ़ी भीड़ थी। मैं शर्म से सिर नहीं उठा सका, आप अनुमान लगा सकते हैं, कि मेरी उस समय क्या हालत रही होगी!

ख़ैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। मैंने उसे माफ़ कर दिया, महज़ उसके सरल स्वभाव और उसकी सुन्दरता के कारण। वरना मैं भी बड़ा टेढ़ा आदमी हूँ। अगर किसी से उलझ गया, तो फिर शर्म को बालाए-ताक़ रख देता हूँ।

हाँ, तो मैं उसका ताँगा छोड़ साइकिल पर चढ़ झेंप मिटाने के लिए छू हो गया। चलते वक़्त मैंने सुना—"माफ़ कीजिएगा!" मैं सुनी-अनसुनी करके आगे बढ़ गया। लौट कर देखने की भी हिम्मत न कर सका। अब मुझे याद आ रहा था, कि जब पहले-पहल मैंने उसको ताँगे पर देखा था, उसका गाल सूजा हुआ न था, बल्कि उसमें पान दबा था, और अधरों पर लिपस्टिक नहीं, वरन पान की लाली थी। जो कुछ भी हो, उसका मेरे साथ जैसा भी बर्ताव रहा हो, मुझको वह बुरी नहीं लगी। हाँ, एक बात थी, अगर वह थूक पान मिश्रित न होता, तो मैं न बिगड़ता; परन्तु उसमें तो मुझे चिढ़ पैदा करने वाली चीज़ थी।

चौक से मैं बिल्ली की तरह दुम दबाए साइकिल पर भाग कर घर आया। मेरी श्रीमती जी मुझे दरवाज़े पर ही मिलीं। मैंने पहुँचते ही अपना क़िस्सा सुनाना शुरू कर दिया। मुझे तो सेण्ट-परसेण्ट उम्मीद थी, कि वे इन वाक़यात को सुन कर हँसेंगी; परन्तु उनके शब्दों में आज सहानुभूति थी, वे मेरा साथ दे रही थीं; मेरे पक्ष में बोल रही थीं; यह मेरे लिए एक बड़े ताज्जुब की बात थी! वह एक दम तमक कर बोल उठीं—

"कौन थी वह कलमुहीं ? बताना तो मुझे कभी, हरामजादी का मुँह न नोच लिया, तो कहना। कौन बेहूदी थी वह, जिसने ऐसी बेजा हरक़त आपसे की ?"

मैंने कहा—"जाने भी दो, अब बातें करने से क्या ? मैं तो उसे पहचानता नहीं, और फिर वह ऐसी लग रही थी, जैसे इस शहर की थी नहीं, क्योंकि सारा शहर तो मेरा जाना हुआ है।"

"तभी तो उसने ऐसा किया; परन्तु तुम उससे डर क्यों गए, उसकी ज़बान खींच लेनी थी। तुम भी बड़े डरपोक आदमी हो!"

"जी, तो मैं चौक घूमने गया था। सरे-बाज़ार झगड़ा मोल लेने नहीं !"

"क्या ख़ूब ! अगर कहीं घर की औरत ऐसा कर डालती, तो न मालूम क्या करते ?"

"जाने भी दो !"—कह कर बातों का सिलसिला मैंने यहीं तोड़ दिया, और आगे वह भी न बोलीं। वह फिर जैसे सोते से जाग पड़ीं; बोली—"आज मेरी छोटी बहिन आई हुई हैं।"

मैंने पूछा—"कब ?"

"आज ही और अभी पन्द्रह मिनिट पहिले।"

"वे हैं कहाँ ?"

"अन्दर कमरे में।"

हम लोग इसी तरह बात कर रहे थे, कि अन्दर से मेरी साली साहेबा; याने वही 'बेशऊर' महिला, जिसने मेरे चेहरे पर थूका था, कमरे से निकल कर मेरी तरफ़ चली आ रही थीं। हम लोग दालान में खड़े थे। मुझे देखते ही वह ठिठक गईं; कुछ झेंप-सी गईं। मैं समझ गया, उन्हें वही चौक बाज़ार वाली दुर्घटना याद आ गई है। यहाँ मैंने जीवट से काम लिया। आगे बढ़ के उन्हें 'नमस्ते' की। उन्होंने बहुत शर्माते हुए जवाब दिया। मैंने चुपके से अपनी श्रीमती जी के कान में कह दिया—"यही वह कलमुहीं है, जिसने मेरे ऊपर......!"

"ठीक से सूरत याद है, कि नहीं; भूल करते होंगे! आप की साली आपके साथ ऐसा नहीं कर सकती।" वह भी मेरे कान में ही बोलीं।

"मुझे अच्छी तरह याद है। मैं भूल नहीं करता। ये ही वह महोदया हैं।"

अब तो क्या कहना था। श्रीमती जी इतने ज़ोरों से हँसीं, कि हमें उनके अचानक बर्स्ट होने पर झेंपना ही पड़ा! मैंने कनखियों से देखा, उनकी बहिन भी मुस्कुरा रही थीं, क्योंकि उनके दिमाग़ में भी मामले की सूझ ठीक बैठी थी। मैं तो जल कर भुट्टा हुआ जा रहा था इन दोनों की हँसी और मुस्कुराहट पर। भगवान् जाने ये औरतें क्या बला होती हैं! अगर इन्हें मैं 'बम का मुहारा' कह दूँ, तो ज़रा भी अतिशयोक्ति नहीं है; क्योंकि जिस क़दर बम लगातार फूट सकता है, ये लगातार

बोलती रह सकती हैं। इसी दिन से मैंने प्रतिज्ञा कर ली है, कि अपने बेवक़ूफ़ बनने की बात कभी न बताया करूँगा। उनको तो अपनी ख़ुशक़िस्मती समझना चाहिए, कि मैं अपने बनने की बातें बता दिया करता था। नहीं तो भला कौन उल्लू होगा, कि जो अपनी तौहीनी इस तरह स्वयं बयान करे। फिर उन्हें अगर हँसना ही है, तो हमारे पीठ पीछे हँसें, हमारे सामने क्यों ?

हमारी साली साहेबा के आ जाने से घर ज़रा ज्यादा रौशन हो गया है। हँसी के फ़व्वारे छूटते ही रहते हैं। एक कहावत है—'दो मुल्लाओं के बीच मुर्ग़ी हराम।' वही हाल हू-बहू मेरा हुआ करता है। फिर मैं भी नहीं चूकता, जहाँ तक बनता है अपनी मुर्ग़ी की एक ही टाँग पेश किया करता हूँ। फिर है भी तो वकीली दिमाग़ !

आप सबको ताज्जुब होगा, कि जब मेरी साली साहेबा मुझे बाज़ार में शुरू-शुरू ताँगे पर मिलीं, मैं उन्हें एक दम पहिचान क्यों न गया ? उसका सिर्फ़ एक सबब था। वह यह, कि जब मेरी और श्रीमती जी की शादी हो रही थी। अथवा यों कहिए, कि मेरी बरबादी का संस्कार सम्पन्न हो रहा था, साली साहेबा घर पर थीं ही नहीं। वे उस समय मेट्रीक्यूलेशन की परीक्षा में फँसी हुई थीं, जिससे उन्हें अवकाश ही न मिला कि हमारा गठ-बन्धन देख सकतीं !

फिर जब मैं गया, तब वे न मिलीं, और वे रहीं, तो मैं न गया। बाद मुद्दत के 'इन्ट्रोडक्शन' हुआ, वह भी बहुत भद्दे तरीक़े से !

साली साहेबा को मालूम हो गया कि मैं पान नहीं खाया करता। फिर क्या है, वह अक्सर मेरे सामने तश्तरी में पान ले आया करती हैं। मैं तो बौखला जाता हूँ, इनके इस दुस्साहस को देख कर, परन्तु क्या कहूँ, मेहमान जो हैं, फिर रिश्ता भी तो बड़ा ज़बरदस्त है, जिसके आगे मैं चूँ तक नहीं कर सकता ! मैं भी मुस्कुरा के रह जाता हूँ, और वह भी मेरे आगे आँखें नचाते हँसती हुई भाग जाती हैं। चिढ़ भी मधुर हो सकती है, अगर चिढ़ाने वाली साली की तरह हो, या ऐसी ही कुछ !!

कॉलेज का स्वप्न

"यार कुन्दन, कोई कहानी सुनाओ। आज प्रोफ़ेसर चैटर्जी नहीं आए हैं।"—सुरेन्द्र ने कहा।

"यार, तुम भी क्या बच्चों की-सी बातें करते हो! क्या तुम्हारा 'नानी की कहानी' का शौक़ अभी तक नहीं गया? चलो, लाइब्रेरी चल कर कुछ पढ़ें।"—कुमार ने कहा।

"अरे बैठा रह! बड़ा आया है लाइब्रेरी वाला! जब देखो तब पढ़ना! ज़रा जल्दी कहानी शुरू करो, व्यर्थ समय नष्ट करने से फ़ायदा?"—सुरेन्द्र ने तपाक से कहा।

"ठीक है, ठीक है, कोई मज़ेदार कहानी होनी चाहिए।"—गुप्ता ने कहा।

"बड़े आए हैं कहानी सुनने वाले!"—कुमार ने कहा।

"तुमको सुनना हो तो सुनो, वरना रास्ता नापो!"—सुरेन्द्र ने ज़रा हाथ चमकाते हुए कहा।

"अच्छा, अच्छा,, इसमें लड़ने की कौन-सी बात है ? चलो टॉस कर लें ! बोलो कुमार—हेड लोगे या टेल ?"—कुन्दन बोला।

"हेड !"—कुमार ने कहा।

"देखो, देखो, टेल है ! अब कहानी ही होनी चाहिए, इसको सुनना हो सुने, वरना लाइब्रेरी जा कर भाड़ झोंके !"—सुरेन्द्र ने कहा।

कुन्दन ने गला साफ़ करते हुए कहना शुरू किया—"आज मैं तुम लोगों को एक ऐसी कहानी सुनाऊँगा, जैसी तुम लोग रोज़ कॉलेज में देखते और सुनते हो। यहाँ पर तुमको कई ऐसे मन-चले लड़के मिलेंगे, जो पढ़ते नहीं, बल्कि....."

"अरे, कहानी कहेगा, कि भूमिका ही बाँधेगा ?"—सुरेन्द्र बीच ही में बोल उठा।

"दोस्त, आजकल कुछ कहने के पहले भूमिका बाँधने की जरूरत पड़ती है। तुम जानते नहीं, आजकल सभी बड़े-बड़े लोग कहेंगे थोड़ा, और भूमिका बाँधेंगे लम्बी।"—कुन्दन ने कहा।

"अरे भाई ! अभी तुम्हारी भूमिका खतम भी हुई, कि नहीं ?"—सुरेन्द्र ने कहा।

सुन्दर ने अपनी कहानी शुरू की—"कुछ दिन पहले की बात है, कि :

" 'मिस्टर, रूम नम्बर २८ कहाँ है ?'

" 'ऊपर ही तो है। चलिए, मैं भी वहीं जा रहा हूँ।'

" 'तो क्या आप भी फ़र्स्ट ईयर बायालॉजी में पढ़ते हैं?'

" 'लोग तो ऐसा ही कहते हैं।'

" 'मैं भी उसी में पढ़ती हूँ।'

" 'मैं जानता हूँ।'

" 'कैसे?'

" 'कल पहले-पहल मैंने आपको क्लास में देखा था।'

" 'मगर मैंने तो आपको नहीं देखा था।'

" 'हाँ, हो सकता है, मैं पीछे बैठा होऊँ।'

" 'क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ?'

" 'ज़रूर, ज़रूर! मेरा नाम हरिश्चन्द्र है। और आपका?'

" 'लोग मुझे कुमुद कहते हैं। क्या आप इंगलिश की किताब लाए हैं?'

" 'कौन सी?'

" 'पोइट्री की।'

" 'हाँ, हाँ।'

" 'तो मैं आप ही के पास बैठूँगी।'

" 'जैसी आपकी मर्ज़ी।'

"इतने में क्लास आ गया। दोनों एक ही जगह अगल-बग़ल बैठ कर इधर-उधर की बातें करने लगे। क्लास के और विद्यार्थियों की नज़र इन्हीं की तरफ़ थी। कुछ मनचले लड़के तो रह-रह कर इनकी ओर संकेत करके कुछ आवाज़ें भी

कस देते थे। मगर हम दोनों ने उसकी कुछ परवाह नहीं की। कुछ देर के बाद प्रोफ़ेसर साहब आए और हाज़िरी ले कर पढ़ाना शुरू कर दिया। उधर तो प्रोफ़ेसर साहब पढ़ा रहे थे, और इधर हरिश्चन्द्र डेस्क पर सर रख कर सो गया और स्वप्न-संसार की यात्रा करने लगा।"

❀ ❀ ❀

"वह कॉलेज से घर की ओर फ़ुल स्पीड से साइकिल पर आ रहा था। रास्ते में उसकी साइकिल एक लड़की की साइकिल से टकरा गई। दोनों सड़क पर गिर पड़े, पर चोट किसीको नहीं आई, मगर लड़की की साइकिल में पञ्चर हो गया। दोनों उठे और साइकिल ले कर पैदल ही चल पड़े, और बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया :

" 'आप पढ़ते हैं ?'

" 'जी !'

" 'कौन क्लास में ?'

" 'फ़िफ्थ इयर में ?'

" 'आपका शुभनाम ?'

" 'हरिश्चन्द्र'

" 'नाम तो अच्छा है।'

" 'क्यों ? आपको पसन्द है ?'

" 'कुछ-कुछ !'

" 'मगर आपने परिचय तो दिया ही नहीं।'

"'यह तो बताइए, कि आप मेरा परिचय किस लिए चाहते हैं ?'

"'जिस लिए आप ने चाहा।'

"'फिर भी।'

"'तो आप अपना परिचय देती हैं या मैं आगे बढ़ूँ।'—कह कर हरिश्चन्द्र ने साइकिल आगे बढ़ा दी।

"'सुनिए, सुनिए!'

"'मुझे बुला रही हैं?'

"'जी हाँ!'

"'क्यों?'

"'क्या आप मेरा परिचय नहीं सुनिएगा?'

"'मगर आप बतलाएँ, तब तो।'

"'मेरा नाम कुमुद है और मैं दसवीं कक्षा में पढ़ती हूँ, मेरा मकान कमच्छा के पास ही है।'

"'मैं आप के मकान का पता नहीं पूछ रहा हूँ।'

"'फिर भी सुन लीजिए, मैं तो बता रही हूँ।'

"'आखिर, इससे फ़ायदा।'

"'शायद आप कभी रास्ता भूल कर उधर आ जाएँ।'

"'ज़रूर-ज़रूर! अच्छा, अब मैं घर चलता हूँ आप इसी रास्ते से पैदल ही कमच्छा चली जाइए, थोड़ी ही दूर तो है।'—यह कह कर वह साइकिल पर चढ़ने लगा।

" 'अरे, आप सचमुच जा रहे हैं ? मुझे अकेले ही जाना होगा, ज़रा घर तक संग चलिए न; आज आप मेरी मदद करिएगा, कल मैं आपकी मदद करूँगी ।'

"वह साइकिल से उतर पड़ा और कहने लगा—'मेरी एक बात मानिए, आज आप घर जा कर पिता जी से कह कर एक नौकर रख लीजिए, जो रोज़ आपको आराम से कॉलेज से घर और घर से कॉलेज पहुँचा दिया करे ।'

" 'फ़िज़ूल पैसा ख़राब करने से क्या फ़ायदा ? आप जो हैं !'—कुमुद ने मुस्कुराते हुए व्यंग्य से कहा ।

" 'तो क्या आप मुझे अपना नौकर समझती हैं ?'

" 'अररर ! आपको नौकर कौन कहता है ? अगर आप घर पहुँचाने से नौकर हो जायँगे, तो रहने दीजिए, मैं स्वयं चली जाऊँगी, ज़रा साइकिल पञ्चर हो गई थी, इसलिए मैंने आपसे कहा ।'

" 'नहीं, नहीं मैं तो मज़ाक़ कर रहा था । चलिए पहुँचा दूँ ।'

" 'नहीं, नहीं, नौकर बनने की कोई ज़रुरत नहीं, मैं चली जाऊँगी ।'

" 'अगर आपको चलना हो तो चलिए वरना...।'

" 'वरना क्या ? अच्छा चलिए ।'

" 'तो आप एम० ए० में पढ़ते हैं, क्यों ?'

" 'यह तो मैं पहले ही आपको बता चुका हूँ ।'

" 'आपकी अंगरेज़ी कैसी है ?'

" 'क्यों ? क्या आप मेरी परीक्षा लेना चाहती हैं ?'

" 'मैं आपकी परीक्षा क्या लूँगी ? क्या आप अपना कुछ समय मुझे अंगरेज़ी पढ़ाने में देंगे ? मैं इसमें बहुत कमज़ोर हूँ ?'

" 'यह बात तो आप पहले भी कह सकती थीं, आख़िर इतना तूल बाँधने से फ़ायदा ? आपकी परीक्षा कब से है ?'

" 'मेरी परीक्षा २६ मार्च से शुरू होगी, तो जितनी जल्दी हो सके, पढ़ाना शुरू कर दीजिए।'

" 'कल से मैं कॉलेज से सीधा आप ही के यहाँ आऊँगा और आपको पढ़ा कर तब घर जाऊँगा, लेकिन आपका मकान कितनी दूर है ?'

" 'वह देखिए, पेड़ के सामने वाला ऊँचा मकान !'

" 'अच्छा, तो मैं अब घर चलूँ, अब आपका मकान आ गया।'

" 'अगर आप आज घर देरी से पहुँचिएगा, तो कोई हर्ज होगा ? चाय पी कर जाइएगा।'

" 'नहीं, मैं चलता हूं।'—कह कर उसने नमस्ते की और चल पड़ा।'

❀ ❀ ❀

" 'दोनों की दोस्ती दिनों-दिन बढ़ती ही गई, यहाँ तक, कि दोनों अधिक समय तक अलग नहीं रह सकते थे; और कुमुद के पिता ने भी उनके मिलने-जुलने में बाधा नहीं दी। उन्हें

हरीश बहुत अच्छा लड़का प्रतीत हुआ। उसके स्वभाव तथा सुन्दरता ने इनको उसकी ओर अधिक आकर्षित किया। उनका विचार तो एक दिन अपनी इकलौती पुत्री, कुमुद, का ब्याह हरीश के साथ करने का था।

"एक दिन कुमुद के पिता ने हरीश से कहा—'बेटा हरीश! एक बात कहूँ?'

" 'कहिए।'

" 'मेरी हार्दिक इच्छा यह है, कि तुम्हारी शादी कुमुद के साथ कर दूँ। तुमने इसको देखा ही है और यह भी जानते हो, कि वह तुम्हें कितना चाहती है। तुम्हारा भी उस पर काफ़ी अनुराग है। यही सब देख कर मैंने तुमसे कहने का साहस किया। आशा है, कि तुम इस प्रार्थना को स्वीकार करोगे।'

" '..........'

" 'चुप क्यों हो गए बेटा? इस तरह चुप रहने से काम नहीं चलेगा।'

" 'मैं सोच रहा हूँ, कि यदि आप यह बात पिता जी से कहें, तो ज्यादा अच्छा हो?'

" 'हाँ, तुम्हारा कहना तो ठीक है, मगर वह मानते नहीं।'

" 'कैसे?'

" 'मैंने उनसे परसों बात-चीत की थी। मैं सोचता हूँ, कि तुम्हारे ऐसे पढ़े-लिखे लड़कों को लकीर का फ़क़ीर नहीं होना चाहिए।'

" 'आपका मतलब ?'

"यही, कि तुमको अपने पैरों पर ख़ुद खड़ा होना चाहिए, शादी तुमको करनी है, न कि तुम्हारे पिता जी को।'

" 'जैसी आपकी मर्ज़ी।'

*　　　*　　　*

" 'कुमुद, मिठाई खिलाओ। हाँ, ज़रा जल्दी करो, मुझे कई जगह जाना है।'

" 'तो पहले वहीं हो आइए। जब देखो तब जल्दी, लेकिन आप मिठाई किस बात की मांग रहे हैं?'

" 'तुम्हें खिलानी हो, तो खिलाओ, वरना मैं जाऊँ।'

" 'लेकिन मिठाई क्यों खिलाऊँ ?'

" 'पहली बात यह, कि तुम पास हुई हो।'

" 'सच ?'

" 'नहीं झूठ, मैंने तो झूठ बोलने का ठेका ले लिया है, क्यों ?'

" 'लेकिन मिठाई तो आपको खिलानी चाहिए क्योंकि यह आप ही के परिश्रम का फल है। अगर आप अंगरेज़ी न पढ़ाते, तो मैं सात जन्म में भी पास न होती।'

" 'मैं तुम्हारी बातों में आने वाला नहीं हूँ, जल्दी मिठाई खिलाओ।'

" 'अच्छा, पहले दूसरी बात तो बताइए, तब मिठाई खिलाऊँगी।'

" 'मिठाई आने पर दूसरी बात बताई जाएगी।'

"वह मिठाई लेने चली गई तथा थोड़ी देर के बाद एक प्लेट में थोड़ी मिठाई ला कर बोली—'अब दूसरी बात बताइए।'

" 'दूसरी बात यह, कि परसों मेरा तिलक है।'

" 'क्या मुझे दावत न दीजिएगा ?'

" 'अरे, क्या लड़के वाले कहीं लड़की वालों को दावत देते हैं ?'

" 'यह आप क्या गोरख-धन्धे की बातें कर रहे हैं ?'

" 'अच्छा, सुनो, मेरे पिता जी मान गए हैं, और मेरी शादी तुम्हारे साथ ठीक हो गई है, जो आज से २० दिन के बाद हो जाएगी।'

" 'आप के पिता जी मान गए !'—कहते हुए उसने एक रसगुल्ला उसके मुँह में डाल दिया।'

* * *

लड़कों ने अखबार में पढ़ा, कि उनके दोस्त हरिश्चन्द्र की शादी कुमारी कुमुद के साथ हो गई। अब क्या था, हरिश्चन्द्र के कॉलेज आने पर सब लगे उसको बधाई देने। बेचारा बधाइयाँ सुनते सुनते थक गया और नींद में ही चिल्ला उठा—'अब भागते हो, या मार खाओगे।' प्रोफ़ेसर साहब ने समझा, शायद यह मुझे ही कह रहा है, क्योंकि सब लड़के

उनकी तरफ़ देख कर हँस रहे थे। उन्होंने ग़ुस्से में कहा—'हरिश्चन्द्र क्या तुम होश में नहीं हो?'

"इतना सुन कर हरिश्चन्द्र चौंक उठा और आँख मलते-मलते बोला—'महाशय, मुझे अपनी करवाई पर सख्त अफ़सोस है, मैं नींद में बक रहा था।' कुछ ही मिनिटों के बाद घण्टा बजा और कुमुद तथा हरिश्चन्द्र क्लास से एक साथ बाहर चल पड़े। कुमुद ने कहा—'आपने जो कहा था, हटो यहाँ से, सिर मत खाओ। इसका मतलब?'

" 'कुछ नहीं, मैं स्वप्न देख रहा था, यों बक पड़ा।'—हरिश्चन्द्र ने कहा।

"कैसा स्वप्न? क्या मैं सुन सकती हूँ?'

" 'फिर कभी सुना दूँगा।'

" 'अब हम लोगों को घर चलना चाहिए। क्योंकि अब छुट्टी है।'—कुमुद ने कहा।

" 'आज छुट्टी क्यों है?'

" 'आज कॉलेज-डिबेट है, जिसका विषय सह-शिक्षा है।'

" 'मुझे आज पता लगा, कि फ़र्स्ट-इयर के लड़कों को 'फ़र्स्ट-इयर-फ़ूल' क्यों कहा जाता है। देखिए न, आज डिबेट है, और मुझे पता तक नहीं।'—हरिश्चन्द्र ने कहा।

" 'मुझे भी फ़र्स्ट इयर-फ़ूल पर अपना क़िस्सा याद आ गया।'

" 'क्या?'

" 'सुनिए, जब मैं कॉलेज में अपना ऐडमिशन कराने आई थी तब मेरे साथ सिर्फ़ मेरा नौकर ही था, मुझे मालूम नहीं था कि मुझे कहाँ-कहाँ जाना चाहिए, इसलिए दूसरी लड़कियों से पूछ-पूछ कर सब काम करती थी, अन्त में मैंने एक लड़की से प्रो-वाइस चान्सलर का कमरा पूछा, तो वह मुझे एक कमरे के सामने ले गई और उसी की तरफ़ इशारा करके चलती बनी। मेरा अन्दर जाना था, कि किसी ने अन्दर से दरवाज़ा बन्द कर दिया, मुझे बाद में मालूम हुआ, कि यह कॉलेज का स्टोर-रूम था। थोड़ी देर के बाद एक लड़की ने दरवाज़ा खोला, और सब लगीं चोर-चोर चिल्लाने, मैं चुप-चाप सुनती रही !' उसने हरिश्चन्द्र से कहा।

" 'मगर यह ग़लती आपकी थी, आपको कमरे के बाहर देख लेना था।'

" 'इसीलिए तो फ़र्स्ट-ईयर-फ़ूल मशहूर हैं। अगर मैं बोर्ड ही देख लेती, तो रोना किस बात का था। अच्छा चलिए, डिबेट सुनने, पाँच ही मिनिट बाक़ी हैं।'—कुमुद ने हरिश्चंद्र से कहा और दोनों डिबेट-हॉल की तरफ़ चल पड़े।"

दोस्तों, अब कहानी खतम हो गई और उधर घण्टा भी ख़तम हो गया, चलो: क्लास में चला जाय।"—कुन्दन ने कहा।

"भाई वाह ! तुमने तो कहानी सुनाने में कमाल कर दिया, इसकी ख़ुशी में मैं तुम्हें एक कप चाय पिला सकता हूँ।" —सुरेन्द्र ने कहा।

"हम लोगों को भी !"—सब लड़के एक साथ चिल्ला उठे।

" कुछ पढ़ना-वढ़ना भी है, कि केवल कहानी ही सुननी है, घर पर पिता जी सोचते होंगे, कि बेटा कॉलेज पढ़ने गया है; उन्हें क्या पता, कि यहाँ क्या होता है; चलो, चलें पढ़ने।" —कुन्दन ने कहा।

भाई, पहले आत्मा, पीछे परमात्मा, हम लोग चाय पी कर ही जायेंगे।"—गुप्ता ने कहा तथा सब लोग रेस्टूराँ की ओर चल पड़े। राजेन्द्र गुनगुनाने लगा :

सैर कर दुनिया की ग़ाफ़िल, ज़िन्दगानी फिर कहाँ ?
ज़िन्दगी गर कुछ रही, तो नौजवानी फिर कहाँ ??

हमारी आशिक़ी

कोई कहता है काम, क्रोध, मोह, और अहङ्कार से बचो; कोई कहता है, या ख़ुदा, अपने बन्दों को शैतान से पनाह दे! लेकिन भई, हम तो कहते हैं, कि अल्ला मियाँ हमारे-जैसे भोले आदमियों को चालाक दोस्तों से बचाए; क्योंकि बाक़ी बातों मे बचने के उपाय ज़रूर हैं, परन्तु इन दोस्तों से बचने के लिए जब तक 'अन्दरूनी रौशनी' न हो, कोई सूरत ही नहीं।

मिसाल के तौर पर हमारी 'आप-बीती' हाज़िर है। हमें तो यह बात ज़ाती तजरबे से ज़ाहिर हुई है—हमारा अपना एक्सपेरीमेंट है। अब भले ही हम यह कहने लगें, कि हमारी अक़्ल तरक़्क़ी करने लगी है, परन्तु दोस्तों से डरते हैं अभी तक, कि कम्बख़्त कहीं किसी नए पचड़े में न फँसा दें किसी रोज़!

बात यह हुई, कि हमारे पड़ोस में हमारी बदक़िस्मती से एक साहब कहीं से आ ठहरे। उन्होंने हमारे ही सामने वाला

मकान किराए पर ले लिया। एक वह थे और एक उनकी श्रीमती जी, बस दो ही मियाँ-बीबी थे। मियाँ तो जो थे, सो थे, पर बीबी पर प्रकृति भी तुष्ट हो कर रही थी। बड़ी ख़ूबसूरत, बड़ी रंगीन-मिज़ाज, हँसमुख और नटखट थी वह। खिड़की पर बैठी देख लेते, तो यही कहते, कि चाँद यहीं से निकला है! बड़ी-बड़ी कटीली, रसीली, मद-भरी आँखें, नोकदार पलकें, जी चाहता था, कि शहीद हो जाएँ, नयन-बाण खा कर ज़ख़्मी कर अपने आपको! लेकिन सच्ची बात तो यह है, कि हिम्मत ही नहीं पड़ी हमारी। हम अपने जीवन को, न तो फ़ालतू समझते थे और न श्रीचन्द दौनेरिया वाली स्वदेशी बीमा कम्पनी में हमने ज़िन्दगी का बीमा करवाया था, जो इस प्रकार जान देते! यह तो हमारे दोस्तों ने ज़बरदस्ती हमें अपनी पड़ौसिन का प्रेमी बना डाला।

हुआ यह, कि एक रोज़ घनश्यामदत्त, विद्यासागर, वेदव्यास, प्रेमसागर आदि बैठे थे, कि न मालूम घनश्याम को क्या सूझी, बोला—अरे भई! यह कौन साहब हैं?

वेदव्यास—कहाँ?

प्रेमसागर—अरे, वह देखो, सामने खिड़की पर!

वेदव्यास, प्रेमसागर, घनश्यामदत्त—सबने एक साथ देखा, मेरी भी निगाह उठ गई, वह मेरी नई पड़ौसिन ख़ूब बनी-ठनी खड़ी थीं।

वेदव्यास ने कहा—बड़ी शोख है।

घनश्याम बोले—रंगीन मिज़ाज मालूम पड़ती है।

प्रेमसागर ने फ़ब्ती कसी—बाल किस अदा से सँवारे हैं, और आँखें कैसी ग़ज़ब की हैं ज़ालिम की ?

विद्यासागर—देख भी रही है इसी तरफ़ !

हमने सबको डाँटते हुए कहा—अरे, यह तुम लोगों को हो क्या गया है, यह सब क्या बक रहे हो ? हमारे पड़ौस में एक नए साहब आए हैं, यह उन्हीं की बीबी हैं। तुम्हारी इस बकवास को सुन कर क्या ख़याल करेंगी, कि कैसे आवारा लोग इकट्ठे हुए हैं यहाँ !

घनश्यामदत्त ने हमारी ओर रुख करके कहा—भई, 'लाला' ! हुक्म हो, तो एक बात कह दूँ ?

इस पर सबके सब इस तरह बोल उठे, जैसे हमने अपने तमाम अधिकार इनको क़ानूनी तौर पर सौंप दिए हों—अजी, कहो भी, सब इजाज़त ही है।

हम हक्का-बक्का सबका मुँह ताकने लगे, क्या शुगूफ़ा छोड़ते हैं यार लोग !

घनश्याम ने एक अद्‌भुत मुखाकृति बना कर कहा—तुम लोग मानो या न मानो लेकिन मुझे विश्वास है, कि यह देवी जी, भई 'लाला' पर आशिक़ हैं, आशिक़ !

वेदव्यास—मेरा भी बिलकुल यही ख़याल है।

प्रेमसागर—ख़याल क्या ? असलीयत है जी, लाला भाई भी अच्छी तरह समझते हैं, यह और बात है, कि हम लोगों

से इनकार करें। अरे भई, सुना नहीं है, कि 'फूल रंग से और आदमी ढंग से पहचाना जाता है।' उसकी एक-एक अदा बता रही है, कि वह 'लाला जी' पर मरती है।

वेदव्यास—भई, 'लाला' के इन्कार मे क्या होता है? कभी इश्क़ और मुश्क भी छुपाए से छुप सकती है?

विद्यासागर—और फिर हम लोगों से?

हम झुँझला कर बोले—तुम सबके सब हो सिड़ी। एक शरीफ़ औरत की इस प्रकार हँसी उड़ा रहे हो। यह कहते हुए हम उठ खड़े हुए। वह भी सब उठे और इस प्रकार यह महफ़िल बरखास्त हुई!

२

अब ज़रा हमारी बद-बख़्ती देखिए, कि हमने इन सबको तो डाँट-डपट कर भगा दिया, लेकिन उनकी बातों को दिमाग़ से न भगा सके; हम बराबर सोचते रहे, कि घनश्याम ने जो कुछ कहा वह केवल हँसी-मज़ाक़ ही था या इसमें कुछ रहस्य भी है? अकेला घनश्याम ही नहीं, प्रेम, वेद, सागर—सभी भला एक-मत कैसे हो सकते थे, कि वह हम पर आशिक़ है?

मान लिया, वह सब चालाक और गप्पी हैं, लेकिन इसका क्या मतलब है, कि हम जब बैठक में बैठते हैं, तो वह खिड़की में आ बैठती है और बराबर हमारी तरफ़ देखती रहती है? और लो, ख़ूब याद आया! उस दिन हमारी ओर देख कर

मुस्कुरा भी पड़ी थी, वह एक रोज़ हमारे घर भी तो आई थी और हँस कर हमें नमस्कार किया था, इन सारी बातों से भी तो यही मालूम पड़ता है, कि वह हम पर जरूर आशिक़ है! हमने ख़याल भी नहीं किया, और घनश्याम वग़ैरह ने इस बात को एक ही नज़र में ताड़ लिया। बड़े काइयाँ हैं ये लोग?

अब आप चाहे इसे हमारी मर्दुम-शनासी का फ़ितूर समझें या हमारे दिमाग़ की ख़राबी कहें अथवा मनोविज्ञान का विकार क़रार दें, पर हमें कोई सन्देह नहीं रहा, कि हमारी चन्द्रमुख और मृगनयनी पड़ोसिन हम पर आशिक़ हो गई है, इस लिए हम यह सोचने लगे, कि एक हसीना आशिक़ से हमें कैसा व्यवहार और बर्ताव करना चाहिए? यह तो ईमान्दारी और वफ़ादारी के प्रतिकूल है, कि कोई हम पर जान दे, और हम इस ओर ध्यान भी न दें। अंगरेज़ी-दाँ इसे 'आऊट ऑफ़ एटिकेट' समझते हैं। लेकिन मुसीबत यह थी, कि हमने अपनी ज़िन्दगी भर में, न तो किसी से प्रेम किया था और न किसी पर आशिक़ ही हुए थे। प्रेम-प्रणाली से एकदम 'अज्ञेय', या इस दस्तूरे-आशिक़ी के मेल से 'निर्मज' थे। प्रश्न तो अब यह था, कि हमें आगे क्या करना चाहिए?

अब हमारी सूझ मुलाहेज़ा फ़र्माइए। क़सम मौला की, क्या बात सूझी है, कि वाह! आज तक किसी 'चवन्नी वाले मेम्बर' अर्थात् नए और आरम्भिक आशिक़ को भी न सूझी होगी। दिमाग़ को मसल कर बड़े सोच-विचार के बाद हमारा

खयाल अपनी श्रीमती जी की ओर गया। हमने सोचा, कि स्त्री के सिवा स्त्री की हार्दिक भावनाओं को दूसरा कौन जान सकता है ? इस विषय में श्रीमती जी के अतिरिक्त दूसरा कोई अच्छा परामर्श नहीं दे सकता। उन्हीं से पूछना चाहिए।

हमने रात को सोते समय इधर-उधर की बातों में ही उनसे पूछा—"ज़रा, यह तो बताओ, कि अगर कोई औरत किसी मर्द पर आशिक़ हो जाए, तो उस मर्द को उस औरत से कैसा व्यवहार करना चाहिए ? वह औरत अपने आशिक़ व प्रीतम से क्या-क्या आशाएँ रखती होगी और क्या करने से वह प्रसन्न हो सकती है ?

साहब ! इतना पूछना था, कि जैसे बम फटा, या किसी आर्सनल में आग लग गई ! कहने लगीं, बस औरत यूँ ख़ुश हो सकती है, कि मर्द अपने घर-गृहस्थी को तबाह कर दे, बाप-दादों की आबरू को ख़ाक में मिला दे, मुँह में कालिख पोत ले, अगर मरने की कोई आसान सूरत न हो, तो किसी मुई के पाले पड़ कर मरे। हूँ ! अब मैं समझी, कि आजकल आप किस धुन में रहते हैं। यही बातें है, कि जब देखो घर से ग़ायब, मुँह लटका हुआ, सारी की सारी रात करवटें बदलते रहते हैं ! आख़िर वह चुड़ैल है कौन, ज़रा उसका नाम तो सुनूँ, और वह रहती कहाँ है, होगी कोई मुई बदमाश !

अब हमें कहीं जा कर अपनी मूर्खता का पता चला ! इस बारे में तो औरतों का स्वभाव शक्की होता ही है। वह ख्वाह-

मख़्वाह् मरदों पर शुबहा करती हैं। यहाँ तो सचाई ही थी, हमें चाहिए था घनश्याम आदि से इस विषय में सलाह लेना! लेकिन वे भी तो परले सिरे के सिड़ी हैं। सारे शहर में, ढिंढोरा पिट जाता, कि लाला जी पड़ोसिन पर मरते हैं!

श्रीमती जी कड़क कर बोलीं—तुम्हारे होठों पर ताला क्यों पड़ गया? बताते क्यों नहीं उस डायन का नाम? ज़रा जा कर उसका मिज़ाज पूछ आऊँ, मेरी तबाही का हाल मुझी से पूछ रहे हो! कल ही भाई को बुला कर मैके चली जाऊँगी। यही तो है उसके ख़ुश करने का इलाज!

श्रीमती जी सावन-भादों की तरह बरस रही थीं, इधर हमारी अक़्ल ने ठिकाने आ कर एक चाल सोच ली। हमने कहा—तुम भी अजब औरत हो। पूरी बात सुनी ही नहीं और लगी टर्राने!

आँखें नचा कर श्रीमती जी बोलीं—बस, बस, मैं सुन चुकी पूरी बात, अब सुनना क्या बाक़ी रहा?

हमने श्रीमती जी को शान्त करते हुए कहा—अजी, ख़ाक सुन चुकीं तुम। बात यह है, कि घनश्याम बाबू पर कोई छोकरी बुरी तरह मर रही है, बेचारे बहुत परेशान हैं, उन्होंने तंग आ कर पूछा था, कि उसका दिल किस तरह रखना चाहिए।

साहब! चाल हमारी 'सुधासिन्धु' ही साबित हुई। श्रीमती जी जरा नर्म हो कर बोलीं—देखो, मुझसे झूठ न बोलना, क्या सच घनश्याम बाबू ने पूछा है?

दिल हमारा बढ़ चुका था, हमने कहा—तुम्हें इतन
समझ नहीं है, कि अगर हमारा ज़ाती 'केस' होता, तो
रह गई थीं सलाहकार ! तुमने कभी देखा भी है हमें
बातों में हिस्सा लेते ?

श्रीमती जी बोलीं—अच्छा, सुबह ही जाऊँगी उनके
और सारी बात पूछूँगी, कि मामला क्या है, तुम कितना
कहते हो।

हमने घबड़ा कर कहा—ख़ुदा के लिए ऐसा न कर
आख़िर घनश्याम क्या कहेगा, कि हम इतने 'ज़न-मुरीद
कि उनकी प्राइवेट बात भी हमने तुम से कह दी। हमेश
लिए हम उसकी नज़रों से गिर जाएँगे। फिर तुम ही स
कि वह तुमसे इक़रार करेंगे ? ऐसी बातों का भला कोई कि
इक़रार किया करता है ? हाँ, यह हो सकता है, कि कल
उनको अपने साथ लाएँ, तुम बातों-बातों में सब पता लगा
इस प्रकार मेरी पोज़ीशन भी ख़राब न होगी, और
बात का पता लग जाएगा। हम फिर कहते हैं, कि हम
तुम्हारा सन्देह निर्मूल है, हम ऐसे आदमी नहीं, कि तु
छोड़ कर दूसरी स्त्री की ओर आँख उठा कर भी देखें !

हमें सारी रात नींद नहीं आई। पड़ोसिन हम
आशिक़ हो, न हो, पर हमें आशिक़ी की सज़ा मिल
कब सवेरा हो, कि घनश्याम से सब बातें कहें, कि अब ह
इज्ज़त तुम्हारे हाथ है।

सवेरा होते ही हम सीधे घनश्याम के पास पहुँचे, वह अब तक सो रहा था। हमने आवाज़ दी, वह उठ कर बैठक में आया, हमें ज़रा घबराया हुआ देख कर वह स्वयं भी घबरा गया, बोला—कुशल तो है, इतनी सुबह कैसे ?

हमने रात की सारी बात-चीत घनश्याम को सुना दी और कहा—भाई साहब ! हमारी आबरू अब तुम्हारे हाथ है ! तुम जानते हो न हमारी श्रीमती जी की आदत, वह यहाँ से लेकर अपने मैके तक आग लगा देगी, और हम कहीं मुँह दिखाने लायक़ भी न रहेंगे।

घनश्याम ने सहृदयता का भाव दरसाते हुए कहा—फिर मुझसे क्या चाहते हो, जो कहो करने को तय्यार हूं ?

बस, अगर श्रीमती जी तुमसे पूछें, तो कह देना, कि हाँ, मेरा ही मामला है।

"बस इतनी ही बात ?"

बस !

तुम निश्चिन्त रहो, मैं मान जाऊँगा और भाभी को यक़ीन दिलाने के लिए एक लड़की की तस्वीर और चिट्ठी तक दिखा दूँगा। एक मित्र दूसरे मित्र के समय पर काम न आया और इतना भी न कर सका, तो वह मित्र कैसा ?

हमने शुक्रिया अदा करते हुए कहा—तुम्हारे इस एहसान को ज़िन्दगी-भर न भूलेंगे। अच्छा, घनश्याम ! हमें यह तो

बताओ यार, कि हमारी वह पड़ौसिन क्या सचमुच हम पर आशिक़ है ?

तुम अपने दिल से क्यों नहीं पूछते ? वह तुम्हें चाहती है और दिल से प्यार करती है ।—घनश्याम बोला ।

हमने कहा—अच्छा, तो फिर हमें क्या करना चाहिए ? हमारी समझ में कुछ नहीं आता ।

पहले एक पत्र लिख कर उसके पास भेजो । घनश्याम ने गम्भीरता से कहा ।

"अगर वह अपने पति से कह दे, या हमारी श्रीमती जी को ही पत्र दिखा दे तो ?"

"तुम भी अजीब आदमी हो, वह तुम पर आशिक़ है, तुम्हारे पत्र को दुनिया-भर में दिखाती क्यों फिरेगी ? अपने हाथों ही अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारेगी क्या ? वह तुम्हारे प्रेम-पत्र को आँखों से लगाएगी, चूमेगी, फिर अपने प्राइवेट बॉक्स में बन्द करके मोहब्बत का ताला लगा देगी !"

हमने पूछा—यार, पत्र का मज़मून क्या होना चाहिए ?

घनश्याम—बस, भरपूर ही होना चाहिए विरह-व्यथा के भाव से । उपन्यासों, नाटकों और सिनेमाओं में देखते नहीं, कि इश्क़ो-मुहब्बत की बातें किस प्रकार की जाती हैं । बस, इसी प्रकार का पत्र होना चाहिए ।

हमने कहा—फिर भी कुछ इशारे तो बता दो ?

घनश्याम बोला—पत्र की भाषा इस प्रकार की होनी चाहिए, कि प्यारी ! तुम्हें देख कर दिल जापानी रबर के गेंद की तरह उछलता है, जब तुम बन-ठन कर खिड़की पर बैठती हो, तो दिल चाहता है, कि मनुष्य न हो कर पक्षी होता, तो उड़ कर तुम्हारे पास पहुँच कर तुम्हारे प्रेम के पिंजरे में क़ैद हो जाता। मैं तुमसे मिलने के लिए बेचैन हो रहा हूँ, आदि-आदि।

हमने कहा—अच्छा भई घनश्याम, देखो, अपनी भाभी की इन्क्वायरी के मुआमले में होशियार रहना, बड़ी तेज़ औरत है।

घनश्याम ने मुँह बना कर कहा—यार, तुम मेरे काम को तो मुझ पर छोड़ो और जा कर अपना काम देखो ! भाभी तेज़ हैं, तो बन्दा भी सुस्त नहीं है ! वह झाँसा दूँ, कि सारी तेज़ी धरी रह जाए !

हमने कहा—बस, बस, भाई साहेब ! इसी बात की ज़रूरत है। अच्छा, हम अभी जाकर उसके पास पत्र भेजते हैं।

३

घर आकर हमने एक ऐसा प्रेम-पत्र लिखा, कि क्या लिखा गया होगा आज तक किसी प्रेमी की ओर से ! सिनेमा देखने, नाटक और उपन्यास पढ़ने से जितना ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह सब खर्च कर दिया हमने ! पत्र को एक लड़के के हाथ अपनी पड़ोसिन के पास भेज दिया, लड़के के जाने के थोड़ी ही देर

बाद वह खिड़की पर आई और हमारा प्रेम-पत्र हमें दिखा कर इशारे से पूछा, यह पत्र आपने भेजा है ?

हमने सर हिलाकर बताया, हाँ !

खत भेज कर हम रात-दिन उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे और दिल में ऐसे-ऐसे प्रेम-पत्र लिखने के मज़मून बाँध डाले, कि अगर लिखने का समय मिलता, तो ख़ुदा की क़सम प्रेम-साहित्य की 'निधि' माने जाते !

तीसरे रोज़ उसने उत्तर भेजा, जिसका मज़मून यह था—मैं भी आपसे मिलने के लिए तड़प रही हूँ, परन्तु क्या करूँ स्त्री-जाति ठहरी, समय न मिलने के कारण असमर्थ थी, आज मेरे पति एक रोज़ के लिए बाहर गए हैं, आप आठ बजे रात को अवश्य कष्ट करके दर्शन दें, मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी।

उस रोज़ दिन बड़ी मुश्किल से खत्म हुआ। था तो पूस का महीना, पर उस रोज़ शाम बड़ी ही देर में हुई थी। लैम्प जलने के बाद हमने तय्यारी की, सौग़ात वग़ैरह का तो दिन ही में प्रबन्ध कर लिया था। बैठे घड़ी ही देख रहे थे, कि जैसे ही सात बज कर पचास मिनट पर सुई पहुँची, कि हम उमंगों-भरा दिल और आशाओं से भरा हृदय लिए अपनी पड़ौसिन के घर जा धमके। वह ख़ूब शृंगार किए अपने कमरे में बैठी थी। उसे देखते ही हमारा दिल उदयशंकर की तरह नाच उठा, लेकिन हमारी हैरानी की हद न रही, जब

कि उसने हमारे कमरे में पाँव रखते ही बिजली की बत्ती बुझा दी !

हमने घबरा कर कहा—क्यों, क्यों ? आपने रौशनी क्यों बुझा दी, यदि आपको हमारा आना इतना बुरा लगा, तो हम अभी लौट जाने को तय्यार हैं। क्योंकि प्यार और मुहब्बत की बातें, तो अँधेरे में मज़ा नहीं देतीं !

उन्होंने प्यार-भरी सुरीली आवाज़ में कहा—वाह ! आपका आना मुझे बुरा काहे को लगेगा ? मैं तो आपसे मिलने के लिए घड़ियाँ गिन रही थी। मैं अभी रौशनी करती हूँ परन्तु इस शर्त पर कि आप मेरी दो-एक बातों का उत्तर दे कर मुझे विश्वास दिला दें। प्यार और मुहब्बत की बातें, रौशनी में ही होंगी।

हमने आवेश में आकर कहा—कहिए, कहिए, मैं हर प्रकार का विश्वास दिलाने को तय्यार हूँ।

वह बोलीं—आपका प्रेम ढलती-फिरती छाया तो न होगा ?

"जी नहीं, हर्गिज़ नहीं।"

"मर्द बड़े स्वार्थी होते हैं, इसीलिए पूछ रही हूँ।"

हम उन मर्दों में से नहीं हैं।"

"मैंने सुना है, कि आपकी घर वाली बहुत तेज़ है, और आप उससे डरते हैं, ज़रा ध्यान कर लें इस बात पर भी।"

हमने बड़ी शान से जवाब दिया—किसने कहा आपसे कि हम उससे डरते हैं ? अगर उसने उफ़ भी की, तो हम जो कुछ

भी न कर डालें, थोड़ा है। आप हमें जानती नहीं, कि हम किस क़िस्म के आदमी हैं।

"आप ख़ूब सोच-समझ कर कह रहे हैं न ?"

"हाँ, हाँ, ख़ूब सोच-समझ कर।"

"तीन बार प्रतिज्ञा करते हैं आप ?"

"तीन बार आपके कहने पर और तीन चार अपनी इच्छा से।"

"मेरा हाथ पकड़ कर क़सम खाइए, कि मेरी पत्नी मुझे छोड़ दे या मुझे वह छोड़नी पड़े, चाहे कुछ क्यों न हो, मैं तो तुम्हें किसी प्रकार न छोड़ूँगा !"

हमने अँधेरे में हाथ बढ़ा कर उनका हाथ थामा, इतने में यकायक बिजली जल उठी और इसके साथ ही हम पर भी बिजली गिरी। हम क्या देखते हैं, कि हम अपनी पड़ौसिन के कमरे में साक्षात् अपनी श्रीमती जी का हाथ थामे खड़े थे, अजीब बौखलाहट के आलम में !

अब आप स्वयम् अनुमान कर लें, हमारे मुँह से हमारी दुर्दशा सुन कर क्या करेंगे। हाँ, एक बात बतलाए देते हैं, कि लैम्प जलने के साथ जहाँ हमारी रुह काँप रही थी, वहाँ पास के कमरे में वे भलेमानुस सबके सब ठहाका मार कर हँस रहे थे। वही घनश्यामदत्त, वेदव्यास, प्रेमसागर और विद्यासागर !

चिरई
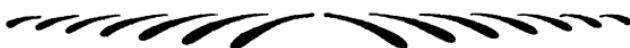
एक कहावत है—"सकल तीर्थ कर आई नितलौकी, तबहुँ न गई तिताई!" वही हाल हमारे मुहल्ले के मियाँ नूरी का था। लड़कपन या जवानी चाहे उनकी जैसी बीती हो, पर कशों के खिचड़ी हो जाने के ज़माने में, और हज कर आने पर जब वे 'नूरी' से 'हाजी महम्मद नूरुद्दीन' हो गए, और गर्दन से लेकर फ़िल्ली तक घाँघरानुमा कुर्ता पहनने लगे तथा पाँचों नमाज़ के पाबन्द हो गए तो उन्हें एक बीमारी पैदा हो गई। यह 'चिरई' की बीमारी थी; या यों कहना चाहिए कि वे 'चिरई' के आशिक़ थे, और उसकी तलाश में दर-दर ठोकरें खाते थे।

आप सोचते होंगे, मियाँ नूरी किसी गुलशन में फुदकने वाली या बियाबाँ में कूकने वाली 'चिरई' के प्रेमी होंगे। मगर नहीं, मियाँ नूरी की 'चिरई' जंगलों में वृक्षों पर बसने वाली 'चिरई' नहीं, महलों में चहकने वाली 'चिरई' है, जिसके डैने नहीं, दो हाथ होते हैं; पैर में चंगुल नहीं, उँगलियाँ होती हैं,

चोंच नहीं, होंठ होते हैं, और जिसकी बोली 'चिरई' से भी ज्यादा प्यारी और मीठी होती है। मतलब किसी .खूबसूरत नाज़नी से है, जिसे अपनी साँकेतिक भाषा में मियाँ नूरी 'चिरई' कहा करते थे। यह 'चिरई' की तलाश वाली बीमारी उनके पीछे ऐसा हाथ धो कर पड़ी थी, कि वे 'चिरई' के लिए ज़रूरत पड़ने पर सिर्फ़ अपना बधना और डोरी ही नहीं, 'जा-नमाज़' (जिसे बिछा कर नमाज़ पढ़ी जाती है) और तस्बीह तक—जिसे मक्का-शरीफ़ से बड़े प्रेम और श्रद्धा से वे अपने साथ लाए थे—बेंच सकते थे। उनके चन्द हमजोलियों ने उनकी इस बुरी लत के लिए उन्हें धिक्कारा भी, उनकी लानत-मलामत भी की—"मियाँ, क्या इस बुढ़ौती में और वह भी हज्जी-नमाज़ी हो कर, अज़ाब की गठरी भारी किए जा रहे हो !"

पर अपने इन शुभचिन्तकों की नसीहत सुने मियाँ की बला ! वे तो 'चिरई' के मुश्ताक़ थे। अपनी कपड़े की छोटी-सी दूकान पर बैठे वे गाहक की टोह में नहीं, 'चिरई' की फ़िक्र में परेशान रहते थे। सबसे बड़ी तबाही हमारी थी। मियाँ हमारे पड़ोसी थे—"कोई 'चिरई' फँसाओ !" के तक़ाजे से हमारी नाकों दम किए रहते थे। मैंने लाख कहा—"मियाँ, कोई 'चिरई-विरई' हमारे क़ब्जे में नहीं, और न मैं कोई वैसा 'चिरईबाज़' ही हूँ। मेरा पिण्ड छोड़ो !"

मगर मियाँ तो अपनी नाक पर हरी ऐनक चढ़ाए बैठे थे, उन्हें सारा संसार हरा ही हरा दीखता था। उनकी नज़रों में दुनिया

के सारे लोग 'चिरईबाज़' थे ! कहते—"अरे भई, जो ख़र्चा हो, हमसे ले लो। यह हीला काहे का ! न हो तुम भी शरीक हो जाना, क्यों !

"अच्छा !" कह कर किसी प्रकार पिण्ड छुड़ा लेता। पर कब तक ? मियाँ उधार खाए बैठे थे। आख़िर एक दिन एक 'चिरई' का पता लगा, जो देहात से बहक कर हमारे शहर में आ गई थी। मियाँ ने यह ख़ुश-ख़बरी सुनी, तो वे इतने ख़ुश हुए, मानो सिकन्दर का दफ़ीना इन्हीं के हाथों लगा। पूछा—"यार, हम उसे देख सकते हैं ? कहाँ रक्खा है ?" फिर वे अपने लम्बी नोक वाले पञ्जाबी जोड़े पहने तैयार थे !

मैंने कहा—"अजी, हड़बड़ी किस बात की ! शाम होने भर की तो देर है, फिर सारी रात ख़ुर्दबीन लगा कर देखा कीजिएगा। ग़ालिबन तीन तो बज ही गए होंगे, दो-ढाई घण्टे में शाम हो जाएगी। 'चिरई' नई है, वह भी देहात की; कहीं आपको देख कर भड़की, तो सब गुड़ गोबर समझिए।"

मियाँ ज़रा रूखे हो कर बोले—"वह हमको देख कर भड़केगी ! क्या मेरी शक्ल ऐसी ख़ूँख़्वार है जी ?"

मैंने मियाँ की बेताबी समझी, ज़रा मुलायम हो कर कहा —"शक्ल तो आपकी 'नूर' के ही मानिन्द है। आपकी सूरत ख़ूँख़्वार है, ऐसा कौन मरदूद कहेगा ! मगर वह एक नए आदमी को देख कर घबराएगी, क्योंकि आपके बारे में अभी उसे कोई ख़बर नहीं है।"

मियाँ ज़रा सँभल कर बोले—"अच्छा, जाने दो। है कैसी ? उमर क्या है ?"

मैंने कहा—सूरत तो अभी मैंने भी नहीं देखी है ; मगर जहाँ तक मैं उसे देख पाया हूँ, उसकी ख़ूबसूरती में कोई शुबहा नहीं है।

मियाँ आँखों में रस भर कर 'नूर' (दाढ़ी) पर हाथ फेरते ए हुबोले—"बेशक, 'चिरई' बड़ी दिल फ़रेब होती है, तुम्हारा ख़याल बहुत दुरुस्त है। ख़ैर, तब तक उसके खाने-पीने का इन्तज़ाम......।

"जैसा आपका हुक्म !" मैंने कहा।

मियाँ टेंट से रुपए फेंकते हुए बोले—"लो तुम और 'वह' दोनों खाओ-पियो। और हाँ, निगरानी बराबर रहे, ताकि 'चिरई' फुर्र न हो जाय, या कोई बहेलिया उसे बझा न ले। फिर सब सत्यानास ! समझे !"

मैं ज़ोर दे कर बोला—"नहीं, नहीं, भला यह कैसे होगा कि निगरानी न रहे ; और निगरानी क्या, पूरा पहरा रहेगा।"

"बहुत ठीक ! लो, जाओ। और हाँ, याद रखना, शाम हुई नहीं कि 'चिरई' के साथ हमारी बैठक में तुम हाज़िर हो जाओ।"—मियाँ ने कहा।

अबकी मैं पूरा ज़ोर दे कर बोला—"हाँ, हाँ, आप खातिर रखिए ; शाम हुई, और 'चिरई' आपकी बैठक में बन्द !"

और सचमुच शाम होते ही मियाँ की बैठक में 'चिरई' बन्द हो गई। मियाँ ने 'चिरई' को देखा-भाला, और सूरत की दिल खोल कर ख़ूब दाद दी। मेरी भी पीठ ठोकते हुए कहा—"भई वाह! हो तुम भी एक ही उस्ताद! बेहद बेहतरीन चीज़ लाए! ऐसी 'चिरई' बड़े भाग से मिलती है, यार!"

मैंने कहा—"यह कामयाबी और कुछ नहीं आपके समान हाजी की दुआ है! ख़ैर, अब मुझे छुट्टी दीजिए, और आप अपना काम देखिए।"

मैं घर आ कर लम्बी तान कर पड़ रहा। कोई दो घण्टे बाद मुझे मालूम हुआ, मेरे दरवाज़े पर कोई बेतहाशा चीख़ रहा है, धड़ाधड़ किवाड़ के पल्ले पीट रहा है। भीतर से ही मैं झल्लाया-सा बोला—"अरे, किस ऊँट की नकेल टूटी, जो अरबिस्तान से सीधे छूट कर मेरे दरवाज़े पर बलबला रहा है!"

फिर एक घबराहट-भरी, बौखलाई-सी आवाज़ आई—"अमाँ, जल्द किवाड़ खोलो!!"

बाहर आ कर देखा, तो हमारे 'चिरई' वाले हाजी जी बड़ी परेशानी की हालत में, सर से पाँव तक जड़ैया के मरीज़ की तरह काँपते हुए खड़े थे। शक्ल घबराई हुई, आवाज़ अटकी हुई—अजीब हालत! पूछा—"क्यों, ख़ैरियत तो है?"

मियाँ उसी उलझी-सी आवाज़ में घबराए हुए बोले—"ख़ैरियत! अच्छी ख़ैरियत पूछते हो! परी के बजाय देव

ले आए, फिर भी ख़ैरियत-तलब ! बाग़ रे बाबा ! छछात (साक्षात्) कालादेव !!"

"कालादेव ! यह आप क्या फ़रमा रहे हैं, हाजी जी ! मैं ज़रा भी न समझा !"

"ज़रा भी न समझा तो खुद चल कर अपनी आँखों देख लो। बाप रे ! ऐसा ख़ूँख़्वार शैतान हमने अपनी इतनी बड़ी उम्र में कभी न देखा था।"

"अजी, शैतान कहाँ है, साफ़ बताइए ना !"

"हमारी बैठक में !"

"आपकी बैठक में शैतान ! ताज्जुब ! यह आप क्या कह रहे हैं ?"

"हाँ जी, क्या झूठ थोड़ी ही कहता हूँ। जिसे तुम लाए, वह तो, 'चिरई' नहीं 'शैतान' है !"

"यह तो आप अजीब बात कहते हैं। लाए हम औरत, उसे आपने भी देखा-भाला, वह शैतान कैसे हो गई ?"

"इसी चक्कर में तो मैं भी हूँ भाई। तुम जब घर आए, तो मैं भी खाना खाने घर गया। खाना खा कर लेटा, कमरा खोला। देखा, वह खाट पर चुप बैठी है। नज़दीक गया, पूछा—'कुछ खाओगी ?' सर हिला उसने 'नहीं' कहा। अब मैंने खाट पर उसके पास बैठ कर ज्यों ही उसका हाथ थामा कि बस, क़हर हो गया। एक झटके में उसने साड़ी तो एक ओर दूर को फेंक दी; अब हमारे सामने वह एक डबल लम्बा-तड़ंगा

कालादेव ! बड़ी-बड़ी सुर्ख़ आँखें, सारा मुँह कोयले-सा काला, होठ पर निकले अँगुल-अँगुल भर के लम्बे दाँत, सारा जिस्म काले कपड़े से ढँका !! एक अजीब डरावनी आवाज़ ! मैं घबरा कर उसे देख ही रहा था, कि उस मूजी ने झपट कर मेरा कान पकड़ लिया और कुत्ते की तरह मुझे ज़मीन से बेलाग उठा लिया। पूरे दस मिनट तक मुझे इसी तरह उठाए रहने के बाद, उस बेरहम ने मुझे छोड़ दिया। फिर इशारे में बतलाया कि उठ-बैठ करो ! पर दस ही बार उठने-बैठने में मेरी कमर अकड़ गई। रान नौ-नौ मन भारी हो गई, मैं लगा थौंसने। तब उस मरदूद ने फिर मेरा कान पकड़ा, और लगा उठाने-बैठाने। जब मुझे यह मालूम हुआ कि अब फ़क़त दो-चार बार के ही उठने-बैठने से दम निकल जाएगा, तो उसके पाँव से लिपट गया। बड़ी-बड़ी मिन्नतें कीं। फिर 'चिरई' की तलाश में न रहने की क़सम खाई, थूक चाटा, उसके तलवों पर नाक रगड़ी, तब कहीं यह बला टली ! पर अब वह ५००) रु० नक़द माँगता है और कहता है, न दोगे तो सारा घर फूँक दूँगा। बड़ी मुश्किल से छुट्टी ले कर तुम्हारे पास आया हूँ। ज़रा चलो, भइया ! समझाओ उस साले शैतान को, किसी क़दर बला टले !

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला—"अजी साहब, इस दुनिया में जो कुछ हो जाय, अचरज नहीं। अब मुझे एक बहुत पुराना वाक़या याद आ रहा है। द्रौपदी देवी भी जब छिप कर

बिराट नगर में रह रही थीं, तब उन पर राजा विराट का साला, कीचक, आशिक़ हुआ। रात में जब उनसे मिलने गया, तो ठीक इसी तरह साड़ी से ही एक बड़ा ख़ूँख़ार देव पैदा हुआ, और जनाब उसने तो वहीं कीचक को फाड़ खाया। और कीचक को ही क्यों? उसके ११ भाइयों को भी जला कर खाक कर डाला! ख़ुदा का शुक्र है, यह ज़नाना शैतान फ़क़त ५०० रू० पर ही मामला रफ़ा-दफ़ा किए देती है।

हाजी जी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। यह कीचक वाली कहानी सुनी, तो उनका दिमाग़ और दुरूस्त हो गया। बोले—"मगर मेरे पास इस वक़्त इतने रुपए कहाँ, जो उसे दूँ। और एक बात, वह कीचक वाला मज़मून तो बहुत पुराना है। पुराने ज़माने की बात आज कहाँ होती है?"

"तो क्या आपको शक है, आपके साथ कोई फ़रेब रचा गया? मैं पूछता हूँ, आप तो उस औरत को ख़ुद अपनी आँखों देख चुके थे। बोलिए, देखा था न?"

मियाँ बोले—हाँ, भाई! देखा तो ज़रूर था।

मैं—"कोई वैसी शुबहा वाली बात आपको नज़र आई?"

मियाँ—"नहीं।"

मैं—"आप जब खाना खाने गए, तो मैं आपके जाने के पहिले अपने घर चला आया?"

मियाँ—"हाँ।"

मैं—"और बैठक की ताली भी आपके ही पास थी। थी, न?"

मियाँ—"हाँ।"

मैं—"तो फिर आपके संग फ़रेब कैसे रचा गया? बाक़ी रही औरत से मर्द बनने की बात, जिसे आप इस ज़माने में अनहोनी समझते हैं; मगर मैं कहता हूँ, ऐसे वाक़यात आज भी हो रहे हैं। यूरोप में कई दर्जन मर्द औरत, और कई दर्जन औरतें मर्द बन गईं और जनाब, शादियाँ करके घर भी बसा लिया! आप किस बेख़बरी में हैं। आपको इसका पता हो भी क्यों कर? आप तो 'चिरई' के आशिक़ हैं। अख़बार पढ़ते, तब तो यह दुनिया की बातें आपको मालूम होतीं!"

सारांश यह, कि 'चिरई' के आशिक़ हाजी साहब ने दो सौ रुपए उस 'शैतान' के पैरों पर रक्खे। तब कहीं उनकी जान बची! इसके बाद फिर उन्होंने कभी 'चिरई' की न तो तलाश की और न उसका नाम ही लिया! हाँ, 'चिरई' के नाम से अब चिढ़ने ज़रूर लगे थे।

अस्पताल के चक्कर में

ओह मैं तो परेशान हो गया हूँ अस्पताल जाते-जाते! भगवान् जाने, कब पिण्ड छूटेगा अस्पताल की इस आफ़त से। सवेरे उठे नहीं, कि अस्पताल जाने की तजवीज़ होने लग जाती है! शीशियाँ ढूँढ़ो, उन्हें साफ़ करवाओ आदि काम तो मुँह धोने के पहिले ही करने पड़ जाते हैं। लगातार आठ साल में मैं अस्पताल जा रहा हूँ। शायद ही कोई ऐसा दिन रहा हो, जिस दिन शीशियाँ मेरे हाथों में न आई हों। कारण, कि बारहों महीने मेरे घर में मरीज़ बने ही रहते हैं। आज किसी के छोटा-सा फोड़ा हो गया है, तो कल किसी का पेट दर्द कर रहा है, किसी की आँखें दुख रही हैं, तो कोई मलेरिया से चारपाई पर पड़ा है; याने हफ़्ते के सात दिनों में कोई न कोई बीमार रहता ही है। फिर मैं अपने भाइयों में थोड़ा बड़ा भी पड़ता हूँ; बस, फिर क्या है मेरी ही शामत आती है इन सब ड्यूटियों को अदा करने के लिए!

शहर के सारे वैद्य, हकीम और डॉक्टर मुझे पहिचानते हैं, और अगर कोई दूसरे मरशिद इसी पेशे के शहर में आ बसते हैं, तो उनसे भी जान-पहिचान हुए बिना नहीं रहती—काम जो पड़ता है।

मुझे अच्छी तरह याद है, शायद ही कोई ऐसा महीना गुज़रा होगा, जिसमें चालीस-पचास रुपए के बिल डॉक्टरों के यहाँ से बन कर न आए हों।

डॉक्टर लोग भी मुझसे ख़ुश रहते थे, क्योंकि मैं उनका रोज़ का ग्राहक था। उनकी तो चाँदी बनती थी; किन्तु यहाँ रोज़-ब-रोज़ चक्कर लगाने में इतनी खीझ पैदा होती, कि कभी-कभी तो अस्पताल जाना छोड़ पार्क में जा कर किसी पेड़ के नीचे बैठ चिड़ियों का फुदकना और आकाश में दौड़ते हुए सफ़ेद-काले बादलों की गति देखा करता था, किसी सदाबहार वृक्ष के नीचे बैठ कर चैन की वंसी वजाता और कभी-कभी निद्रा देवी की गोद में खो जाता था।

अब क्या वताएँ, कई मरतबा लोगों ने वहाँ हमारी मटर-गश्ती देख ली थी, जिसके लिए हमें काफ़ी झेंपना पड़ा था!

एक दिन की बात है, मैंने पक्का इरादा किया, कि आज चाहे जो कुछ हो जाय, भले ही पिता जी आगबबूला हो जाएँ, परवाह नहीं; मुझे घर से निकलना पड़े, पर दवाई लेने अस्पताल न जाऊँगा। आठ-आठ साल हो गए, क्या दवाई लाने का ठेका मेरे ही सिर है? पिता जी से कहता हूँ, कि रमेश को भेज दो,

तो कहते हैं—'वह अभी छोटा है, फिर उसे तमीज़ ही क्या है, तू काफ़ी दिनों से जा रहा है, तुझे अच्छा तजुर्बा हो गया है डॉक्टरों से बात-चीत करने का। चले जाओ, बेटा !' मुझे कहना तो बहुत कुछ था, परन्तु क्या करूँ एकाएक मुझसे ज़बान-दराज़ी न हो सकी। उनके कहने से घर से तो निकल पड़ा, परन्तु अस्पताल की ओर नहीं—बग़ीचे की तरफ़ चल दिया। बग़ल में शीशियाँ दबाईं और चल पड़ा दिलबस्तगी के लिए—'आयोडिन' और 'आयडोफ़ॉर्म' से दिमाग़ सड़ाने नहीं ! ख़ुदा ख़ैर करे, इन अस्पताली दवाइयों से नाक इतनी सड़ गई थी, कि मैं इत्रों का पहिचानना भूल गया था। मैं 'मलेरिया' और 'कॉलरा' के मिक्सचरों में डूबना-उतराना नहीं चाहता था, मैं एक ऐसी जगह की तलाश में था, जहाँ न रोग हों और न उनके अच्छे करने वाले !

हाँ, तो घर से चल कर पार्क पहुँचा। बेञ्च पर बैठ कर निद्रा देवी का आह्वान करने लगा, क्योंकि मैं अपने अस्पताल जाने की व्यथा को देवी' जी की गोद में विस्मृत कर देना चाहता था, परन्तु हिटलर की मूँछ और मुसोलिनी की खोपड़ी की तरह कहावत प्रसिद्ध है—'माँगे मिले न भीख' ! फिर निद्रा देवी उस कहावत की मर्यादा को कैसे भंग कर सकती थीं ? नींद की उधेड़-बुन में क़रीब एक घण्टा गुज़र गया; लेकिन नींद और आँखों की तनातनी में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। मुझे याद है, मैं एक लमगोड़े विड्डे की तरफ़ कौतुहल-भरी निगाहों

से देख रहा था, कि कब नींद आ गई, पता भी नहीं लगा, और मैं सोता ही रहता, अगर पास में रास्ते पर खड़ा एक गधा 'सी-पों', 'सी-पां' का कर्कश, कर्ण-भेदी राग आखिरी सप्तक के स्वरों में न छेड़ उठता। मैं उठा तो एक बज चुके थे, और घर से मैं निकला था आठ बजे। सोचा—क्या बहाना किया जायगा। दिमाग़ तो बचपन से ही चञ्चल है। बहाना बनाना तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है। कह दूँगा—डॉक्टर साहब एक मरीज़ को देखने गए थे, वहाँ उन्हें बहुत देर लग गई, अभी आए तो दवाई ले कर चला आ रहा हूँ। ख़ैर, यह तो देर की बात हुई। अब सवाल रहा दवाई का, सो नल से शीशियों में पानी भर लिया और बाज़ार से एक पैसे की काली मिर्च और नमक ख़रीदा और बहुत बारीक पीस कर पानी में मिला दिया, कपड़े से छान लिया, दवाई तैयार हो गई। घर आया, तो पूछा जाने लगा—"देर क्यों हुई?" मन-गढ़न्त बहाने वाली बात कह गया और शीशियाँ हवाले कर दीं अपनी अम्मा के। अम्मा एक घूँट पी कर बोलीं—"क्यों राजू, आज दवाई का स्वाद क्यों बदला हुआ मालूम पड़ता है?"

यहाँ पर तो मेरा दिमाग़ फ़ेल हो रहा था, कि बुरे फँसे—क़िला तो फ़तह कर लिया, पर शासन न कर पाए! मैंने इस बात का तो बिलकुल ख़याल ही नहीं किया, कि पिता जी डॉक्टर से पूछेंगे; तपाक से बोल उठा—"अम्मा, आज डॉक्टर ने बड़ी तेज़ दवा दी है। उनका कहना है, कि इस दवाई से

तुम्हारी माँ ज़रूर अच्छी हो जाएँगी।" ईश्वर जाने, मेरी बनाई हुई दवा में क्या जादू-ऐसा असर था, कि दूसरे ही दिन से मेरी अम्मा की बीमारी बिलकुल दूर हो गई। मैं भी चकित रह गया, मानो मैं जो कुछ भी दे दूँ वही दवा हो!

सवेरे-शाम भगवान् से प्रार्थना करता हूँ—हे भगवान्, दयानिधान, दीनबन्धु मैं आपकी शरण हूँ! कृपया ऐसा करिए, कि बीमारी चुड़ैल का मेरे घर से महाप्रस्थान हो जाए; क्योंकि मेरे घर के मरीज़ों को जितना दुःख नहीं होता, उससे कहीं ज्यादा ज़िल्लतें मुझको उठानी पड़ती हैं। डॉक्टरों के घर जाते-जाते मेरी नाक में दम हो जाता है। वक़्त-बेवक़्त कभी भी इस काम के लिए भेजा जाता हूँ। अगर रात में भी किसी को खाँसी या ज़ुकाम हुआ, तो डॉक्टर के यहाँ जाओ। अजीब आफ़त है! किसी डॉक्टर का घर एक मील है, तो कोई अस्पताल दो मील दूर है। हमारा मकान इतना बदनसीब है, कि उसके चार फ़रलाँग के आस-पास किसी डॉक्टर का घर है ही नहीं! डॉक्टरों के यहाँ जाता हूँ, तो कम-से-कम एक घण्टा ज़रूर पाँवों को तकलीफ़ होती है, और जब डॉक्टर साहब को पहिले वाले मरीज़ों से फ़ुरसत मिलती है, तब कहीं वे मेरी तरफ़ मुख़ातिब होते हैं। शिष्टाचार की प्रतिमा बन कर कहने लग जाते हैं—'मि० राजेन्द्र, आपको बहुत इन्तज़ार करना पड़ा!' मैं क्या कहूँ उन लोगों से, जो मेरी हालत से सर्वथा नावाक़िफ़

हैं ? इनको क्या पता, कि हमें कितनी तकलीफ़ों का सामना करना पड़ता है ?

भगवान् मेरे यहाँ की इस बुढ़िया को ज़रूर उठा लो, क्योंकि यही मुझे सबसे ज्यादा परेशान किए हुए है। साल में नौ महीने खाट की सेवा करती है। मैं उन क़यामत ढाने वाली नर्सों से बहुत डरता हूँ, जो जाती तो हैं 'पेशेण्ट' देखने, पर बार-बार अपनी साड़ी को देखती चलती हैं, कि कहीं सिकुड़न न आ गई हो ! मैं उनकी असामयिक हँसी की बौछारों का आदी नहीं हूँ। सोचने लग जाता हूँ, कि कहीं मुझे बनाने का तो यह उपक्रम नहीं हो रहा है। दिल ही तो है; रहा, न रहा अख़्तियार में ! कहीं दुर्भाग्य से किसी क़यामते-नाज़ से दिल लग गया, तो हुई आफ़त, 'प्रेज़ेण्ट्स' देते-देते नाक में दम, और फ़रमाइशों का ताँता जारी ! अभी तो सिर्फ़ सबेरे शाम ही अस्पताल जाना पड़ता है, फिर तो लिए साइकल लगाते रहो चक्कर अस्पताल के, पढ़ाई-वढ़ाई सब बालाए-ताक़ रख कर ! अभी तो दो ही चक्कर के फ़ेर में पड़ कर चार साल तक फ़ेल हुआ हूँ, और तब तो शायद जन्म ही ख़तम हो जाय पढ़ते-पढ़ते !

❀ ❀ ❀

आज मेरे लिए एक सौभाग्य का दिन है; मैं फूला नहीं समा रहा हूँ; कहीं मेरा शरीर ख़ुशी के मारे 'बर्स्ट' न हो जाए ! आज मेरे जीवन के इतिहास में एक नया पृष्ठ जुड़ेगा। आनन्द आज शरीर के प्रत्येक पट से झाँक रहा है। आज मेरे घर में

कोई बीमार नहीं है! अब आप समझें, मैं क्यों इतना उड़ा जा रहा था। भगवन् ने मेरी सालों की प्रार्थना पर आज ग़ौर किया है। आज मेरी ईद और दिवाली है, दशहरा और एक्समस है!

शाम हो रही है। भगवान् अंशुमाली दिन-भर के थके-माँदे अपने काम से अवकाश पा, प्रेयसी प्रतीची से मिलने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। अपनी आखिरी सुनहरी किरणों से भी दुनिया को आलोकित कर देना चाहते हैं। पक्षियों का एक जोड़ा सुदूर नील आकाश पर उड़ता चला जा रहा है, शायद वह युगल जोड़ी मेरे आनन्द में शरीक है!

शाम हो गई। घूम कर लौटा तो देखता हूँ, कि घर के सामने एक ताँगा खड़ा है। सोचा कोई मेहमान आए होंगे। हाँ, याद आया; शहर की एक महिला आज मेरी बहन से मिलने आने वाली थीं, परन्तु घर के अन्दर जा कर जो नज़ारा देखा, उससे मेरी रूह क़ब्ज़ हो गई। मेरा छोटा भाई बेर के दरख्त से गिर पड़ा था, और एक डॉक्टर अपना बक्स खोले हुए इधर-उधर आँखें नचा कर सान्त्वना दे रहे थे—"घबराइए नहीं, कोई बात नहीं है, सिर्फ़ बाएँ हाथ की हड्डी सरक गई है, एक महीने के अन्दर अच्छी हो जाएगी!" 'प्लास्टर ऑफ़ पेरिस' हाथ में बाँधा जा चुका था।

मेरी सारी ख़ुशियाँ काफ़ूर की तरह उड़ गईं! मुहर्रम की मुर्दनी छा गई। मर्सिया-गायकों की-सी सूरत हो गई! एक तो

भाई के गिरने का दुःख था, दूसरा अस्पताल जाने का। आठ बज चुके थे। सायकिल पर बैठा शीशियाँ दबाए चला जा रहा था अस्पताल की ओर। ठण्डी हवा बिच्छू की तरह काट रही थी; साथ ही अस्पताल जाने का ख्याल भी हज़ार बिच्छुओं से कम डंक नहीं मार रहा था!!
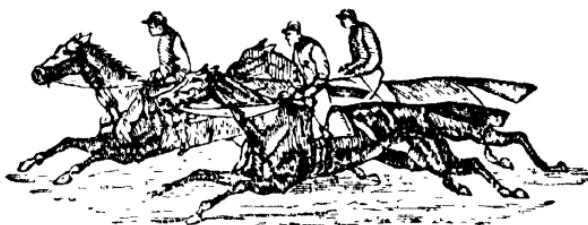
हम शरीफ़

हम शरीफ़ कोई किराए के शरीफ़ नहीं, बल्कि एक खानदानी शरीफ़ हैं—और रहेंगे भी ! ज़र की बदौलत, रईस होना एक अलग बात है, पर यहाँ तो ख़ुदा की दी हुई शराफ़त चेहरे पर ही क्या, रोम-रोम में घुली-मिली है। शराफ़त उस चिड़िया का नाम है, कि किसी के दुःख में दुखी न होना, किसी के झगड़े में पड़ कर शै दे कर तमाशा देखना, चार दोस्तों में अपनी ही कहे जाना, किसी की न सुनना, इत्यादि। बहुत से नमूने हैं—जो मसलन हम में ही मौजूद हैं :

❀ ❀ ❀

असलियत यह है, कि हम अपने माँ-बाप के अकेले चराग़ हैं। फिर लाड़-प्यार का अन्दाज़ा आप लोग ही लगाते रहिए, पर अब तो हम एक ख़ासे बाल-बच्चों वाले और 'छोटी-सी' नौकरी वाले गृहस्थ हैं। गृहस्थी से तो हम उतना ही नाता रखते हैं, जितना कि होटल से ग्राहक ! बच्चों को उतना ही प्यार करते हैं, जितना कि एक मेहमान ! हम अपनी निराली

दुनिया में रहते हैं, निराला महल उठाते हैं और निराले क़ानून-द्वारा बीबी-बच्चों तथा नौकरों को दबाए रहते हैं : हम शरीफ़ों की याद जहाँ-तहाँ आदमी कथा की तरह करते और सुनते हैं ! हम बहुत .गुस्सा वाले हैं ।

❀ ❀ ❀

एक बार का ज़िक्र है, कि नौकर से बन्दे ने कहा—"ज़रा टेबिल ठीक तरह से लगा दो, काम करना है।" नौकर कागज़ वग़ैरह रख कर चला गया। इतने में दोस्त लोग ताश की गड्डी ले कर आ धमके। हम कहाँ चूकने वाले थे, फिर क्या था, जम गए और जमें भी क्यों नहीं ? लड़ाई से पीछे क़दम हटाना हम शरीफ़ों का काम नहीं। शाम हुई और रात भी हो गई ! इधर बीबी ने देखा, कि हम फँसे हैं 'काम में', वह भी अपनी पड़ोसिनों के यहाँ गप-शप करने चल दी। शाम को आई और फिर अपने चूल्हे के चक्कर में ! टेबिल की किसी को ख़बर नहीं !! किसी बच्चे ने कागज़ों की पतंग बना कर और किताबें-टेबिल स्याही से पोत-पात कर दुरुस्त कर दिए ! खाना खा चुकने के बाद जा कर देखा, तो हम बीबी पर बिगड़ बैठे—"क्यों जी, जब खेलने लगे, तो तुमने ये कागज़ उठवा कर क्यों नहीं रखवाए ?"

"हमें क्या ख़बर, कि कागज़ फैला कर ताश खेला जाता है।"

बस, हम जल-भुन कर जान-खटाई हो गए, क्योंकि शरीफ़ों की शान में दाग़ लग गया ! बीबी की क्या मजाल, कि हमारे

रहन-सहन में दखल दे। हमने बात ज्यादा नहीं बढ़ाई, सिर्फ़ इतना कह कर अपना ग़ुस्सा ज़ब्त किया, कि "मायके चली जा, मायके, जो मेरा खेल देख कर तुझे डाह होती है।"'

फिर क्या था, वह भी तो शरीफ़ की बीबी ठहरी, बोली—"तुम्हारे जीते-जी मायके क्यों जाऊँ? हमारा घर है, हमारे बच्चे हैं, एक तुम्हारी लापरवाही से क्या हमारा काम रुक सकता है? ये घर किसकी बदौलत चल रहा है........?"

हम बीच ही में बोल उठे—"हमारी कमाई पर ही इतना घमण्ड!"—इतना कहते हुए हम सरकारी काग़ज़ों का मातम मनाने लगे। बात जहाँ की तहाँ दब गई।

❀ ❀ ❀

दूसरी बार का ज़िक्र है, कि बड़ी लड़की को बिच्छू ने काट खाया। हमारा बड़ा बेटा बहिन का पैर कस कर पकड़े हुए था और वह फ़रमाता क्या है, कि "बाबूजी, जल्दी रस्सी लाओ, नहीं तो ज़हर आगे चढ़ जाएगा।"

हम इधर-उधर नज़र फेंक कर खड़े हो गए, बोले—"रस्सी नहीं मिलती, पकड़े रहो!"

बेटा भी शरीफ़ बाप का था। बोला—"अरे मुँह चलाने से दर्द कम नहीं होगा। ज़रा ढूँढ़िए तो।"

बस, फिर क्या था—हमने पकड़ा लड़के का पैर और तीन पछाड़ ज़मीन पर खिलाई और अपने बिस्तर के हवाले

हो गए ! इधर किसने दवा लगाई, किसने बाँधा, हमें क्या पता ? हम शरीफ़ तो सुख-स्वप्न देख रहे थे !

❀ ❀ ❀

उस दिन बैठे-बिठाए बला आ गई। पानी ज़ोर से गिर रहा था। बीबी के पेट में तेज़ दर्द था; छोटा बच्चा बेतहाशा रो रहा था। कोई बीबी का पेट सेक रहा था, कोई छोटे बच्चे को सँभाले था, कोई दवा को जा रहा था। हम शरीफ़ तो बैठक में आरामकुर्सी पर बैठ कर क़िस्मत को धिक्कार रहे थे! क्या बला है ये बीबी-बच्चों की भी ? अकेले रहना, अच्छा खाना, बस इतना ही हम शरीफ़ की शराफ़त का काम है। बन्दा तो हमेशा अपनी शराफ़त का लिहाज़ रखता है! 'पेट में दर्द है' हुआ करे, क्या ग़ुलाम की तरह दौड़ूँ, हाय-हाय करूँ? औरतों के पेट में दर्द होना तो एक स्वाभाविक बात है। उसीसे तो कुनबे के कुनबे बढ़ते चले जा रहे हैं ! पेट में दर्द न हो तो क्या ? डॉक्टर ने सौ दफ़ा कहा, कि पाँच बजे शाम के बाद खाना मत खाया करो; पर सुनता कौन है ? इधर भी 'सुनता कौन है', हम शरीफ़ तो टस-से-मस नहीं होने के ! मर जा बला से !!

नौकरानी बुलाने आई—"बाबू जी ! मालकिन बहुत बेचैन हैं; ज़रा देखें तो चल कर।"

हम बोले—"तो क्या हम डॉक्टर हैं ? डॉक्टर को बुला कर दिखाओ, अगर इतना पैसा फ़ालतू हो गया हो तो ......!"

हम शरीफ़ किसी के दुख-दर्द में शामिल होना बिलकुल फ़िज़ूल समझते हैं; क्योंकि हाँ में हाँ मिलाना कोई दर्द बँटाना नहीं है! क़ानून, बाहर-भीतर हर मौक़े पर साथ रहता है, बग़ैर क़ानून के क़दम उठाना अपने को आफ़त में फँसाना है!

हम शरीफ़ की शराफ़त के नमूने आए-दिन देखने और सुनने को मिलते हैं, और जब तक हम-जैसे शरीफ़ ज़िन्दा हैं, सुनाते रहेंगे। हाँ, दुनिया में आए हैं, तो कुछ करके जाएँगे। अगर आप लोगों को इन नमूनों से दिलचस्पी है, तो समय-समय पर हम अपनी डायरी पेश कर सकते हैं, जो आप लोग 'हमदर्द' होंगे, तो कुछ ज़रूर सीख लेंगे! और आप लोग भी बाल-बच्चों के झमेले से बच कर अमन-चैन करते नाम कमाएँगे! हम शरीफ़ तो फँस ही चुके हैं। कहावत मशहूर है "गुज़िश्तारा सलावात, आइन्दा रा एहतियात!"
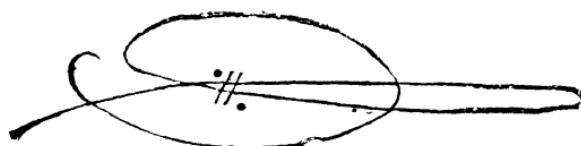
सेल्समैन

कलकत्ता का शहर, पौने आठ बजे सुबह का सुहावना वक़्त, और फ़ोर्ड कम्पनी के शो-रूम में मैं सेल्समैन ! वैसे तो सेल्समैनों का काम भी काफ़ी ज़िम्मेदारी का होता है ; अधिकतर दिन भर बैठे खटमल मारना और मक्खियों से लड़ना ! पर ग्राहक या मौत का कोई ठिकाना भी तो नहीं होता, कि कब बरसाती मेंह की तरह टपक पड़ें । मैं कल ही यहाँ सेल्समैन मुक़र्रर हुआ था, इसलिए अपने हथकण्डे की कारगुज़ारी दिखाने पर उतावला हो रहा था ।

क़िस्मत भी कभी-कभी फूट-सी फट पड़ती है । मैं उन्नति की कल्पना से कल्पना कर ही रहा था, कि देखा एक जापानी बबुए-सी मेम अच्छे कपड़े पहने अन्दर आ रही है । मैंने टाई खींच-खाँच कर ठीक की, पिन दुरुस्त किया व कोट के किनारे खींच ही रहा था, कि उसने आ कर अदा से 'गुड मॉर्निंग' किया । मैं इस उल्टी नीति का आदी न था । कुछ दाल में काला-सा मालूम हुआ, पर फिर सोचा, शायद इसे भी हिन्दुस्तान की

हवा लग गई है। अस्तु, जब उसने टूरिस्ट फ़ोर्ड की ओर निगाह फेरी, तो मेरी बन आई। फ़ौरन हाथ रगड़ते हुए, मुँह की बत्तीसी विस्तार कर बोला—"क्या मैं आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ ?"

वह मीठे स्वर में बोली—"नहीं, नहीं, ज़रा आपको तकलीफ़......।"

मैंने बीच में ही टोक कर कहा—"एकदम नहीं। उसका ज़िक्र ही न कीजिए। निश्चय यह टूरिस्ट ही आपके लिए ठीक पड़ेगी। एकदम नया मॉडल ! सुपर कार !! दुनिया में इसके मुक़ाबिले की कोई है ही नहीं !!

वह धीमे से बोली—"सुपर कार ? ठीक है पर......।"

मैं बीच में ही बोल उठा—"दाम का ख़याल क़तई न कीजिए। हज़ार-पाँच सौ किसी के माई-बाप नहीं होते ; क्या इधर क्या उधर ! शुरू में क़ीमत में किफ़ायत करना गुनाह है। सबसे मुख्य चीज़ कार लेते वक़्त ध्यान में रक्खें, कि वह तेल कितना खाएगी ?"

वह बोली—"हाँ सो तो देखना ही चाहिए, मगर.....।"

मैंने बीच में ही रोका—"ठीक कहा आपने। मुझे ऐसी ही उम्मीद थी। इसका स्ट्रीम लाइण्ड मॉडल तो बस हवा से बातें करता है। फ़ी घण्टे चार आने पेट्रोल की बचत। इस प्रकार दो साल में कार मुफ़्त ; फिर क़ीमत से अधिक बचत ही बचत।

यह तो घण्टे में जितने मील चली जाय, थोड़ा है। आप तो इस मसले को समझती ही होंगी ?"

वह उकताई-सी हो बोली—"हाँ, सो तो मैं कार रख कर देख चुकी हूँ, फिर भी......।"

मैंने रोड़ा अटकाया—"अहा ! यही तो आप ग़लती कर रही हैं। छुटाई-बड़ाई पर मत जाइए। अन्दर जगह काफ़ी है और मज़बूती में तो (मैं साइड बोर्ड के ऊपर तीन फ़ीट उछल कर कूद पड़ा) इसका सानी दूसरी है ही नहीं ! इसमें लङ्काशायर के सान की स्टील स्प्रिंग है, मुरादाबादी क़लई है, अबरक के जोड़ हैं ताकि शॉक (Shock) न लगे। हज़ारों मील चलने पर भी चीं-चपड़ न करेगी। इसी मॉडल में चढ़ कर चेम्बरलेन साहब पीस-मिशन के लिए जाते थे, और कांग्रेस-मैन कांग्रेस के प्रेज़िडेण्ट होने !"

वह प्रभावित हो बोली—"अच्छा ?"

मैंने फूल कर सोचा, पड़ाव मार लिया है, बढ़े चलो। बोला— फिर यह एकदम स्वदेशी भी है। मिल-मालिक, मज़दूर सब स्वदेशी। सब आप ही के देश के। और क़ीमत तो बस न पूछिए ! आजकल घर से घाटा दिया जा रहा है। सेल-प्राइस इसकी पूरे पाँच हज़ार हैं (पर नज़दीक सट कर धीरे से) मैं आपसे क्या छिपाऊँ ? मालिक से कह-सुन कर तीन हज़ार चार सौ चौवन रुपए तीन आने नौ पाई में ही सौदा करा दूँगा।"

इस पर वह घबड़ा कर बोली—"नहीं, मुझे वह कार नहीं चाहिए। मैं तो......।"

पर मैं कब बिना कार बेचे छोड़ने वाला था। फ़ौरन बोला —"माफ़ करिएगा। मैंने आपको अपने और-और मॉडल तो दिखलाए ही नहीं। वह कार नहीं पसन्द है, तो इसकी एट सिलेन्डर सेडान बॉडी को देखिए। बड़ी मनमोहिनी है। दिल ख़ुश हो जायगा। कण्ट्रोल ऐसा सच्चा, कि हवा से बातें करते-करते एकदम डेड-स्टॉप कर दीजिए; क्या मजाल कि पेट का पानी भी हिल जाय। मैं बेबी कार तो......।"

आजिज़ आ कर इस बार वह पन्थ में पहाड़ अटका कर बोली—"अच्छा, तो मैं जाती हूँ। मैंने सोचा था, कि शायद आप मेरे बेबी को खेलने के लिए कोई तस्वीरदार कैटेलॉग दे सकेंगे।"

जमादार, ख़ाँ साहब

हमारे ख़ाँ साहब को जब यह पता चला, कि उनके ससुर साहब ने उनका नाम पलटन में दे दिया है, तो उनकी रूह फ़ना हो गई, और वे फ़ौरन घबड़ाए हुए बेगम साहिबा के पास पहुँचे और बोले—"अरी, ओ नेकबख़्त, ग़ज़ब हो गया। देखो, अपने हमदर्द अब्बा जान की करतूत!! उन्होंने मुझे दीन-दुनिया का नहीं रक्खा। तुझे बेवा बनाने की तरकीब सोच ली; हाय तक़दीर!"—इतना कहते ही ख़ाँ साहब सर पकड़ कर वहीं बैठ गए।

बेगम साहिबा, ख़ाँ साहब की हालत नाज़ुक देख कर परेशान हो गईं और बोलीं—"क्या हुआ, अब्बा ने क्या कर डाला? जल्दी कहो, तुम्हारी बातों ने तो मेरा दिल दहला दिया।"

ख़ाँ साहब बोले—"नेकबख़्त, अभी तो दिल ही दहला है, अब मेरा प्यारा नाम ले-ले कर रोना पड़ेगा।"

इतना सुन कर बेगम साहिबा बोलीं—"ख़ुदा के वास्ते कुछ बताओ तो सही, बात क्या है ?"

ख़ाँ साहब मुँह बिचका कर बोले—"अरी बात क्या है, तुम्हारे प्यारे अब्बाजान ने मेरा नाम पलटन में लिखा दिया है, समझी ! और उस पलटन में, जो बहुत जल्द लड़ाई पर कूच करने वाली है !"

बेगम साहिबा बोलीं—"या अल्ला, मैं तो समझी, कि कोई आफ़त आ गई । तुम भी कैसे मर्द हो ? अजी ख़ुश हो, जब तुम नौकर हो जाओगे, तो मेरे लिए अच्छे-अच्छे कपड़े और जेवर बनवाना !"

यह सुन कर ख़ाँ साहब झल्ला कर बोले—"कपड़े-ज़ेवर गए भाड़ में ! तुझे हरी-हरी सूझती है, यहाँ दिल पर हाथ रख कर देख, मेरी रूह निकलने का रास्ता तलाश कर रही है......!"

वह इतना ही कह पाए थे, कि उनके ससुर साहब आ पहुँचे और बोले—"अरे, यह कैसी मातमी सूरत बनाए है ? एक ख़ुशख़बरी सुनो, तुमको पलटन में जमादार की जगह मिल गई । बड़ा साहब मेरा बड़ा दोस्त है । उसने तुम्हारी फ़ोटो देखते ही बस जमादार की जगह दे दी । तुम अब एक अफ़सर हो गए हो, जल्दी उठो, तुमको अभी जाना है, जल्दी चलो !"

इतना कह कर ससुर साहब ने ख़ाँ साहब को किसी तरह तैयार कराया और पलटन में ले जाकर छोड़ आए।

❀ ❀ ❀

ख़ाँ साहब क्वॉटर में, जो उन्हें पलटन में मिला था, जा कर औंधे मुँह पड़ गए! शाम को परेड पर चलने का बुलावा आया। आपको सब चीज़ें मिल चुकी थीं! आप उन्हें पहन कर तैयार हुए, यह समझ में नहीं आया, कि जमादारी का बिल्ला कहाँ लगता है। कुछ सोचने के बाद आपने जेब में खोंस लिया। जब आप परेड पर पहुँचे, तो साहब ने बिल्ला ग़ायब देख कर पूछा—"वेल् बिल्ला किधर है?"

आपने चट जेब से बिल्ला निकाल कर साहब के सामने पेश कर दिया। साहब ने बिल्ले को कोट में लगाने का हुक्म दिया। आपने उसको कोट में लगा लिया, अब परेड शुरू हुई। खाँ साहब का बुरा हाल था, भारी जूते पैर का कचूमर निकाल रहे थे। अगर साहब 'राइट' कहते, तो आप लेफ्ट पैर उठाते! ख़ुदा-ख़ुदा करके वहाँ से छुट्टी मिली। लुड़कते-पुड़कते क्वॉटर में पहुँचे, अभी बेचारे पूरी तौर से कपड़े भी न उतार पाए थे, कि कहीं से आपको बन्दूक़ चलाने की आवाज़ सुनाई पड़ गई। आवाज़ सुनते ही आप क्वॉटर से निकल कर और सर पर पैर रख कर साहब के बंगले की तरफ़ भागे। रास्ते में आपकी मुठभेड़ एक सूबेदार साहब से हो गई। खाँ साहब को परेशान देख कर उसने उनका हाल पूछा। खाँ साहब बोले—

"न मालूम कौन फ़ायर कर रहा है। मालूम पड़ता है, कुछ गड़बड़ हो गया है।"

सूबेदार साहब बोले—"जनाब, सिपाही लोग चाँदमारी कर रहे हैं। कल आप को भी करनी पड़ेगी।"—इतना कह कर सूबेदार साहब ने रास्ता लिया, और खाँ साहब मुर्दा फूँक कर लौटने वालों की तरह क्वॉटर में लौट आए और औंधे-मुँह चारपाई पर लेट गए!

दूसरे दिन खाँ साहब को भी चाँदमारी के लिए जाना पड़ा! हाथ में बन्दूक़ लिए आपके हाथ-पैर ऐसे काँप रहे थे, जैसे की मिरगी वालों के काँपते हैं! आपको एक जगह दिखा कर निशाना लगाने को कहा गया। आपके हाथ बुरी तरह काँप रहे थे, आपने हिम्मत की और आँख बन्द करके बन्दूक़ का घोड़ा दबा दिया, इधर घोड़ा दबा और दूसरी तरफ़ शोर शुरु हो गया। आपने आँख खोल कर जो देखा, तो मालूम हुआ, आपकी गोली से साहब बहादुर का टोप गायब हो गया है! यह देख कर खाँ साहब की पुतलियाँ चढ़ने लगीं। इतने में साहब बहादुर गरजते हुए उनके सर पर चढ़ आए और कड़क कर बोले—"यू मैन, तुम हमको मारना चाहता था! हम तुमको जेल भेजेगा।"

जेल का नाम सुनते ही, खाँ साहब को चारों तरफ़ अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देने लगा। आपने चट अपना साफ़ा उतार कर साहब के पैर पर रख दिया, और रो-रो कर माफ़ी

माँगने लगे ! पर साहब बहादुर ने आपको एक हफ़्ते की दलेल की सज़ा दे ही डाली। ख़ुदा-ख़ुदा करके आपने एक हफ़्ता मिट्टी ढो-ढो कर काटा। आठवें दिन फिर आप परेड पर पहुँचे। परेड पर हुक्म मिला, कि कल सुबह पलटन यहाँ से बीस मील पर चाँदमारी के लिए जाएगी। बाहर जाने का नाम सुनते ही आप का बुरा हाल हो गया। आपने साहब से बहुत मिन्नतें कीं, कि उनको बाहर न ले जाया जाय। पर साहब की डाँट ने उनकी बाक़ी रही-सही हिम्मत का भी दिवाला कर दिया। दूसरे दिन सुबह पलटन जंगल में जा पहुँची। शाम को आप बदक़िस्मती से चहलक़दमी के इरादे से बाहर निकल गए। जब आप लौटे, तो अँधेरा हो गया था। आप जैसे ही पलटन के हाते के अन्दर आने लगे, कि पहरे के सिपाही ने ज़ोर से कहा-- "हॉल्ट, हू कम्ज़ देयर" (Halt, who comes there?) यह हुक्म सुनने का आपका पहला ही मौक़ा था। आप ऐसे घबड़ा गए कि फ़ौरन भाग खड़े हुए। आपको भागता देख सिपाही ने हवा में फ़ायर किया। फ़ायर की आवाज़ ने आपको और तेज़ दौड़ा दिया। इधर फ़ायर की आवाज़ से सिपाही वग़ैरह सब ख़ीमों से बाहर आ गए और चारों तरफ़ भागने वाले की तलाश शुरू हुई। और तो कोई नहीं मिला, पर पास ही की एक झाड़ी के अन्दर मिले खाँ साहब, जिनका कि डर के मारे बुरा हाल था। पूछने-पाछने पर पता चला, कि आप ही सिपाही की

आवाज़ से भाग खड़े हुए थे। तीसरे जमादार और सिपाहियों को आपकी हिम्मत का ख़ूब पता चल गया! उन लोगों ने इनको बेवक़ूफ़ बनाने की सोची, और स्कीम तैयार कर डाली। रात को जब ख़ाँ साहब अपने ख़ीमे में सो रहे थे, कि एक सिपाही आप की चारपाई में रस्सी बाँध आया, और बाहर जो सिपाही खड़े थे, उन्होंने खींचना शुरू किया। चारपाई जब हिली, तो आप की आँख खुल गई। धीरे-धीरे चारपाई खसकते देख आप उछल कर चारपाई पर खड़े हो गए और कूद कर बाहर भागे! जैसे ही आप बाहर निकले, कि सिपाहियों ने पकड़ लिया और बोले—"यही ख़ाँ साहब हैं, लाओ बन्दूक़ जल्दी से!" इतना सुनते ही ख़ाँ साहब डरे और झटका दे कर बेतहाशा भागे। सुबह तमाम पलटन में और आस-पास ख़ाँ साहब की बहुत तलाश हुई, पर कहीं पता न चला।

इधर ख़ाँ साहब पसीने से तर बेगम साहिबा की सलवार पकड़े गिड़गिड़ा रहे थे, कि ए बेगम! दिन भर मैं तेरी जूती साफ़ किया करूँगा, पर अब पलटन में मत भेजना!
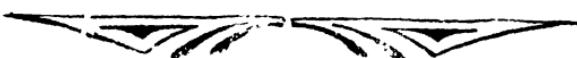
भाभी जान का कमाल

हर एक नवयुवक के जीवन मे एक अवस्था ऐसी आती है, जब वह अपनी दिली दुनिया में एकनई दिल्ली बसाने की फ़िक्र करता है; जब हर 'दुष्यन्त' अपनी 'शकुन्तला' के स्वप्नों में अलमस्त रहता है। जब बीसवीं सदी का प्रत्येक मजनूँ अपनी लैला के लिए कॉलेज की लाइब्रेरी, पार्क, एतवार और सनीचर के दिन सिनेमा-घर, और शाम के समय सिविल लाइन में चक्कर काटा करता है। और, वह दिन भी उनके लिए विशेष महत्त्व का होता है, जब वह सुनता है, कि उसके विवाह का सिलसिला छिड़ रहा है। भाभी और बहन चिढ़ाती हैं— 'भइया, चिट्ठी आई है। जानते हो, कहाँ से आई है? मिठाई खिलाओ तो बताएँ!" फिर एक हफ़्ते बाद —"भइया, फ़ोटो आई है। भला, किसकी फ़ोटो? जैसे चाँद ज़मीन पर उतर आया हो!"

यह तो ख़ैर, साधारण-सी बात है; किन्तु उस ग़रीब की हालत को क्या कहिए, जो ख़ुद तो किसी और के प्रेम

की चक्की में पिस रहा हो, और उसके पिता जी किसी अन्य कुमारी को उसके सिर मढ़ रहे हों!

अब आपकी समझ में आने लगा होगा, कि आखिर यह भूमिका क्यों? आपका ख़याल सही है। हम भी किसी की ज़ुल्फ़ के पेचों के शिकार बन चुके हैं! एक तो यों ही यदा-कदा हमारे हृदय रूपी भूतल पर प्रेम रूपी भूकम्प का हमला हुआ करता था। फिर, वह सूरत! प्राचीन कवियों की तरह उसकी तारीफ़ में हम आपके सामने एक ज़िन्दा अजायब-घर या 'फ़्रूट-मार्केट' तो रख नहीं सकते, कि उसकी नाक तोते की तरह है, आँखें हिरन की तरह हैं, ओंठ बिम्बा फल की तरह हैं, इत्यादि। बस, इतना ही कहना यथेष्ट होगा, कि हम उससे उतनी ही मुहब्बत करते हैं, जितनी कि हिटलर अपनी मूँछ से, गाँधी बाबा अपने चर्खे से और जिन्ना साहब अपने पाकिस्तान से करते थे!

वह भी आज से नहीं, क़रीब छः महीने हुए, हम बाइसिकिल पर जा रहे थे, उधर से वे आ रही थीं सामने से। दूसरे ही क्षण हमने देखा, कि हम ज़मीन पर थे, और दो बाइसिकिलें एक-दूसरे का आलिंगन कर रही थीं! आपसे कोई चोरी नहीं, वह सूरत देख हम तो टकराना भूल ही गए थे, लेकिन उन्होंने कहा—"अन्धा कहीं का!"

हम बोले—"कोसिएगा तो आप इत्मीनान से बाद में। पहले यह देखिए, कि आप को चोट तो नहीं लगी।"

यह सुन कर वह उठ खड़ी हुई। थोड़ा-सा लँगड़ाने लगीं। देखा, पाँव में थोड़ी-सी खरोंच आ गई थी। इस अवसर पर हमने वही बहादुरी दिखाई, जो कि सिनेमा का हीरो दिखाता; अर्थात् फ़ौरन् ही धोती से कपड़ा फाड़, पास ही बम्बे से भिगो कर ले आए और कहा—"लाइये बाँध दूँ।" इस पर भी क्या कुछ ग़ुस्सा बाक़ी रह जाता? फिर हम अपनी बाइसिकिल उठाने लगे, तो हाथ से छूट गई। दुबारा उठाने की कोशिश की, परन्तु उठाई न गई बेतहाशा, मुँह से एक हल्की चीख़ निकल गई। हमारे हाथ में बेहद दर्द हो रहा था। उन्होंने व्यग्रता दिखाते हुए कहा—"आपको ज्यादा चोट लग गई!"

"नहीं, कोई बात नहीं। ठीक हो जायगा।"

वे बोलीं—"नहीं, आप फ़ौरन ही अस्पताल जाइए। कहीं हड्डी तो नहीं टूट गई।"

हमने कहा—"आपको अलबत्ता टिंचर आइडिन लगाने की ज़रूरत है। कहीं घाव पक न जाए।"

वे मुस्कुरा कर—जैसे बिजलियाँ चमकीं—बोलीं—"चलिए, दोनों चलें।"

साइकिलें, ताँगे पर लादी गईं, और चले अस्पताल! हमारी ओर उनकी सहानुभूति और भी बढ़ गई थी, जब उन्हें मालूम हुआ, कि हमारी कोहनी की हड्डी उखड़ गई है। परस्पर परिचय हुआ। हमारा रोआँ-रोआँ ख़ुश था। चलते समय उन्होंने फिर कहा-"आपको चोट ज्यादा आ गई!"

हमने कहा—"अच्छी साइत से हमारी बाइसिकिल टकराई, कि आपसे परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अब यह बताइए, कि यह देखने के लिए, कि आपकी चोट अच्छी हो गई, हमें आपके दरे-दौलत पर हाज़िर होने की इजाज़त है?"

लज्जानत हो मुस्कुरा कर उन्होंने कहा—"नमस्ते!"

उस समय की उनकी लज्जानत आँखें और वह मुस्कुराहट हम पर विञ्चेस्टर राइफ़िल-सा काम कर गई। यह थी हमारी शुरूआत!

किन्तु, हमारी सोने की दुनिया जब मिट्टी में मिल गई, जब हमने सुना, कि अब हमारे विवाह की बातचीत हो रही है। फिर खबर आई, कि लड़की की फ़ोटो भी आई है। फिर सुना, कि पिता जी ने हमें उसके सिर मढ़ने का इरादा भी पक्का कर लिया है। हमारी स्थिति वही हो गई, जो इस समय भारतवर्ष की है अर्थात् बिना हमारी स्वीकृति के हम बेलिगेरेण्ट (Belligerent) क़रार दे दिए गए!

अब हमारे सामने सबसे बड़ा मसला यह था, कि प्रेयसि रूपी स्वराज्य पाने के लिए, पिता जी रूपी वॉयसरॉय के पास किस सर तेज या जयकर को सन्धि के लिए भेजा जाय। ख़ुद तो पिता जी से कुछ कहने की हिम्मत न थी, और न हमें विश्वास ही था, कि वे हमारी बात मान जाएँगे; बल्कि वे अपना इरादा जल्दी ही पूरा कर दिखावेंगे। माता जी से भी असली बात बता नहीं सकते थे। अस्तु, इस मामले

में हमने भाभी को ही अपना हथियार और सलाहकार बनाया। वे राज़ी भी हो गईं। हमने उन्हें साफ़-साफ़ जता दिया था, कि हम अगर शादी करेंगे तो उन्हीं से, अन्यथा नहीं।

भाभी ने कहा—"भइया, तुम पहले उनसे हमारा परिचय करा दो। दोस्ती के बहाने हम उन्हें घर ले आएँगे। अगर वे माता जी को ज़रा भी प्रभावित कर सकीं, तो हम उनको राज़ी करने की कोशिश करेंगे। अगर माता जी को अपनी तरफ़ मिला लिया, तो फिर तुम्हारा काम आसानी से हो जायगा!"

एक दिन हम नहा कर ग़ुस्लख़ाने से निकले ही थे, कि देखा कि वे और भाभी दोनों मोटर से उतर रही हैं और दोनों ड्रॉइंग-रूम की तरफ़ आ रही हैं। चूँकि हम उस वक़्त सिर्फ़ तौलिया लपेटे हुए थे, इसलिए सामने पड़ भी नहीं सकते थे, चट से फिर ग़ुस्लख़ाने में दाख़िल हो गए। करते भी क्या? उसी रास्ते से हो कर हम अपने कमरे में जा सकते थे। और बाहर यों नहीं निकल सकते थे, क्योंकि हम ग़ुस्लख़ाने में साथ धोती नहीं ले गए थे। हमारी मुसीबत का अन्दाज़ा लगा सकते हैं आप? हम उस काल-कोठरी में बन्द थे और वह भी अपनी राज़ी से।

हम बैठे-बैठे कोस रहे थे उस मकान बनाने वाले को, जिसने इस बेढंगे तरीक़े से इसको बनाया था और फिर भाभी की अक़्ल को, कि वे भी वहाँ जमी बैठी थीं, यह नहीं, कि ज़रा

देर के लिए अपने कमरे में ले जातीं। और अब देखा, कि माता जी भी वहाँ आ गईं, हमारी रिहाई की सारी उम्मीदें खत्म हो गईं! मजबूरन दरवाजे की दरार से झाँक कर ही सन्तोष कर लेना पड़ा। उधर हमारी ढूँढ़ाई मच रही थी। हम डर रहे थे, कि कहीं किसी को यह याद न आ जाय, कि हम नहा रहे हैं, नहीं तो इसी हालत में निकलना पड़ेगा। लेकिन ख़ैरियत यह हुई, कि वे समझीं कि हम कहीं बाहर चले गए हैं।

किन्तु, इसका नतीजा हमें भुगतना पड़ा, जब हम शाम को उनके यहाँ पहुँचे। वे बाहर बरामदे ही में बैठी हुई थीं। हमें देख कर अन्दर चली गईं। फिर नौकर से कहलवा दिया, कि उनके सिर में सख्त दर्द है। इस समय नहीं मिल सकतीं। हमने सोचा, कि हे ईश्वर, यह कैसा सिर-दर्द, कि हमारी सूरत देखते ही पैदा हो गया! अभी तो भली-चंगी बाहर बैठी थीं। हम माता जी के पास पहुँचे।

वे बोलीं—"दर्द–वर्द तो कुछ भी नहीं। अपने कमरे में बैठी होगी, जा कर देख लो।"

इजाज़त मिल ही गई थी। हमने वहाँ जा कर पूछा—"मैं अन्दर आ सकता हूँ?"

वे बोलीं—"क्या नौकर ने आपको नहीं बताया, कि मेरे सिर में दर्द हो रहा है?"

हमने उत्तर दिया—"हम माफ़ी माँगने आए थे, कि कल जब आप मेरे घर तशरीफ़ ले गईं थीं, तो हम बाहर चले गए थे !"

अब तो उनकी वाणी में बेहद आग थी। कहने लगीं—"क्यों झूठ बोलते हैं आप? आप घर पर ही थे। मैंने आपके गाने की आवाज़ सुनी थी। लेकिन उससे क्या? मैं आपसे मिलने थोड़े ही गई थी। आप जाइए, मेरे सिर में बहुत दर्द हो रही है।"

हमें याद आया, कि नहाते वक़्त हम चीख़-चीख़ कर गा रहे थे। तबीयत तो आई, कि हम अपने गले को ही घोंट डालें। रास्ते भर अपनी तक़दीर को कोसते आए, कि हमारी जन्म-कुण्डली के सातवें स्थान पर क्यों ख़ामख़्वाह केतु जी अपना कौतुक दिखा रहे हैं?

घर आए तो भाभी हमें सञ्जीदा देख कर पूछने लगीं—"क्या बात है?"

"हम उबल पड़े—"या तो तुम माता जी से साफ़-साफ़ कह दो, कि हम उस लड़की से शादी नहीं करेंगे। वरना हम घर से निकल जाएँगे।"

"आख़िर बात क्या है? क्यों आग उगल रहे हो? शान्ति से बताओ।" जब ज़रा तबीयत दुरुस्त हुई, तो हमने सारा क़िस्सा सुनाया। बजाय हमसे सहानुभूति दिखाने के, भाभी ख़ुश हो रही थीं। कहने लगीं—"भइया, तुम अन्धे हो, अन्धे।

अच्छा, अगर हम तुम्हारे दोनों काम पूरे करा दें, तो हमें क्या इनाम दोगे ?"

"क्यों जले पर नमक छिड़क रही हो, भाभी ?"

"दस-दस रुपए की शर्त, और वह भी इस हफ़्ते के अन्दर !"

"कुछ जादू-टोना करोगी क्या ?"

तुम्हें इससे क्या ? लेकिन हमारी एक बात माननी पड़ेगी। जैसा हम कहें, वैसा ही करना होगा।"

"माना।"

"तो, कल शाम को चार बजे, बड़ी-सी मूँछ और छोटी-सी दाढ़ी लगा कर तैयार रहना। ऐसी सफ़ाई से लगाना, कि नक़ली न मालूम पड़े। समझे ?"

"यह क्या तमाशा है ? हमें नुमाइश में रख कर टिकट लगाने का इरादा है क्या ?"

"हमारी शर्त याद रखना, नहीं तो हमने हाथ धोए !"

मरता क्या न करता ! बहुरूपिया बन कर चार बजे तैयार हो गए। देखा, भाभी इन्तज़ार कर रही थीं। पहुँचे भी कहाँ, फ़ोटोग्राफ़र की दूकान पर। फ़ोटो उतारी गई !

पाँच-छः दिन बाद भाभी सजी-सजाई कमरे में आईं। कहने लगीं—"तैयार हो जाना घण्टे भर में। बाहर चलना है।"

"क्यों, हमें फिर बन्दर बनाओगी क्या !"

"नहीं, जितनी अच्छी तरह सजना हो, सज लेना ?"

"आखिर कहाँ घसीटे ले जा रही हो ?"

इसका उत्तर महज़ यह था, कि तैयार रहना। घण्टे भर बाद सुना, कि भाभी चिल्ला रही हैं भइया ! ओ भइया ! हम बाहर आए, देखा कि भाभी मोटर में बैठी हुई हैं, और साथ में वे भी थीं। उन्होने हमें देख कर गर्दन मोड़ ली, शायद यह जताने के लिए, कि उन्हें यह न मालूम था, कि हम भी साथ चल रहे थे।

इधर तो हमारे दिल में ऐसी धड़कन हो रही थी, कि मानों बनारस की सड़कों पर इक्के दौड़ रहे हों, और उधर भाभी की यह शरारत, कि न मालूम कहाँ की बेमतलब की बातें गढ़ रही थीं।

घूमते-घामते पार्क में पहुँचे। भाभी का हुक्म हुआ, कि यहीं बैठा जायगा। बैठे ! इतने में भाभी ने हमें, एक चिट्ठी निकाल कर दी, और कहा पढ़ो। चिट्ठी हमारे पिता जी के नाम थी। मुख्तसर-सी चिट्ठी थी। यह लिखा था, कि हमें आपके लड़के से शादी नहीं करनी।

"कमाल किया भाभी !"—हमारे मुँह से बेतहाशा निकल पड़ा—"यह तुम्हारी ही कारस्तानी मालूम पड़ती है ?

भाभी ने उत्तर दिया— भइया, हमने तुम दोनों (ज़रा ज़बान की चातुरी देखिए) के पीछे जेल जाने का काम किया है। तुम तुले हुए थे, कि उस लड़की से शादी नहीं

करेंगे। इसीलिए हमने तुम्हें बहुरूपिया बनाया था, उस दिन! तुम्हारी फ़ोटो, और पिता जी के नाम से चिट्ठी लिख हमने वहाँ भेज दी। उन्होंने भी सोचा होगा, कि ऐसे मुच्छन्दर! बदशक्ल लड़के को कौन अपनी लड़की ब्याहे, उन्होंने मनाही लिख भेजी। और भैया! तुम जानते हो, ये तुमसे उस रोज़ क्यों नाराज़ हो गई थीं?"

फिर उनसे पूछा—"बता दें?"

उन्होंने मुस्कुरा कर, शर्म से गर्दन नीची कर ली।

ऐं! इस मुस्कुराहट का क्या मतलब था? हमारे दिल की धड़कन जैसे बन्द हो गई!

भाभी बोलीं— जब ये उस दिन हमारे यहाँ आई थीं! माता जी ने इन्हें बताया था, कि तुम्हारा विवाह तय हो गया है। हमने इनके चेहरे का उतरना देख लिया था। देखो भइया! हमने माता जी के कान में पहले ही भनक डाल दी है, अगर इस समय भी तुम कुछ न कह सके, तो कायर ही रहोगे। और हाँ, मैं मोटर लिए जा रही हूँ। थोड़ी देर में भेज दूँगी। मुझे घर जाना ज़रूरी है।"

अब इससे ज्यादा आपको कुछ और जानने का हक़ नहीं है!

घनश्याम की सजनी

घनश्याम !....घन....श्याम !!...आज मेरे प्राण तुम्हारे ही हाथ में हैं। तुम एक ग़रीब मजदूर और मैं एक लखपती हूँ तो क्या; लेकिन, आज...आज उसे मेरे पास नहीं पहुँचा जाते हो, तो सच जानो, कल मेरी लाश इस घर से निकलेगी। फिर रोज़ तुम्हें शराब कौन पिलाएगा ? किसके रुपए से मज़ा उड़ाओगे, और मुफ़्त का डेरा रहने के लिए कौन देगा ? घनश्याम...मेरे प्यारे दोस्त ! लो, एक गिलास और लो। देखो, कितनी अच्छी शराब है !

प्यारे शाह के हाथ से शराब का गिलास ले कर घनश्याम गट्-गट् उतार गया।

घनश्याम गोरखपुर का रहने वाला था। प्यारे शाह के गोले में चावल के बोरे ढोया करता था। अच्छा लम्बा-तगड़ा जवान, उम्र २५ के लगभग; बात बनाने में चतुर और हँसमुख; इसी कारण वह प्यारे शाह से बहुत कुछ हिल-मिल गया था। गोरखपुर से जब उसकी नवविवाहिता पत्नी, सुखिया,

का पत्र आता, प्यारे शाह से ही उसे पढ़वा कर सुना करता और जवाब भी उन्हीं से लिखवा कर वह भेजा करता था। प्यारे शाह के आग्रह पर ही उसने उसे अपने पास बुला लिया था। चिथड़ों में छिपे सुखिया के निखरे हुए सौन्दर्य को देख कर शाह जी अवाक् रह गए। उन्होंने अपना जाल फैलाना शुरू किया। सुखिया के रहने के लिए अपना एक घर बिना किराए के दे दिया। प्रति मास सात रुपए वह उसे इसलिए दे दिया करते थे कि उनके छोटे लड़के को खेलाया करे। यह सब केवल घनश्याम के आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए नहीं, किन्तु कुछ और ही मतलब से किया गया था। पर, इतना करने पर भी, जब सुखिया ने उनके प्रति किसी प्रकार का आकर्षण अथवा कृतज्ञता का भाव न दिखाया, तो प्यारे शाह निराश हो चले। बल-प्रयोग के साधनों से युक्त रहने पर भी, घनश्याम की याद आते ही उनके हाथ-पैर ढीले पड़ जाते थे। फिर भी शाह जी हिम्मत हारने वाले नहीं थे। इस जीवन में ऐसे-ऐसे कितने बीहड़ काम वह सफलतापूर्वक कर गुज़रे थे। उन्होंने अब घनश्याम पर अपना जादू डालना शुरु किया था। अब उसी से जब-तब शराब मँगाते और कुछ पैसे दे देते। अब तो शाह जी अपनी पाशविक वासनाओं को शान्त करने के लिए जो कुछ भी करते, उसमें घनश्याम को भी शामिल रखते। धीरे-धीरे उसे भी शराब पिलाने लगे। अब वह भी प्यारे शाह के साथ पतन के मार्ग पर अग्रसर हुआ। शाह जी

इतने दिनों के बाद अपने कुचक्र में सफल होने की आशा कर पाए थे। घनश्याम अब एक पतित प्राणी था। शराब पिला कर, उसकी मुट्ठी गर्म कर जो चाहें आज उससे वह करा सकने की उम्मीद करते थे।

प्यारे शाह ने हाथ से गिलास लेते हुए कहा—"कैसी शराब है, दोस्त ?"

"बहुत बढ़िया, मालिक !"

"बस आज ही तुम्हारी वफ़ादारी का इम्तहान है, घनश्याम ! देखो, काम कर दो, तो फिर ज़िन्दगी-भर का दुःख मिट जायगा, कल ही से मज़दूरी छोड़ दोगे और बैठे-बैठे रोटियाँ तोड़ा करोगे। लो एक गिलास और लो !"

घनश्याम ने ललचाई आँखों से गिलास की ओर देखते हुए उसे ले लिया और एक साँस में खाली कर उसे एक ओर रख दिया। शाह जी ने फिर कहना शुरू किया—"दोस्त, तुम्हारी ज़िन्दगी में एक ओर दुःख है, दूसरी ओर मौज ! आज जो चाहो, खरीद लो। लो, इस काम के इनाम की रक़म मैं पहिले ही दिए देता हूँ !"

शाह जी ने टन्-टन् कर पच्चीस रुपए घनश्याम के सामने गिन दिए।

२

घनश्याम रुपए ले कर जब शाह जी के घर से कुछ दूर चला गया, तो खड़ा हो कर एक बार ख़ूब खिलखिला कर

हँसा। फिर बड़बड़ा उठा—"बड़ा पतित है! मुझी से कहता है कि अपनी औरतया को पहुँचा दो!! मुखिया सुने, तो झाड़ू से उनकी खबर ले, और मुझे वह-वह सुननी पड़े कि बस...!!"

घनश्याम घर की ओर बढ़ा। शीतल हवा के झोंके रह-रह कर उसके सिर के लम्बे-लम्बे बालों को सहला जाते थे। घनश्याम कुछ सोच न सका कि क्या करना चाहिए। यह तो निश्चित था कि कल वह शाह जी द्वारा अपने डेरे से निकाल दिया जाएगा, और इस शहर में निराश्रय हो जाएगा। नहीं, इतने ही पर वह दम न ले लेगा, बड़ा दुष्ट है! ज़रूर कुछ बखेड़ा खड़ा करेगा। मुमकिन है, चोरी का झूठा इलज़ाम लगा कर पुलिस के हवाले कर दे, और उसके पीछे में सुखिया की ओर क़दम बढ़ावे। और नहीं, तो दो-चार .गुण्डों को रुपए दे कर, जब कभी सुखिया अकेली हो, उसे पकड़ मँगवावे। शाह को वह .खूब जानता है। वह कब क्या सोचता है, यह भी वह बतला सकता है। उससे बैर मोल ले कर आरा-जैसे शहर में खाना-कमाना मुश्किल है।

घनश्याम एकाएक चिन्तित हो उठा। लाख सोचने पर भी शाह जी के चंगुल से निकलने का उसे कोई उपाय न सूझ पड़ा। इसी उधेड़-बुन में वह घर पहुँचा। सुखिया इन्तज़ार में जगी बैठी थी। जाते ही पूछ बैठी—"आज कहाँ इतनी देर की? शाम को बनी रसोई क्या अब तक गर्म रहती है!"

"लो ये रुपए! यह तुम्हारी फ़ीस है!! आज रात को शाह जी ने तुम्हें अपनी बैठक में बुलाया है।

सुखिया सन्नाटे में आ गई, वह कुछ न समझ सकी; अवाक् पति की ओर देखती रही। जब उसने पति को नशे में चूर देखा, और बातें कुछ समझ में आईं, तो वह आवेश से काँपती हुई बोल उठी—"देखो, इस तरह की बातें मत किया करो। अगर अपना और अपने उस 'मालिक' का भला चाहते हो, तो फ़ौरन ये रुपए उसे वापस कर आओ, और नौकरी को भी लात मारते आओ! समझे न!!"

इसके बाद उसके हृदय का आवेग आँखों की राह बह निकला।

घनश्याम ने जो कुछ कहा था, महज़ मज़ाक़ में। सुखिया को शाह के यहाँ वह भेजे या वहाँ वह जाय, ऐसी कोई बात उसके दिल में न थी। उसे अब बड़ा अफ़सोस हो रहा था कि उसने इस बात का ज़िक्र ही क्यों उसके सामने किया। वह सुखिया को लड़खड़ाती आवाज़ में समझाने लगा—कि उसने रुपया ले लिया है, तो क्या इसी से वह इतना पतित हो गया।

बाहर सायबान में घनश्याम के चार-पाँच मज़दूर साथी सो रहे थे। वे भी गोरखपुर के थे। रोने की आवाज़ सुन कर वे अन्दर आ गए। घनश्याम ने, जो कुछ हुआ था, साफ़-साफ़ कह सुनाया। वे घनश्याम पर, शाह जी का साथ

करने के कारण, .खूब बिगड़े। एक ने सलाह दी कि यह डेरा छोड़ दो; सुखिया को, जहाँ तक जल्दी हो, घर पहुँचा आओ; लेकिन औरों ने यह बुज़दिली समझा। लोग तरह-तरह की तरकीबें बताने लगे। अन्त में फेकना ने कहा—"अगर मुझे पाँच रुपए दो, तो आज ही ऐसा उपाय कर दूँ कि शाह ससुरे की नानी मरे, जो कभी सुखिया की ओर नज़र उठा कर भी देखे। साथ ही तुम से कोई बैर का कारण भी नहीं रह जायगा!"

"लो, अभी लो! पाँच क्या मैं सात देता हूँ! कोई ऐसा उपाय कर दो, तो इस .खुशी में सबको मैं भर पेट मिठाई खिला दूँ। आख़िर ये पच्चीस रुपए किस काम आएँगे!"—यह कहते हुए घनश्याम ने सात रुपए फेकना के हाथ में गिन दिए।

३

रात के ग्यारह बजे का समय है। फीकी चाँदनी चारों ओर छिटकी है। चौक पर एक-आध पान की दूकान को छोड़ कर शहर की दूकानें बन्द हो गई हैं। सड़कें निर्जन और सुनसान हो रही हैं। घनश्याम लम्बे-लम्बे डग डालता हुआ प्यारे शाह के गोले की ओर चला जा रहा है। पीछे-पीछे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित तथा पुष्ट शरीर वाली एक मँझोले क़द की स्त्री भी तेज़ी से साथ-साथ चल रही है।

घनश्याम के पहुँचते ही शाहजी ने उसे छाती से लगा लिया और कहा—"जीते रहो दोस्त !!"

'सरकार, बड़ी मुश्किल से आई है। ज़रा होशियार रहिएगा !"

"अच्छा, तो अब तुम जाओ। मैं इस फ़न में उस्ताद हूँ। मना लूँगा।"—शाह जी उस रमणी की ओर ललचाई आँखों से देखते हुए बड़ी बेसब्री से बोले।

घनश्याम उस निर्जन अहाते से निकल कर बाहर फाटक पर बैठ गया। वह स्त्री घूँघट काढ़े थी इसलिए शाह जी अच्छी तरह उसका चेहरा देख नहीं पाते थे। वे काँपते हुए हाथों से उसका घूँघट हटाने को बढ़े कि उसने झपटकर लैम्प बुझा दिया। कमरे में बाहर की चाँदनी के कारण एक धुँधला-सा प्रकाश रह गया, जिसमें कोई चीज़ साफ़ नहीं दिखाई पड़ सकती थी।

पहिले तो उस स्त्री ने शाह जी को धर्म और नीति क उपदेश किया और यह भी बता दिया कि मैं तुम्हें समझाने आई हूँ। मुझसे छेड़-छाड़ करोगे, तो ठीक नहीं होगा। पर शाह जी उसकी हर एक हरकत को नखरे में शुमार करते गए। आखिर उनसे जब नहीं रहा गया, तो भद्दे शब्दों में उसका सम्बोधन करते हुए उससे लिपट गए।

किन्तु यह शाह जी के लिए बड़ा महँगा पड़ा। उस स्त्री ने इस तरह उन्हें झकझोर दिया कि वे चारों खाने चित्त गिरे। फिर तो लगी उनकी वह खबर लेने कि शाह जी का नशा न

जाने कहाँ भाग गया। लगे 'बाप! बाप!!' चिल्लाने। लेकिन उस निस्तब्ध रात में सुनता ही कौन था। जब कभी शाह जी दरवाज़े से निकल कर भागना चाहते, तब वह उन्हें पकड़ कर फ़र्श पर दे मारती। उसने उन्हें इतना पीटा कि आख़िर फ़र्श पर पड़े कराहने लगे।

❀ ❀ ❀

दूसरे रोज़ सुबह सब ने सुना कि शाह पर डाकुओं ने हमला किया था। वे कुछ ले तो नहीं गए, लेकिन उन्होंने बेचारे शाह की आधी जान ले ली। दूसरी ओर, शाह जी मन-ही मन सुखिया को गालियाँ दे रहे थे। किन्तु यह किसे खबर थी, कि न चोर आए थे, न डाकू, न सुखिया का ही कोई क़सूर था; बल्कि यह सारी करामात तो फेकना की थी, जो एक रात के लिए घनश्याम की सजनी बन कर शाह का मनोरञ्जन करने गया था!

हारने का शुकराना

बाबू खुशवक़्त राय के लिए सचमुच ज़िन्दगी में कभी बुरे दिन नहीं आए। आपका शुमार उन चलते-पुर्ज़े कायस्थों में है, जो लहर गिन कर भी रुपयों की गठरी जमा कर लेते हैं। आप ज़िला रायबरेली में वकालत करते हैं और क़ानूनी उलझनों में बिना माथा-पच्ची किए हुए खासी रक़म कमा लेते हैं और कभी वकालत के पेशे की निन्दा नहीं करते। आप नज़ायर के क़ायल नहीं हैं, और न उन्हें ढूँढ़ने के लिए क़ानूनी रिसालों में ग़ोते लगाते हैं। मवक्किलों से फ़ीस माँगना आप अज़ाब समझते हैं। कभी-कभी उन्हें घर जाने के लिए किराए के पैसे भी अपनी तहवील से दिला देते हैं। फिर भी आपकी आमदनी औसत दर्जे के वकीलों से कहीं ज्यादा है। उसका रहस्य हम आप नहीं जान सकते, और न जानने की कोशिश ही करनी चाहिए। दूसरे वकीलों के यहाँ हमने मवक्किलों को जीत कर उतना उत्साहित होते नहीं देखा, जितना बाबू .खुशवक़्त राय के मवक्किलों को हार

कर उत्तेजित होते देखा है। मुक़द्मों का जीतना आप अशुभ समझते हैं, क्योंकि जीतने पर मुक़द्मेबाज़ी की इति-श्री हो जाती है। हारना आप अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि हारने से अपील की निगरानी का और कम से कम तजवीज़ सानी का दरवाज़ा खुल जाता है। यहाँ तक, कि दुनिया ने जीतने का शुकराना सुना होगा, पर हमको एक ऐसा केस मालूम है, जिसमें बाबू ख़ुशवक़्त राय ने हारने का शुकराना लिया है, और मवक्किल ने ख़ुशी तथा बड़े ताव से वह शुकराना अदा भी किया।

लाल साहब बहोरा रायबरेली के प्रसिद्ध रईस हैं। काँग्रेसी हलचल के पहले आपके इलाक़ा से हस्ब-ज़रूरत रुपयों की वर्षा हुआ करती थी। केवल बीस हज़ार के मुनाफ़े में पाँच मोटरें, तीन जोड़ियाँ और दो हाथी दरवाज़े पर झूमा करते थे। टमटम और बहलियों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। बेदख़ली बन्द हो जाने से असमय नज़रानों की रक़म जाती रही, इसलिए इधर तीन बरस के अन्दर हाथी बिक गए, और मोटरें ऑर्डर में नहीं रहीं, फिर भी उनकी आधी दर्जन ठठरियाँ मोटरख़ानों की शोभा बढ़ा ही रही हैं, और देखने वाले अनायास कह पड़ते हैं, "खण्डहर बता रहे हैं, इमारत अज़ीम थी।" लाल साहब का ताल्लुक़ एक अहीरिन से, ब्रजभाषा में कहिए एक गोपिका से, हो गया था और उसके लिए लाल साहब ने एक 'महल' बनवाने के वास्ते

महज़ २५०) रु० का पत्थर मँगाया था। रियासत के क़ायदे के अनुसार पत्थर की क़ीमत अदा नहीं हुई थी, हालाँकि लाल साहब ने तक़ाज़े के वक़्त पत्थर वाले की ख़ातिर में और उसकी आमद-रफ़्त के किराए में पचासों रुपए खर्च कर दिए थे लेकिन बदतमीज़ पत्थर वाले ने बिलाखिर लाल साहब के ऊपर नालिश कर ही दी। अर्ज़ी-नालिश बाबू ख़ुशवक़्त राय को दिखाई गई और तै पाया, कि जवाबदेही ज़रूर की जाय और ऐसे ठाठ से मुक़दमा लड़ा जाय, कि पत्थर वाले को मुँह की खानी पड़े, वरना बुरी तमसील क़ायम हो जायगी और चूना वाले, सिमेण्ट वाले, लोहे वाले और न जाने कितने वाले प्रोत्साहित हो जाएँगे और सब की डिगरी चुकाने में रियासत तबाह हो जाएगी।

जवाब लगाया गया, कि लाल साहब ने ख़ुद पत्थर ख़रीद नहीं किए, बल्कि मुसम्मात गुजराती देवी गोपिका के मुख़्तार-आम की हैसियत से मँगवाया था, इसलिए मुसम्मात मज़कूर का फ़रीक़ मुक़दमा बनाया जाना लाज़मी है, और उसी के ख़िलाफ़ डिगरी सादिर फ़र्माई जाए। बाबू ख़ुशवक़्त राय ने बहस बड़े ज़ोरों से की और बाहर निकल कर लाल साहब से शुकराना तलब किया, लेकिन दूसरे दिन जज मदनमोहन गुप्ता ने फ़ैसला लाल साहब के ख़िलाफ़ सुनाया और पत्थर वाले की डिगरी कर दी।

हुस्न इत्तिफ़ाक़! पत्थर वाले का नाम विनोद बिहारी गुप्ता था, और बाबू ख़ुशवक़्त राय को जज की जाति-बिरादरी की खासी हैसियत मिल गई। लाल साहब को ताव जो आया, तो उन्होंने फ़र्माया, की बाबू साहब चाहे २५०) रु० के २५००) रु० रियासत को ख़र्च करना पड़े, लेकिन यह रक़म बस-चलते पत्थर वाले को अदा न की जाय! बाबू .ख़ुशवक़्त राय ने कहा, कि इस नालायक़ जज के रहते हमारा-आपका कोई बस न चलेगा, और डिगरी की इजरा में भी यह गुप्ता की मदद करेगा। हाँ, और इसको आप यहाँ से हटा सकें तो सब कुछ मुमकिन हो जाय।

"कोई तरकीब?"—लाल साहब ने वयग्र हो कर पूछा।

"तरकीब तो लाजवाब है" बाबू .ख़ुशवक़्त राय ने भेदभरी निगाहों से कहा—"मगर मुनासिब ख़र्च दरकार है।"

'कितना खर्च होगा?"—लाल साहब ने उत्साहित हो कर पूछा।

"सिर्फ़ दो सौ रुपए।"—बाबू .ख़ुशवक़्त राय ने दाहिने हाथ की दो उँगलियों को सीधा करके कहा।

"मन्ज़ूर है!"—लाल साहब ने दृढ़ स्वर में मोहर लगाई।

किन्तु नक़द रुपए फ़ौरन कहाँ मिलें, समस्या यह थी; और बाबू .ख़ुशवक़्त राय यह जानते थे, कि ताव ठण्डा होने पर चिड़िया उड़ जाएगी! चुनाञ्चे बाबू .ख़ुशवक़्त राय ने वह समस्या भी आनन-फ़ानन हल कर दी।

लाला गुलज़ारी लाल शहर के बैङ्कर और रईस उस वक़्त लेजिस्लेटिव काउन्सिल के उम्मीदवार थे, और न केवल लाल साहब .ख़ुद, बल्कि उनके कई रिश्तेदार काउन्सिल के वोटर थे, चुनाञ्चे सौदा होते देर न लगी और 'मनकि फ़लाँ वल्द फ़लाँ' तहरीर करके लाल साहब ने फ़ौरन २००) लाला गुलज़ारी लाल से क़र्ज़ ले कर बाबू .ख़ुशवक़्त राय के हवाले किए, और निश्चित हुआ, कि आज ही रात की गाड़ी से बाबू .ख़ुशवक़्त राय लखनऊ रवाना हो जाएँगे और कल काम करके वापस आ जाएँगे।

दूसरे दिन बाबू .ख़ुशवक़्त राय सदर कचहरी में दिखाई नहीं पड़े, हालाँकि शहर की बेञ्च की इजलास में काम करते हुए पाए गए।

तीसरे दिन बाबू ख़ुशवक़्त राय लाल साहब के हाथ में हाथ मिलाए हुए खफ़ीफ़ा के सामने से गुज़रे और चमकते हुए चेहरे से कहा—लाल साहब, आदाब अर्ज़! लाइए शुकराना, मुबारकबाद! रात ही में तार से ऑर्डर भेजवाया। न कहिएगा, जज साहब की कुर्सी ख़ाली थी, और लञ्च-रूम में चार्ज दिया जा रहा था।

लाल साहब ने फ़ौरन सोने की अँगूठी उतार कर बाबू साहब के हवाले की, क्योंकि नक़द रुपए न थे और इन्तज़ाम करके देने में ताव जाता था।

बतलाने की आवश्यकता नहीं है, कि बाबू ख़ुशवक़्तराय को तजवीज़ सुनाने के दिन ही यह मालूम था, कि जज ख़फ़ीफ़ा का तबादला हो चुका है, केवल उन्होंने मौक़े का फ़ायदा उठाया था।

क्या कोई वकील यह बतला सकता है, कि उसने जीतने का शुकराना इस हारने के शुकराने से ज़्यादा पाया है?

शादी या बर्बादी

रात के दस बजे थे। कार लॉरेन्स रोड पर स्थित एक आलीशान मकान के सामने रुकी।

"क्या मैं आपका शुभनाम पूछने की धृष्टता कर सकती हूँ ?"—कमला ने कार से उतरते हुए कहा !

"जी, मैं किशोर के नाम से पुकारा जाता हूँ।"—युवक ने, जो अभी तक कार के भीतर ही बैठा हुआ था, उत्तर दिया।

"ऊपर चलिए, कुछ जलपान तो कर लीजिए।"

"एक आवश्यक कार्य से मुझे एक जगह जाना है, अतएव अभी क्षमा चाहता हूँ: फिर किसी समय दर्शन करूँगा।"

"तो कल आप चाय के समय अवश्य आइए। चाचा जी आपकी आज की बहादुरी के बारे में सुन कर आपसे मिलना चाहेंगे।"

"मैं आने का प्रयत्न करूँगा।"

"मैं बाट देखती रहूँगी।"—कमला ने किशोर की ओर देखते हुए कहा। आँखें चार हुई। कमला झेंप गई।

❀ ❀ ❀

कमला अमीर घर की इकलौती लड़की थी। एक स्थानीय कॉलेज में बी० ए० का अध्ययन कर रही थी। मरते समय उसके बाप, जो लाहौर के प्रसिद्ध बैरिस्टरों में गिने जाते थे, चार लाख रूपए छोड़ गए थे, और उनकी एक मात्र उत्तराधिकारिणी थी कमला। कमला आजकल अपने चाचा के साथ रहती थी। शुद्ध पश्चिमी वातावरण में पलने के कारण कमला के कहीं आने-जाने में रोक-टोक न थी। आज शाम को जब कमला दिवाली देखने के लिए बाहर जा रही थी, तो उसके चाचा यह चाहते हुए भी, कि रात को बाहर न जाय, उससे ऐसा कहने का सहास न कर सके थे।

कमला एक नौकर को गैरेज में कार रखने का आदेश करके किशोर से विदा माँग कर सीधे अपने चाचा के कमरे में जा पहुँची।

"कमला आज इतनी देर कैसे हुई?"—कमला के चाचा, नरेन्द्रनाथ, ने उत्सुकता से पूछा।

"चाचा जी, आज तो सौभाग्य से ही मैं एक दुर्घटना का शिकार होते–होते बची हूँ। शाम को कॉलेज का काम करते–करते कुछ थक-सी गई थी। मैंने नौकर को कार तैयार करने के लिए कहा, ख्याल यह था, कि आउटिंग (सैर) भी हो

जावेगी और साथ ही साथ अनारकली में दिवाली की रौनक़ भी देख आऊँगी। जब मैं अनारकली से घूम कर लौटी और लॉरेन्स गार्डन की ओर कार को बढ़ाया तो सहसा तीन-चार गुण्डों ने मेरा रास्ता रोक लिया; इससे पहले, कि मैं कुछ कहती; उनमें से एक मेरे हाथ से स्टीयरिंग ह्वील छीनने लगा, और शेष गुण्डे भी मेरी कार के फ़ुट-बोर्ड पर चढ़ गए। मेरे मुँह से एक चीख निकली। एक गुण्डे ने मेरे मुँह को दबाने का प्रयत्न भी किया। अभी यह प्रयत्न जारी ही था, कि सामने से एक युवक दौड़ता हुआ आया और उसने दूर से ही गुण्डों को ललकारा। गुण्डे उसे देखते ही भाग निकले। उस युवक ने मुझे ढाढ़स बँधाया और मेरे मना करने पर भी वह मुझे कोठी तक छोड़ गया। मैंने उसे कल चाय के लिए निमन्त्रण दिया है, ताकि आप भी उससे मिल सकें। यदि वह बेचारा ठीक समय पर न पहुँचता, तो न जाने मुझ पर क्या......।" कमला आगे कुछ न कह सकी। वह बहुत भयभीत हो रही थी।

"बेटा, मैं तो शाम को तुम्हारे अकेले बाहर जाने के पहिले ही से विरुद्ध हूँ। आज भी मैंने तुम्हें इसलिए नहीं रोका, कि कहीं तुम ग़ुस्सा न हो जाओ।"—नरेन्द्रनाथ ने खाँसते-खाँसते कहा।

कमला को नरेन्द्रनाथ की यह नुक़ता-चीनी पसन्द नहीं आई, तो भी वह चुप रही—अवसर ही ऐसा था।

२

दूसरे दिन किशोर ठीक समय पर कमला की कोठी पर पहुँचा। कमला ने नरेन्द्रनाथ से उसका परिचय कराते हुए कहा—"आपने ही मुझे गुण्डों से बचाया था।"

नरेन्द्रनाथ ने कृतज्ञता प्रगट की। चाय लाई गई। तीनों पीने लगे। भारतीयों में एक बड़ा गुण, या अवगुण; कुछ भी कहिए, यह है, कि वे नवपरिचित से भी ऐसी खुल कर बातें करते हैं, मानों वह कोई सगा-सम्बन्धी हो। आप ट्रेन में चले जाइए; दो मुसाफ़िरों को, जो एक-दूसरे का नाम तक न जानते हों, बातें करते सुनिए, तो आपको सहज में ही इस बात का अनुभव हो जाएगा। वे अपनी घरेलू बातों को भी एक-दूसरे से बतलाने में सङ्कोच न करेंगे। ट्रेन के दो-चार घण्टे के संग में ही वे बहुत हिलमिल जाते हैं। नरेन्द्रनाथ भी इस भारतीय प्रकृति के अपवाद न थे। कुछ ही मिनटों में वह किशोर से बेतकल्लुफ़ हो कर बात-चीत करने लगे। बातों ही बातों में उन्होंने किशोर से पूछा—"आप यहाँ क्या काम करते हैं?"

"मैं यूँ ही लाहौर अपने व्यापार के सम्बन्ध में आया हुआ हूँ। कलकत्ते में हमारा एक छोटा-सा जूट का कारखाना है। दो मास मैं यहाँ व्यतीत कर चुका हूँ, अब एक-आध मास पश्चात् लौटने वाला हूँ। रहना तो मैं यहाँ और भी चाहता था, पर क्या करूँ, लड़ाई के कारण कारखाने का काम बढ़

गया है और कलकत्ते में मेरा उपस्थित रहना अत्यावश्यक है।"—किशोर ने उत्तर दिया।

"काम अपनी उपस्थिति के बिना सुचारु रूप से चल ही नहीं सकता।"—कमला के चाचा ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा।

❀ ❀ ❀

नरेन्द्रनाथ स्वतन्त्र विचारों वाले पुरुष थे। उन्होंने कमला को पूर्ण स्वतन्त्रता दे रक्खी थी, इसलिए कमला के यहाँ किशोर का आना-जाना बढ़ने लगा। किशोर ने गुण्डों को भगाने में जो वीरता दिखलाई थी, वह कमला के हृदय में घर कर गई थी और किशोर के प्रति पहिले श्रद्धा के रूप में और फिर प्रेम के रूप में प्रगट होने लगी। किशोर भी कमला का प्रेम पाकर प्रसन्न था। कमला सर्व गुण सम्पन्ना युवती थी। भगवान ने उसको रूप, यौवन और धन प्रचुर मात्रा में दे रक्खे थे। कोई भी युवक कमला का प्रेम पा कर प्रसन्न क्यों न होता?

कमला और किशोर प्रति दिन वायु-सेवनार्थ साथ जाते। कभी लॉरेन्स बाग़ की सैर होती, तो कभी रावी नदी की, कभी शहादरे जाते; तो कभी शालामार बाग़ में। एक दिन शालामार बाग़ के एक सुरम्य मैदान में बैठे हुए वे शाहजहाँ की सौन्दर्य-प्रियता पर विचार कर रहे थे, कि किशोर ने कहा—"कमला, शाहजहाँ धन्य था, कि उसे मुमताज़ महल-जैसी सच्चा प्रेम करने

वाली स्त्री मिली थी। उनका प्रेम अमरत्व को प्राप्त हो चुका है। क्या हम ऐसा प्रेम नहीं कर सकते ?"—यह कहते हुए किशोर ने कमला को अपने वक्षस्थल से लगा लिया। कमला के समस्त शरीर को मानों बिजली ने झटक दिया !

उस दिन कमला और किशोर ने विवाह करने का निश्चय कर लिया।

कमला ने अपना इरादा नरेन्द्रनाथ पर प्रगट किया। वह कमला की बात सुन कर कुछ क्षण के लिए चुप हो गए और फिर कहने लगे—"कमला, मैं जानता हूँ, कि किशोर एक योग्य युवक है, किन्तु हमें याद रखना चाहिए, कि आज से पन्द्रह दिन पहिले वह हमारे लिए एक पूर्णतया अपरिचित व्यक्ति था। हमें यह भी तो पता नहीं कि वह अपने विषय में जो कुछ कहता है, वह सत्य है या झूठ। विवाह तुम दोनों का जीवन-पर्य्यन्त रहने वाला सम्बन्ध है, अतएव भावावेश में आ कर तुम्हें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे पीछे पछताना पड़े !"

"आपको एक भद्रपुरुष के वचनों पर अविश्वास करने का कोई अधिकार नहीं। चूँकि यह प्रश्न केवल मेरे भावी जीवन से सम्बन्ध रखता है, अतएव इस विषय में अन्तिम निर्णय करने का मुझे ही अधिकार है। आपसे इस विषय में कोई परामर्श नहीं लेना चाहती, सूचना मात्र देने को आपके पास आई हूँ।"—कमला ने रोष-पूर्ण स्वर में कहा।

नरेन्द्रनाथ के मुख पर तमाचा-सा लगा। कुछ क्षण के बाद हिम्मत बटोर कर उन्होंने कहा—"कमला, प्रेमावेश में तुम किशोर में कोई अवगुण ढूँढ़ने पर भी नहीं निकाल सकतीं। मेरा कहा मानो, तो इस विषय पर पुनः विचार करो और हो सके, तो मुझे ही अपने लिए वर के चुनाव का अधिकार दे दो।"

"नहीं चाचा जी, यह नहीं हो सकता। वह दिन लद गए जब बड़े-बूढ़े कन्याओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध ब्याह देते थे। मुझे खेद है, मैं आपकी बात नहीं मान सकती। चाहे अच्छे हों, चाहे बुरे, मैं तो किशोर के साथ ही शादी करूँगी। मेरे निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।"—कमला कहती ही चली गई। कमला ने जब सिर ऊपर उठा कर देखा, तो उसके चाचा बाहर जा चुके थे, और वह अकेली रह गई थी।

३

कमला और किशोर की शादी सिविल मैरिज ऐक्ट के अनुसार हो गई। कमला उन दिनों बहुत प्रसन्न थी। हनीमून के लिए किशोर ने सीलोन को पसन्द किया।

एक दिन बात ही बात में उसने कमला से कहा—"यदि तुम अपने चार लाख रुपयों में से एक लाख रुपया निकाल लो, तो बड़ा अच्छा हो, क्योंकि युद्ध-काल है, और इस समय यदि कलकत्ते वाले कारखाने का काम बढ़ सके, तो बहुत लाभ होगा। यहाँ से सीलोन हो कर फिर हम सीधे कलकत्ते ही

जावेंगे। यहाँ अपने सामने बैङ्क से रुपया निकलवाने में आसानी भी रहेगी, पीछे कलकत्ते से पत्र-व्यवहार करने से शायद बैङ्क वाले अड़चनें डालें।"

कमला ने एक लाख रुपया निकलवा लिया। नरेन्द्रनाथ को जब यह समाचार मिला, तो वह कमला के पास पहुँचे और कहा—"बेटा, तुम सीलोन का लम्बा सफ़र कर रही हो, और अपने साथ एक बड़ी रक़म ले जा रही हो, यह काम ख़तरे से खाली नहीं। मेरी राय में रुपया यहीं छोड़ जाओ, पीछे आवश्यकतानुसार मँगा लेना।"

इससे पूर्व कि कमला कुछ उत्तर देती, किशोर बोल उठा—"चाचा जी, इस बात की चिन्ता न कीजिए, मैं अपनी जेबों में लाखों रुपये ले जाने का अभ्यस्त हूँ। अपने कारोबार में मुझे कई बार ऐसा मौक़ा पड़ा है।"

कमला के चाचा अधिक न बोल सके। यात्रा में सावधान रहने का आदेश दे कर वे कमरे से बाहर हो गए।

४

सीलोन में कमला और किशोर को पहुँचे हुए आठ दिन हो चुके थे। कोलम्बो के सबसे बढ़िया होटल में उनका निवास-स्थान था। कमला को उन दिनों एक स्वर्गीय आनन्द का अनुभव हो रहा था। उस दिन प्रातःकाल ही किशोर ने कमला के गले में बाहें डालते हुए कहा—"कमला, आज मैं अपने व्यापार-सम्बन्धी

एक कार्य के लिए कोलम्बो से पन्द्रह-बीस मील दूर जाऊँगा अतएव शाम को ही मेरी प्रतीक्षा करना।"

किशोर यह कह कर चला गया। कमला ने किशोर के बिना बड़ी कठिनता से दिन काटा, शाम को वह किशोर की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करती रही। रात हो गई, पर किशोर न आया। कमला की चिन्ता बढ़ने लगी। किशोर के विषय में हजारों विचार उसके मन में उठने लगे। उसे निश्चय हो गया, अवश्यमेव किशोर के साथ कोई दुर्घटना घटी है, नहीं तो यह कैसे सम्भव था, कि वह नियत समय पर न आता।

रात कमला ने बड़ी कठिनाई से काटी। सबेरा होते ही वह सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के दफ्तर में पहुँची और पुलिस-कप्तान से किशोर के लापता हो जाने की बात कही तथा प्रार्थना की, कि शीघ्र ही किशोर की खोज करवाएँ।

"मिसेज़ कमला, क्या आप बतला सकती हैं कि जब किशोर होटल से गए थे, तो उनके पास कैश तो न था?"--पुलिस-कप्तान ने घटना की तह तक पहुँचने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"जी हाँ, उनके पास एक लाख रुपए के नोट थे।"—कमला ने उत्तर दिया।

"इतना रुपया साथ ले कर जाने का कोई विशेष कारण?"—पुलिस कप्तान ने गम्भीर मुद्रा बनाते हुए कहा।

कमला के पास इस बात का कोई उत्तर न था।

"मिस्टर किशोर का कारोबार कहाँ पर है?"

"जी, वह कलकत्ते की किशोर जूट मिल्स के स्वामी हैं।"

"अच्छा, तो आप जा सकती हैं। विश्वास रखिए, मि० किशोर को ढूँढ़ने में कोई कसर न रक्खी जाएगी। क्या आप कल इसी समय पता लेने के लिए आ सकेंगी?"

"अवश्य।"—कहती हुई कमला ने होटल का रास्ता लिया।

दूसरे दिन कमला फिर पुलिस-दफ़्तर में पहुँची! उसका हृदय उत्कण्ठा से धड़क रहा था। वह ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी, कि किशोर के विषय में कोई सन्तोषजनक खबर मिले।

"आपके साथ किशोर की शादी हुए कितने दिन हुए है?"—पुलिस-कप्तान ने कमला को कुर्सी पर बैठने का सङ्केत करते हुए पूछा।

"बारह दिन।"—कमला ने सकपकाते हुए उत्तर दिया।

"उससे पहिले कब से किशोर आप से परिचित थे।"

"एक महीने से।"

"हूँ, ठीक है।" कप्तान गुनगुनाया और फिर .खुफ़िया पुलिस के गजट की एक पुरानी फ़ाइल को खोल कर एक फ़ोटो की ओर सङ्केत करके उसने पूछा—"क्या मिस्टर किशोर की आकृति इस आदमी से मिलती है?"

कमला फ़ोटो देखकर चिल्ला उठी—"हाँ, हाँ, यह किशोर की ही फ़ोटो है, अन्तर केवल इतना है, कि इसमें वह साफ़ा पहिने हुए और मूँछें रक्खे हैं। मैंने उन्हें सदैव हैट में और

कर्ज़न-फ़ैशन में देखा है।" कमला समझ न सकी, कि उस फ़ोटो के साथ किशोर का क्या सम्बन्ध है।

"मिसेज़ कमला मुझे भय है, कि आप किसी गहरे षड़यन्त्र का शिकार हुई हैं।"—पुलिस कप्तान ने मुस्कुराते हुए कहा।

कमला अवाक् रह गई ?

"कल मैंने कलकत्ता-पुलिस से तार-द्वारा सूचना मँगवाई जिससे पता चला है, कि कलकत्ते में, न तो कोई किशोर जूट मिल है, और न वहाँ की किसी जूट मिल का किशोर नाम का कोई मालिक ही है।" पुलिस-कप्तान कहता गया—"इस सूचना के मिल जाने पर मुझे निश्चय हो गया, कि आपको धोखे में रखने के लिए ही किशोर ने आपको अपना ग़लत पता बतलाया, और उसके लिए कारण भी थे। जैसा कि आपने स्वयं मुझे कल बतलाया था, कि उनके पास जो एक लाख रुपया था, वह आपका था और उसे आपने अपनी शादी के बाद उनको रखने के लिए दिया था। ग़लत पता बतलाए बिना किशोर उस रक़म को नहीं हड़प सकता था।"

कमला को मानों साँप छू गया। वह चुप थी।

"मुझे अब निश्चय हो गया है।"—पुलिस कप्तान फिर बोला—"कि किशोर और इस फ़ोटो में उतरा हुआ आदमी एक ही है। इस गज़ट से प्रतीत होता है, कि वह एक बड़ा भारी धूर्त है। इसने दो बार पूर्व भी सम्भ्रान्त महिलाओं को आपके समान ही ठगा है। उसका कार्यक्रम यह रहा है, कि किसी

औरत को अपने गुण्डों-द्वारा कष्ट में फँसा कर और स्वयं उसके रक्षक के रूप में उपस्थित हो कर उस स्त्री का विश्वास-पात्र बन जाता है और समय पाकर जेवर इत्यादि ले उड़ता है। आपके साथ तो उसने शादी तक का ढोंग रच लिया। बदमाश, इस समय न जाने कहाँ का कहाँ पहुँच चुका है?" पुलिस-कप्तान ने पाँव ज़मीन पर खटखटाते हुए कहा और किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो गया।

कमला को सारा संसार घूमता हुआ-सा मालूम हुआ। पुलिस-दफ़्तर से अपने होटल के लिए जब वह लौट रही थी, तो उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों रास्ते पर चलने वाला प्रत्येक आदमी उसकी सिविल मैरिज की कहानी जानता हो और उसकी खिल्ली उड़ा रहा हो !!
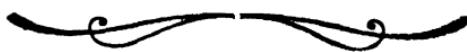
चचा छक्कन ने कारतूस भरे

काँयँ ! काँयँ !! काँयँ !!!

शाम का समय था। चचा छक्कन शेख साहब के साथ नित्य की भाँति शतरञ्ज खेल रहे थे। मिर्ज़ा साहब हुक्का पीते जाते थे और कभी-कभी किसी अच्छी चाल पर ख़ुश हो कर दोनों की तारीफ़ भी करते जाते थे, कि इतने में शेख साहब बोले—"देखिए, ज़रा सँभल कर चलिए, उठा लूँ वज़ीर ?"

चचा छक्कन ने कहा—"भई, माफ़ करना, ग़लती हुई, यह चाल वापस लेता हूँ !"—यह कहते हुए चचा छक्कन ने अपना बढ़ा हुआ मोहरा वापस कर लिया और दूसरी चाल चली।

बाज़ी अच्छी-खासी खेल रहे थे, कि दोबारा बेपरवाही से ग़लत चाल चल दिए। शेख साहब ने कहा—"देखिए, आप फिर बहके, मार लूँ घोड़ा ?"

चचा छक्कन ने 'लाहौल-विला क़ूव्वत' कह कर अपनी चाल वापस कर ली और अब अधिक ध्यान से चाल चलने लगे।

मिर्ज़ा साहब ने कहा—"न जाने क्या बात है, आज चचा छक्कन ध्यान से नहीं खेल रहे हैं, अगर वे हारे, तो शेख साहब, आप आज पहली ही बार जीतेंगे !"

चचा छक्कन बोले—"क्या मजाल, ऐसों को तो बरसों शतरञ्ज खेलना सिखाऊँ, हज़रत मोहरे-तक तो पहिचानते नहीं, ये मुझे क्या मात देंगे ?"

इतने में फिर काएँ ! काएँ !! काएँ !!! हुई। चचा छक्कन का ध्यान ज़रा ही-सा बिसात पर से हटा था, कि शेख साहब ज़ोर से बोले—"लीजिए, यह क़िश्त और मात ! बड़ा दावा था अपने खिलाड़ी होने का ! ये हमें शतरञ्ज खेलना सिखाएँगे ?"

चचा छक्कन ने खिसिया कर बिसात उलट दी और बोले—"मिर्ज़ा साहब, सुना आपने ? शेख साहब क्या कह रहे हैं ! इनको भी अपनी शतरञ्ज पर नाज़ होने लगा।" इतने में फिर क़ाएँ ! क़ाएँ !! क़ाएँ !!!

"लाहौल-विला कूव्वत !"—चचा छक्कन बोले—"मैं भी सोच रहा था, कि मुझे आज क्या हो गया है, जो चाल चलता हूँ ग़लत हो जाती है, सुना मिर्ज़ा साहब आपने ? यह सब करामात इस क़ाएँ-क़ाएँ की है।

मिर्ज़ा साहब—"कैसी क़ाएँ-क़ाएँ !"

चचा छक्कन—"मिर्ज़ा साहब, आप भी कमाल करते हैं; ये क्या आसमान पर क़ाज़ें उड़ी जाती हैं।"

फिर क़ायँ! क़ायँ!! क़ायँ!!!

मिर्ज़ा साहब—"ठीक कहते हो, क़ाज़ें बोल रही हैं; आ गया शिकार का मौसम। है शेख़ साहब इरादा?"

शेख़ साहब—चचा छक्कन से कहिए, ये चलें, तो हम भी चलें।"

चचा छक्कन—"कोई काम तो नहीं है, हाँ कारतूस भरने होंगे।"

शेख़ साहब—"क्यों, क्या कारतूसों की बाज़ार में कमी है; जो यह दर्द-सर मोल लिया जाए?"

चचा छक्कन—"कमी तो नहीं है, मगर उन पर भरोसा नहीं।"

बात यह थी, कि गत वर्ष एक शिकार से ये लोग बिलकुल ख़ाली हाथ लौटे थे; और क्यों ख़ाली हाथ न लौटते, जब चार नम्बर का छर्रा दो सौ ग़ज से चलाया गया था। चचा छक्कन बहुत झेंपे हुए थे, क्योंकि दोस्तों ने उन्हें ख़ूब बनाया था! चचा छक्कन को बहुत तंग करके, यारों ने कहा कि इसमें आपकी कोई ख़ता नहीं, यह तो कारतूसों की ख़राबी से हुआ है। विलायत वाले भी अब ईमानदारी नहीं बरतते, न जाने कारतूसों में क्या-क्या भर देते हैं, तभी तो बन्दूक़ ख़ाली जाती है, नहीं तो क्या मजाल, जो आपका निशाना ख़ाली जाता! यह बात चचा छक्कन के जी में घर कर गई थी और उन्होंने सोच लिया था, कि अब अपने हाथ ही के भरे हुए कारतूस चलाएँगे। शिकार से

वापस आते ही चचा छक्कन ने पहला काम यह किया कि, कारतूस भरने की मशीन और अन्य आवश्यक सामान खरीदा, मगर तब से कारतूस भरने और शिकार पर जाने की नौबत ही न आई थी।

मिर्ज़ा साहब बोले—"ठीक है, उस बार शिकार में कैसी परेशानी हुई थी।"

शेख़ साहब—"इन्हीं कारतूसों के कारण न, नहीं तो भला यों ख़ाली हाथ लौटते!"

चचा छक्कन—"तो फिर कल रात ही को चलेंगे, शेख़ साहब आप भी, और मिर्ज़ा साहब आप भी तैयार हो कर आ जाइयेगा।"

यह निश्चय हुआ, कि अगली रात को मिर्ज़ा साहब और शेख़ साहब टाँगा लेकर बारह बजे के लगभग चचा छक्कन के घर पर आ जाएँगे और वहीं से शिकार को चला जाएगा।

दूसरे दिन रात को बारह बजे के लगभग दोनों महाशय चचा छक्कन के मकान पर पहुँचे, दरवाज़ा खटखटाया, तो चचा छक्कन की आँखें खुलीं और बोले—"कौन?"

मिर्ज़ा साहब—"मैं हूँ, शेख़ साहब हैं और टाँगा भी।"

चचा छक्कन—"अभी हाज़िर होता हूँ।"

थोड़ी देर में चचा छक्कन लालटेन लिए मरदाने में आए और दरवाज़ा खोल कर अपने दोस्तों को अन्दर बुला लिया। फिर यह कह कर, कि 'मशीन ले आऊँ' अन्दर चले गए। इस

ख़्याल से कि चची की नींद ख़राब न हो, बिना रोशनी के कोठरी में जाकर मशीन तलाश करने लगे। खड़बड़ से चची की आँख खुली, तो वे घबरा कर 'बिल्ली-बिल्ली' कहती हुई उठ बैठीं।

चचा छक्कन—"हूँ, हूँ, मैं हूँ, मैं।"

चची—"यह आधी रात को आप बावर्चीख़ाने में क्या कर रहे हैं? कहीं बच्ची का दूध न गिरा देना, क्या चाहिए, बतलाओ मैं ला दूँ।"

चचा छक्कन—"लाहौल-विला क़ुव्वत! रात को कुछ सूझता ही नहीं। कोठरी के धोखे में बावर्ची-ख़ाने में चला आया। कार-तूस भरने की मशीन ढूँढ रहा हूँ।"

चची—"आओ मैं बतलाऊँ, इस सन्दूक़ में रक्खी है।"—यह कह कर वे अपने कमरे में चली गईं।

चचा छक्कन ने सन्दूक़ खोला ही था, कि मिर्ज़ा साहब की आवाज़ आई—"अरे भाई आओगे भी! कारतूस भी भरने हैं और तालाब पर भी पहुँचना है, सुबह हो गई, तो शिकार क्या ख़ाक मिलेगा?"

चचा छक्कन जल्दी से बाहर निकले, तो चची चौंक कर बोलीं—"यह तुम कारतूसों की मशीन लिए जा रहे हो या नन्हें की टोपी? क्या यही पहन कर शिकार में जाओगे?"

चचा ने जो देखा, तो सचमुच मशीन के बजाय नन्हें की टोपी हाथ में लिए हुए थे।

इतने में शेख साहब ने कहा —"भई, एक बज रहा है, बस दो घण्टे बाक़ी हैं।"

कुछ तो चची के व्यंग्य से और कुछ दोस्तों के तक़ाजे से चचा छक्कन कुछ बदहवास से हो गए। खिसिया कर जल्दी से मशीन निकाली और सन्दूक़ बन्द कर दिया।

अब चचा छक्कन चारों ओर देख रहे हैं, कि मशीन कहाँ गई। देर हुई, तो चची भी आ गईं। उनको देख कर चचा कहने लगे—"अभी सन्दूक़ से मशीन निकाली थी न जाने कहाँ रख दी, अभी-अभी तो निकाली है, ज़रा उधर मेज़ पर तो देखना।"

चची को यह सुन कर हँसी आ गई और वे कहने लगीं—"और यह बग़ल में क्या दबाये हुए हो?"

चचा छक्कन ने आदत के अनुसार "लाहौल विला .क़ुव्वत" कहा और जल्दी से बाहर चले गए।

चचा छक्कन—"लो मिर्ज़ा साहब, ज़रा बन्दूक़ को अच्छी तरह साफ़ तो कर डालो। वैसलीन सब जगह से निकाल देना। और शेख साहब तुम ज़रा इधर आ कर कारतूस तो—।" यह कह कर चचा ने अँगीठी पर से बारूद का डिब्बा उतारा। आलमारी में से छर्रा, टोपियाँ और डाटें निकाल कर जल्दी-जल्दी कारतूस भरने शुरू कर दिए।

"क्यों मिर्ज़ा साहब चालीस कारतूस काफ़ी होंगे न?"—चचा छक्कन ने पूछा।

काफ़ी हैं !"—मिर्ज़ा साहब ने बन्दूक़ में गज़ डालते हुए कहा।

"तो अभी भर देता हूँ।"—यह कह कर चचा छक्कन अपने काम में लग गए। कोई तीन बजे इस काम से छुट्टी पाई। हर चीज़ पर एक दृष्टि डाली और टाँगे पर सवार हो कर तालाब की ओर चल दिए। अभी सुबह होने में देर थी, ज़रा-ज़रा-सा चाँद भी निकल रहा था, कि ये सब लोग तालाब के किनारे पहुँच गए। चचा छक्कन ने इधर-उधर देख कर कहा—"देखिए, वह ईख का खेत सबसे अच्छी जगह जान पड़ती है, पानी के क़रीब भी है और छिपने का अच्छा मौक़ा है। मेरे साथ-साथ चले आओ, मगर बातें कोई साहब न करें, न सिगरेट सुलगाएँ, नहीं तो शिकार उड़ जाएगा।"

यह हिदायतें करते हुए आगे-आगे चचा छक्कन और पीछे-पीछे दोनों मित्र उस खेत में घुसे। खेत में टखनों-तक पानी था, वह भी बहुत ठण्डा। मगर शिकार के शौक़ में आगे बढ़ते गए। गन्नों की अन्तिम पंक्ति में पहुँच कर सब लोग दम साध कर बैठ गए। क़ायँ-क़ायँ की आवाज़ पास ही से आ रही थी, मगर चूँकि चाँद की रौशनी मध्यम थी, इसलिए शिकार दिखाई न पड़ता था। सिर्फ़ सुबह की रोशनी का इन्तज़ार था। कोई घण्टा-भर इन्तज़ार किया होगा, कि क़ाज़ों की एक टुकड़ी कोई बीस गज़ पर पानी में बैठी दिखाई पड़ी। चचा छक्कन ने धीरे से मिर्ज़ा साहब और शेख़ साहब को वह टुकड़ी

दिखाई और होठों पर अँगुली रख कर चुप रहने का इशारा किया।

अब बन्दूक़ चलाने का अच्छा मौक़ा था, और फ़ासला इतना कम था, कि एक फ़ायर में कई क़ाज़ों के मर जाने का विश्वास था। पहिले तो चचा छक्कन ने ज़रा अपने हाथों को बग़लों में दबा कर गर्म किया, फिर 'बिसमिल्लाह' कह कर बन्दूक़ उठाई। टोपी चलने की आवाज़ हुई और साथ ही क़ाज़ों के उड़ने की। कारतूस ने ख़ता की थी। चचा छक्कन ने तुरन्त दूसरी नाल उड़ती हुई क़ाज़ों पर चलाई, मगर उसका भी यही फल हुआ। चचा छक्कन को क्रोध आ गया और उन्होंने जल्दी-जल्दी कारतूस बदल-बदल कर फ़ायर करने शुरू किए, मगर परिणाम वही का वही रहा, यानी सिर्फ़ टोपी चटख़ कर रह गई।

शेख़ साहब जल कर बोले— कभी पहिले भी कारतूस भरे थे?"

चचा छक्कन ने इसका तो कोई उत्तर न दिया, लेकिन हसरत से कहने लगे—"बड़ा अच्छा शिकार हाथ से निकल गया।"

मिर्ज़ा साहब बोले—"ज़रूर कारतूस भरने में भूल हुई, नहीं तो, आज क्या ख़ाली हाथ जाते?"

चचा छक्कन— भूल की भी एक ही कही, 'मियाँ दूकानदार से अच्छी तरह पूछ कर और उसके सामने नमूने के कारतूस

भर कर लाया था और चला कर इतमीनान भी कर लिया था। यह तो भाग्य की बात है।"

क़ाजें सब उड़ चुकी थीं, और इन्तज़ार करना बेकार था। अच्छा-ख़ासा दिन निकल आया था। किसान खेतों की ओर आ रहे थे। पैर इतने ठण्डे हो गए, कि जान पड़ता था, कि शरीर से उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। अब घर लौटने के सिवा कोई और चारा ही नहीं था, अतः चले और शीघ्र ही घर पहुँच गए। चचा छक्कन को कारतूसों के न चलने का बड़ा दुःख था। इससे उनके कमाल में बट्टा लगता था: अतः घर आते ही उन्होंने पहिला काम यह किया, कि चाक़ू निकाल कर कारतूसों को काटने लगे। पहिला ही कारतूस काटा था, कि मिर्ज़ा साहब और शेख़ साहब हँसी के मारे लोट गए। चचा छक्कन, जो पहिले ही से जले हुए थे, अब और भी जल गए और ग़ुस्से से बोले—"आप लोगों को भी बेवक्त की हँसी आती है। भला यह हँसने का कौन मौक़ा है ?"

शेख़ साहब और मिर्ज़ा ने कटे हुए कारतूस की ओर इशारा किया और फिर अधिक ज़ोर से हँसने लगे। चचा छक्कन को और भी क्रोध आ गया। कहने लगे— लानत है, जो आज से आप ऐसे लोगों से दोस्ती रक्खे। यह मुझसे हमदर्दी हो रही है या मेरी हँसी उड़ाई जा रही है ?"

यह देख कर, कि चचा छक्कन हाथ से निकले जा रहे हैं,

मिर्ज़ा साहब ने हँसी रोक कर कहा—'बिगड़ने की क्या बात है ? कारतूस चलते कैसे, आपने उनमें भरा क्या है ?"

चचा छक्कन—"आपने भी मुझे अनाड़ी समझ रक्खा है ? भरा क्या है ? बारूद है, छर्रा है, डाट है, और भी कुछ भरा जाता है ?"

शेख़ साहब—"भरा तो यही जाता है, मगर यह आपने बारूद भरी है ?"

चचा छक्कन—"और क्या ? (फिर चौंक कर) लाहौल-विला-.कूव्वत, अरे यह बारूद नहीं, तो और क्या है ।"

मिर्ज़ा साहब चुपके से उठ कर अँगीठी पर गए और दो डिब्बे उतार कर चचा छक्कन के सामने रख दिए।

चचा छक्कन—"इसका मतलब ?"

मिर्ज़ा साहब—"ज़रा इनको खोल कर देखिए ।"

चचा छक्कन ने जो डिब्बों को खोल कर देखा, तो एक में बारूद थी और दूसरे में लिपटन की चाय। अवाक् रह गए और 'लाहौल-विला-.कूव्वत' कहते हुए चचा छक्कन ने चाय का डिब्बा घर से बाहर फेंक दिया और दोनों दोस्तों से खिसिया कर बोले—"मरदूद हो, जो अब तुम्हारे साथ शिकार को जाए ।"
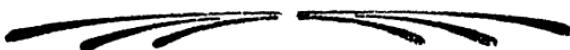
हमारी पड़ोसिन

मज़हब और इखलाक़ में पड़ोसी या हमसाया का बड़ा रुतबा है। इस्लाम और दूसरे धर्मों के आचार्यों ने इसे प्रायः इतनी रियायतों का हक़दार माना है, कि अगर आप धार्मिक दृष्टिकोण से इसका मतलब समझना चाहें, तो बिना सोचे उसे 'मद्ज़ल्ला' कह सकते हैं, और अगर गाँधीवाद के दृष्टिकोण से उसे देखना हो, तो बिना शिष्टाचार के उसे 'हरिजन' समझ सकते हैं।

संक्षेप में यह, कि हमारे पूर्वजों ने आँख बन्द करके और किसी 'राउण्ड टेबिल कॉन्फ़रेन्स' की आवश्यकता समझे बग़ैर वह सब अधिकार पड़ोसियों को प्रदान कर दिए हैं, जो आप वर्षों से 'डोमिनियन-स्टेटस' या 'होम-रूल' के ज़रिए हासिल करने के स्वप्न देख रहे हैं। परन्तु समाज के आधुनिक क्रम को देखते हुए यह प्रश्न पैदा होता है, कि क्या आजकल का पड़ोसी भी केवल पड़ोसी होने के कारण इन तमाम रियायतों का हक़दार हो सकता है, जिन्हें पॉलिटिक्स (राजनीति) में

'Essence of independence' (स्वतन्त्रता का सार) कहा गया है!

इसमें सन्देह नहीं कि हमारा मत इस विषय में खानगी है, और मामला हर सूरत से 'अन्तर्राष्ट्रीय संघ' के निर्णय के योग्य है; इसलिए इसे स्थान नहीं दिया जा सकता। अस्तु—

इस जहाँगर्दी के ज़माने में हमें बहुत-से पड़ोसियों से साबक़ा पड़ा है, जिनमें से कई एक की मेहरबानियों और कई एक की बे-इन्साफ़ियों की हमारे हृदय पर ऐसी गहरी छाप पड़ गई है, कि आज उनकी बदौलत हमारा दिल अच्छा-खासा 'रंग-महल' कहा जा सकता है!

पड़ोसियों और पड़ोसिनों की बहुत-सी क़िस्में हैं—जैसे शराबी पड़ोसी, नमाज़ी पड़ोसिन, सभ्य पड़ोसी, ख़ूबसूरत पड़ोसिन, सवाली पड़ोसी, अजाली पड़ोसिन, तुम्हारा पड़ोसी और हमारी पड़ोसिन, वग़ैरह वग़ैरह।

इस प्रकार अगर पड़ोसियों और पड़ोसिनों की क़िस्में लिखी जाएँ, जो अच्छी खासी 'गुल्ज़ारे नसीम' तैयार हो सकती है, लेकिन न आपको इतनी लम्बी 'दास्ताँ' सुनने की .फ़ुरसत है, न हमें सुनाने की 'मोहलत'! इन सब क़िस्मों में से केवल आख़िरी क़िस्म, यानी हमारी पड़ोसिन, का विस्तृत वर्णन सुन लीजिए।

हमारी पड़ोसिन सौभाग्य या दुर्भाग्य से बेवा हैं और फ़िलहाल सात बच्चों की माँ हैं, जिनमें से केवल एक लड़का है।

यह लड़का, उनके कथनानुसार, परदेस में मुलाज़िम है। बाक़ी छः लड़कियाँ हैं, जो हमारे खयाल में तो सब ही अपने घर-बार वाली हो चुकी हैं।

हमारी पड़ोसिन की उम्र 'गवर्नमेण्टो-पेन्शन' के लगभग होगी, परन्तु इनकी आवाज़ का कड़ाका, जिस्म का मुटापा और चाल का धमाका ऐसी चीज़ें हैं, कि सूरत देखने से पहले युवती होने का खासा भ्रम हो सकता है।

लड़कियाँ अधिक होने के कारण हमारी पड़ोसिन को एक यह भी फ़ायदा पहुँचा है कि आयु-भर उन्हें कोई खादिमा रखने की आवश्यकता नहीं हुई और प्रायः बहार महीने अपनी अक़्ल और चालाकी से ऐसा फेर डालती हैं, कि कम से कम दो-चार लड़कियाँ इनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए हमेशा मौजूद रहती ही हैं!

पड़ोसिन की उदर-पूर्ति का ज़रिया किराए की वह दुकानें हैं, जो उन्हें 'तरका-शौहरी' से मिल गई हैं। इनमें महीने-भर की आय इतनी हो जाती है, कि एक पड़ोसिन, इनकी आने-जाने वाली लड़कियाँ, एक गाय, एक बकरी, (हर हफ़्ते भाग जाने वाला) लड़का, एक मुर्ग़, एक कुतिया और आठ मुर्ग़ियाँ बड़ी बे-फ़िक्री के साथ महीने के तीस नहीं, तो छब्बीस दिन अवश्य गुज़ार देते हैं। बाक़ी के दिन आवश्यकता पड़ने पर पेशगी किराया ले कर गुज़ार लिए जाते हैं।

जब कभी क्या, आम तौर पर, ज्योंही माँ-बेटियाँ इकट्ठी हुईं, कि सिनेमा में आई हुई नई फ़िल्म की मुनादी करने वालों की तरह शोर मचा कर सारा मुहल्ला सर पर उठा लेती हैं। नाश्ता करने के बाद जो कभी लिखने-लिखाने की धुन में काग़ज़-पेन्सिल सँभाल कर सहन में आ बैठे, और बेगम अपना सोना-पिरोना ले कर बैठ गईं; तो माँ-बेटियाँ कानों के पर्दे फाड़ने लगती हैं, या उनकी मुर्ग़ियाँ सहन में आ कर कुक-कुक-कुकूँ, कुक-कुक-कुकूँ-कुकाँ-ऊँ की आवाज़ लगा कर सारी विचार-धारा भिन्न-भिन्न कर देती हैं। बेगम से कई बार कहा कि माँ-बेटियों पर तो बस नहीं चलता, लेकिन इन कमबख़्त मुर्ग़ियों को तो कहीं ग़ारत कर दो; लेकिन बेगम कहती हैं कि पड़ोसियों की चीज़ अमानत होती है।

समझ में नहीं आता कि जिन लोगों को मुर्ग़ियाँ पालने का शौक़ है, वह उन्हें चुगने और ग़लाज़त फैलाने के लिए पड़ोसियों की तरफ़ क्यों निकाल देते हैं?

पड़ोसिन मुर्ग़ियाँ भेज कर अलग परेशान करती हैं। अभी पिछले एतवार की बात है कि सुबह मुँह-अँधेरे, पौने आठ बजे का अमल होगा कि हम बिस्तर पर पड़े हुए मीठी नींद के मज़े ले रहे थे। बहुत ही दिलकश नज़्ज़ारे नज़र आ रहे थे। कभी काशमीर की वादियाँ, कभी एशबाग़ का स्टेशन और कभी हवाई जहाज़ के सपाटे! यकायक क्या देखते हैं कि गोया हम आबसारे नियागरा के पास आते जा रहे हैं, और हमारे

पीछे एक भारी लश्कर जंगे-अज़ीम बरपा करता हुआ चला आ रहा है—तोपें चल रही हैं, बम भी बरस रहे हैं, टैङ्क भी टकरा रहे हैं, मशीनगनें भी राउण्ड कर रही हैं—घोड़ों की हिनहिनाहट, ज़ख्मियों की चीख-पुकार, हवाई जहाज़ों की गड़गड़ाहट, मोटरों की खड़खड़ाहट और सबके साथ दुनिया के सबसे बड़े जल-प्रपात का शोर ! यह मालूम हो रहा था, गोया क़यामत आने में बस कुछ ही सेकेण्ड बाक़ी हैं !

यकायक हमने देखा कि एक बड़ा भारी गोला फटा, दो हवाई जहाज़ टकराए और ऐन हमारे सिर पर गिरने लगे। हम चौंक कर उठ बैठे।

होश ठीक करने के बाद देखते क्या हैं कि हमारी पड़ोसिन अपने छोकरे पर गरज रही हैं, और इसी शोर से सारा घर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मीटिंग बना हुआ है !

हमने आसमान की तरफ़ नज़र डाल कर अपनी सलामती का शुक्रिया अदा किया और बेगम से कहा, "सुनो ! आज सब से पहिला काम यह होना चाहिए कि सारा सामान 'पैक' (Pack) हो जाए।"

शोर के सबब से बेगम की समझ में न आया। आगे बढ़ कर कहने लगीं—"क्या ?"

हमने कहा—"असबाब पैक कर लो।"

हँस कर कहने लगीं—"ख़ैरियत ?"

"बस इस मकान में हमारा निबाह नहीं हो सकता। जब तक यह पड़ोसिन हैं, तब तक कोई आदमी, जो जन्म से बहरा न हो, इस मकान में नहीं रह सकता। यहाँ या तो कोई शुगर फ़ैक्ट्री क़ायम रह सकती है या ऑयल एञ्जिन से चलने वाली फ़्लॉवर मिल !"

कहने लगीं—"सुबह से यही आफ़त बर्पा है !"

"अजी, आज ही की सुबह क्या, यहाँ हर रोज ११ मई, सन् १८५७ ई० का 'रिहर्सल' होता है !"

प्रोफ़ेसर साहब

वो बनावें क़ानून, हम उसे तोड़ते रहें,
फिर बताइए उनको हमारी पटे कैसे ?

दुनिया में क़ानून तोड़े बिना इन्सान रह ही नहीं सकता। क़ानून बनाए ही जाते हैं इस बात को मद्दे नज़र रख कर कि वे तोड़े जाएँगे। मगर प्रोफ़ेसर साहब न जाने क्यों इस बात को नहीं समझते थे। आप ही बताइये कि कौन नौजवान युनिवर्सिटी में पढ़ता हुआ सिनेमा न देखेगा और होस्टल का क़ायदा बना हुआ था कि रोल कॉल के बाद बाहर न निकलो तथा और भी इस तरह के अनाप-शनाप क़ायदे थे; नौकर को चपत न लगाओ, बरामदे में मत नहाओ, सुबह के वक़्त, गाना न गाओ, ग्रामोफ़ोन न बजाओ, गर्मी में पङ्खा न चलाओ, रात को दस बजे सो जाओ, सुबह पाँच बजे उठ जाओ। मगर यह न मालूम था कि नियमों की पाबन्दी उनके उल्लंघनों से होती है। बहरहाल रूल बने ही रहे और लड़के भी सिनेमा जाते ही रहे। मौज से कटती रही। जब तक देशी राज्यों का इन्तज़ाम देशी

रहता था तब तक तो रियाया बची रहती थी, मगर ज्योंही उसमें अंग्रेज़ी शासन की मुस्तैदी घुसती थी, लोगों को राम-राज्य के बजाय रावण राज्य की याद आने लगती थी। हम लोगों को भी इस परम सत्य की अनुभूति का अवसर तब मिला जब प्रोफ़ेसर गुप्ता साहब वॉर्डन बन कर पधारे। प्रोफ़ेसर साहब की सफ़ाई में यह तो ज़रूर कहना पड़ेगा कि उनके क़ानूनदां होने के सम्बन्ध में दो राय हो ही नहीं सकतीं। रोमन लॉ, हिन्दू लॉ तथा और भी इस क़िस्म के क़ानून के अलावा उन्हें होस्टल के भी क़ानून मूज़बानी याद थे। यही नहीं, वो उन लोगों में थे जो दुनिया को बड़ी सञ्जीदगी से देखते हैं और हर बात को फ़र्ज़ का ऊँचा दर्जा देते हैं। प्रोफ़ेसर साहब ने इस बात को भी अपना फ़र्ज़ समझा कि होस्टल के उन सभी क़ानूनों को अमल में लाया जाए, फलतः नौकरों-चाकरों को बुला कर हिदायतें दे दी गईं।

सुबह मैं बरामदे में खड़ा होकर शेव करने की तैयारी कर रहा था। तबीयत बड़ी मस्त थी, बड़े मज़े में अलाप रहा था, शायद गाना था :

पाटनवाला का साबुन लगाया करो,
प्यारे नित उठ के दाढ़ी बनाया करो !

ऊपर के प्रीफ़ेक्ट साहब उतरे और बड़ा घुन्ना चेहरा बनाए आगे से जाने लगे। गाना मेरे मुँह में ही रह गया।

मैंने पुकार कर पूछा, "फूल बाबू, आज ऐसे कटे-कटे क्यों घूम रहे हो ?"

फूल बाबू मुँह फुला कर बोले—"सब पता लग जाएगा, घबड़ाते क्यों हो ?"

मैंने समझा आज ज़रूर कुछ बात हो गई है। ख़ैर जैसे-तैसे दाढ़ी बना कर नौकर को पुकारा—"अबे आज पानी नहीं लाया, नहाएंगे कैसे ?"

नौकर बोला—"हुज़ूर साहब मना कीहिन हैं।"

मैंने कहा--"क्या मना कीहिन हैं, साहब के बच्चे, अब क्या नहाना बन्द हो जाएगा।"

"हुज़ूर बाथ-रूम में नहा लेईं !"

"बाथ-रूम में नहीं जाएंगे, ले आ पानी फ़ौरन।"

मगर अच्छा कह कर नौकर जो ग़ायब हुआ तो वापस आने का नाम ही नहीं लिया। मैं ताब में मेस की तरफ़ चला, जहाँ अमूमन नौकरों का अड्डा रहा करता था। इरादा कहार को अच्छी तरह ठोकने का था। रास्ते में ही प्रीफ़ेक्ट साहब का कमरा था। तोबड़ा-सा मुँह लिये वह कुछ लिख रहे थे। मैंने अन्दर घुस कर पूछा—"क्या लिख रहे हो ?"

"रेज़िग्नेशन।"

"रेज़िग्नेशन"—मैंने चौंक कर पूछा।

"जी हाँ, आज से होस्टल में क़ानून का राज्य क़ायम हो गया। अब सुबह-सुबह बरामदे में खड़े होकर आप तानसेन

को चैलेंज नहीं दे सकते, नहाने भी हुज़ूर को बाथ-रूम में ही जाना होगा, कमरे के सामने नहाना बहुत असभ्यता और अश्लीलता है।"

उसी दिन से होस्टल में सिविल वॉर या यों कहिए कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हो गया। बावजूद वॉर्डन साहब की लिखित नोटिसों, धमकियों और वॉर्निंगों के हम लोग क़ायदों को तोड़ते ही रहे, जो तोड़ने के लिये बनाए ही गए थे। वॉर्डन साहब ने एक नई हरकत की। क़ानूनन उन्हें होस्टल में राउण्ड लगाने का अधिकार ज़रूर प्राप्त था, परन्तु उनके पूर्ववर्ती वॉर्डनों ने सिवा हम लोगों को चायपार्टी की शिरकत या किसी के बीमार पड़ने पर देखने आने और इसी क़िस्म के "कर्टसी कॉल" के कभी इस अधिकार का उपयोग नहीं किया था। प्रोफ़ेसर गुप्ता साहब ने अब बाक़ायदा सुबह-शाम चक्कर लगाना शुरू किया। कई रोज़ तक मैं बचता रहा, एक रोज़ नहा कर कमरे के अन्दर दाखिल हुआ ही था, कि प्रो० गुप्ता की मनहूस शकल कोने से झलकी। फ़ौरन खाट पर लेट कर अपने को लिहाफ़ से ढँक लिया। प्रोफ़ेसर गुप्ता ने कमरे के सामने ठहर कर बरामदे में बहते हुए पानी को ग़ौर से देखा। बाल्टी में मेरी धोती भी पड़ी हुई थी। "यहाँ किसने नहाया है?" लड़कों ने, जो कि अब तक कमरों से निकल आए थे, अपनी अनभिज्ञता ज़ाहिर की। मैं खाट पर पड़ा कराह रहा था और भुनभुना रहा था, "न जाने क्यों क़म्बख़्त मेरे ही

रूम के आगे नहाते हैं, मुझे तो बुख़ार आया है नहीं तो उसकी होश दुरुस्त कर देना।"

वॉर्डन साहब ने नौकर को बुला कर बाल्टी ऊपर उठा कर रखने का हुक्म दिया और बोले, अगर आप लोगों ने यहाँ नहीं नहाया है तो यह आपकी नहीं हो सकती। ख़ैर मैं अपने यहाँ रखवाए लेता हूँ, जिन साहब की हो वह आकर ले जाएँगे। बाल्टी उठवा कर गुप्ता साहब चलते बने। मारे क्रोध के मेरा सर्वांग जल रहा था, वाक़ई मुझे उस वक़्त इतनी गर्मी थी कि टेम्परेचर लेने पर १०० डिग्री अवश्य निकलता। यार लोग अलग हँस रहे थे, "बड़े खुर्राट बनते थे बच्चू अब धोती-बाल्टी वसूलो तो जानें।"

मैंने कहा, "ख़ैर यह तो अभी हो जाएगा।" शाम को मैंने एक चिट्ठी लिखी कि "सुबह मेरे कमरे के सामने से जो धोती आप उठवा ले गए हैं वह मेरे एक मेहमान की थी, उन्हें होस्टल-रूल का पता नहीं था, कमरे के सामने पानी रक्खा देख कर उन्होंने नहाया और संध्या करने के लिये छत पर चले गए, बाद में पता चला।"

धोती तो ख़ैर आ गई मगर इस नोटिस के साथ कि "आगे से मेहमान बिना वॉर्डन साहब की इजाज़त के होस्टल में न ठहरें।"

इसी क़िस्म की मुठभेड़ रोज़ाना हो जाया करती था। गुप्ता साहब की बेहूदा हरक़त रुकती न थी। अब उन्होंने रात को भी चक्कर लगाना शुरू किया। प्रोफ़ेसर साहब के कमरे में रोल-कॉल की स्लिप रहा करती थी, अमूमन पहला आदमी, जो इत्तिफ़ाक़ से गुज़रता, हम सब के लिये दस्तखत कर दिया करता था। इस अत्यन्त सुविधाजनक तरीक़े से यह लाभ हम लोगों को होता था, कि हाज़री के वक़्त होस्टल में रहने की ज़रूरत से बरी हो जाते थे, और बिना किसी दिक़्क़त के मार्केटिंग, सिनेमा वग़ैरह-वग़ैरह ज़रूरी काम कर सकते थे। गुप्ता साहब एक रोज़ रोलकॉल के वक़्त नीचे आए। प्रीफ़ेक्ट का रूम बन्द था, सारे ब्लॉक में सन्नाटा था। सिर्फ़ कोने वाले कमरे में हमारे होस्टल के सबसे योग्य विद्यार्थी विद्याध्ययन-रूपी महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। दिवाल पर कील से स्लिप अटकी हुई थी और सब के दस्तखत मौजूद थे। दूसरे रोज़ प्रीफ़ेक्ट ने गुप्ता साहब के अत्यन्त नीच और अपने प्रति अविश्वासपूर्ण रवैय्ये के विरोध में इस्तीफ़ा दे दिया और गुप्ता साहब रोल कॉल के वक़्त ख़ुद मौजूद रहने लगे। ब्लॉक का कोई भी सदस्य प्रीफ़ेक्ट होने को तैयार न था और गुप्ता साहब को भी हम पर विश्वास न था। गुप्ता साहब को यह सन्तोष था कि उन्होंने हम लोगों को होस्टल में रहने के लिये मजबूर कर दिया, और हमें यह सन्तोष था कि हमने गुप्ता साहब को इमारती ठीकेदार बना दिया। हम लोग जान-बूझ कर रोलकॉल के वक़्त लोटे लेकर

पाखानों की तरफ़ निकल जाते थे और इसी तरह के अन्य क़ानूनी या वैधानिक उपायों से उनको तंग करते थे।

बहरहाल हालत उस हद पर, जिसे सियासी ज़बान में क्राइसिस कहते हैं; पहुँच रहे थे। हम लोगों के गरम दल को यह वैधानिक तरीक़ा नागवार महसूस हुआ और प्रोफ़ेसर साहब के खिलाफ़ 'डाइरेक्ट एक्शन' का एलान किया गया। दूसरे रोज़ मधुप जी प्रोफ़ेसर साहब से बात कर रहे थे। प्रोफ़ेसर साहब ने बड़े ग़ौर के बाद कहा— यह तो बड़ी सीरियस बात है, आपने मुझसे क्यों नहीं कहा ?"

अजी साहब जब मामला बर्दाश्त के बाहर पहुँचा तब आप के पास आया, वर्ना मुझे स्नीकिंग (चुग़लखोरी) से बड़ी नफ़रत है।"

"नहीं, नहीं, यह तो आप का फ़र्ज़ है। होस्टल में इस क़िस्म की बात नहीं हो सकती, स्टूडेन्ट्स की मोरेलिटी हमारा लुक-आउट है, मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता।"

मधुप जी ने और भी गम्भीर होकर कहा, "नहीं साहब इससे भी ज्यादा की नौबत पहुँच गई है। महज़ ड्रिंकिंग और और गैम्बलिंग ही नहीं, मैंने जब समझाने की कोशिश की तब प्यूरिटन कह कर खिल्ली उड़ाई गई और यह भी कहा कि अपने चाचा प्रोफ़ेसर को भी भेज देना।" प्रोफ़ेसर साहब का चेहरा लाल हो गया, "मैं आज शाम को जरूर इनक्वायरी करूँगा।"

'अजी साहब तब तो सारा गुड़ गोबर हो जाएगा। साढ़े दस बजे के क़रीब महफ़िल जमती है, उससे थोड़ी देर बाद आप एकाएक वर्मा (अर्थात् मेरे) के रूम में नॉक करें ।"

"ऑल राइट थैन्क यू" आप वाक़ई शरीफ़ आदमी हैं ।"

ग्यारह बजे रात को प्रो० गुप्ता दबे पाँव ब्लॉक में दाखिल हुए। रूम नौ के सामने रुके। दरार में से रोशनी आ रही थी और बड़े ज़ोरों की भन्नाहट सुनाई पड़ रही थी। फिर गाने की आवाज़ आने लगी :

प्रेम का पुरवा, प्रेम का पत्तल, प्रेम का पड़ेगा अचार,
प्रेम के जूते, प्रेम के चप्पल, प्रेम से पड़ेंगे हज़ार।

"वाह-वाह डार्लिंग। एक बार कलेजे से लग जाओ, ओ हो प्रेम की चप्पल खाने के लिए चाँद खुजला रही है ।"

प्रो० गुप्ता अब अपने की ज़ब्त न कर सके। हथौड़े की तरह उनका मुक्का दरवाज़े पर पड़ा और दरवाज़ा फ़ौरन खुल गया। गुप्ता साहब अन्दर घुस गए। कमरे का सीन देखने क़ाबिल था। बिस्तर पर दुपल्ली टोपी लगाए मुँह में पान भरे एक साहब पंचम सुर में प्रेम का राग अलाप रहे थे। बीच में टेबुल था, उस पर शराब की बोतलों में लाल-लाल अंगूरी छल-छला रही थी। एक नाजमीन नीली जॉरजेट की साड़ी पहने

चकराई-सी खड़ी थी। एक साहब उसके गले में हाथ डाले उसे शराब का जाम पिलाने की कोशिश कर रहे थे। दूसरे साहब घुटने के बल सीने पर हाथ रक्खे दर्दे-दिल की शिकायत कर रहे थे। गुप्ता साहब के समझ में न आया कि युनिवर्सिटी के स्वनाम धन्य वकील के नाम पर बने होस्टल के कमरे में खड़े हैं या दालमण्डी के किसी गोशे में! उसके बाद प्रोफ़ेसर साहब ने बिना कॉमा-फुल-स्टॉप की जो इंगलिस्तानी स्पीच झाड़ी उसका मतलब यही समझ में आया कि हमें होस्टल छोड़ने का हिटलरी हुक्म दिया जा रहा है और शोहदे-गुण्डे आदि अलफ़ाजों से समादृत किया जा रहा है। स्पीच देकर गुप्ता साहब हाँफते हुए रुके मगर पाप कर्म में पकड़े जाने वालों को जैसी घबड़ाहट और बदहवासी होना चाहिये उसका हम पर नाम-निशान नहीं था।

मैंने कहा—"आखिर आप इतना नाराज़ क्यों हो रहे हैं?"

बेशर्म बेहया निकालो इस चुड़ैल को। गेट आउट, गेट आउट। हँसी के ठहाके ने प्रोफ़ेसर साहब का स्वागत किया। एक झटके से मैंने उस चुड़ैल की साड़ी खींच ली, उसके नीचे से सक्सेना साहब की, जो हमारे होस्टल की मशहूर ब्यूटी थे, शकल निकल आई। प्रोफ़ेसर साहब ने शराब की बोतल उठाई मगर उसमें तो लाल पानी भरा हुआ था जिससे वह भीग भी गए। मैंने निहायत नम्रता से उन्हें समझाया कि हम लोग महज़ युनिवर्सिटी की जुबली के लिए ड्रामे की तैयारी कर रहे थे।

प्रोफे.सर साहब ने मधुप जी की ओर, जो उनके पीछे ही कमरे में दाखिल हुए थे, आग्नेय नेत्रों से देखा। मधुप जी बोले "सर; मुझे क्या मालूम था, मैं तो समझता था कि ये लोग वास्तव में ड्रिङ्कि्ग आदि करते थे। हम लोगों ने फिर एक ठहाका लगाया? प्रोफ़ेसर साहब ने पीछे घूम कर बाहर का रास्ता लिया। डायरेक्ट एक्शन की सफलता बड़ी शानदार थी!!

शहीद

जुलूस अब मरघट बाज़ार से गुज़र रहा था। यकायक जुलूस के नेता को, जिसकी लम्बी दाढ़ी देख कर यह संदेह होता था जैसे यह दाढ़ी नहीं भाड़न है, ख़्याल आया कि जुलूस जरूरत से ज़्यादा ख़ामोश है। अतएव उसने पूरी शक्ति से चिल्ला कर कहा—"दुष्टता आन्दोलन।"

हजूम ने एक स्वर से नारा लगाया—"ज़िन्दाबाद!"

'प्रेम व मुहब्बत"

"मुर्दाबाद।"

"हम क्या चाहते हैं?"

"दंगा-फ़साद।"

नेता को विश्वास हो गया कि हजूम में ज़िन्दगी के काफ़ी आसार हैं। जुलूस बाज़ार से गुज़रता हुआ गिरगट रोड की तरफ़ बढ़ने लगा।

मातादीन उस जुलूस का नफ़रत रोड से पीछा कर रहा था। उसके कपड़े गन्दे, बाल बढ़े हुए और निगाहें भूखी थीं।

पचासवीं बार उसने अपने सूखे होठों पर जीभ फेरते हुए अपने दायें-बायें चलने वाले व्यक्तियों को जेबों की ओर निगाह दौड़ाई और पचासवीं बार उसे निराशा हुई। वह दिल ही दिल में हैरान था। किसी व्यक्ति की जेब में फूटी कौड़ी तक न थी। फूटी कौड़ी तो ख़ैर बहुत बड़ी बात थी, यहाँ तो ऐसे लोग भी थे जिनके शरीर पर फटी हुई कमीज़ तक नहीं थी। मातादीन को उन लोगों पर अत्यधिक क्रोध आया और उसने मुँह ही मुँह में उन्हें दो-एक मोटी गालियाँ दीं। उसका जी चाह रहा था कि जुलूस के नेता की लम्बी दाढ़ी पकड़ कर उससे कहे कि दुष्टता आन्दोलन बहुत खूब है लेकिन यह कहाँ की दुष्टता है कि किसी आदमी की जेब में इतने पैसे भी नहीं हैं कि एक भूखा जेब-कतरा जेब काट कर खाना खा सके!

आज मातादीन का तीसरा उपवास था। भूख के कारण वह निढाल हो रहा था, उसका दिमाग़ चकरा रहा था और हर क़दम पर उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो अभी लड़खड़ा कर जमीन पर गिर पड़ेगा। लेकिन इतने बड़े जुलूस में लड़खड़ाना भी तो कठिन था। उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ इतनी अधिक भीड़ थी कि अगर वह गिरना चाहता तो भी शायद न गिर सकता। अचानक जुलूस एक चौराहे पर खड़ा हो गया। आगे ट्रैफ़िक का 'रश' था। जुलूस के आदमी आपस में तरह-तरह की बातें करने लगे, किसी ने कहा—"सेक्रेटेरियट अब नज़दीक है।" किसी ने कहा—"आज पुलिस

बाधा नहीं डाल रही है।" मातादीन ने अपने दाहिनी तरफ़ खड़े हुए व्यक्ति की जेब की ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखा। बारीक मलमल से उसे दो-एक रूपहले सिक्के झलकते हुए दिखाई पड़े। उसके सूखे होठों पर मुस्कराहट की एक हल्की-सी लहर दौड़ गई। वह उस आदमी के और निकट सरक कर उपयुक्त अवसर की राह देखने लगा। उसने एक-आध बार उस आदमी की आँख बचा कर अपना हाथ जेब की तरफ़ बढ़ाने की कोशिश की लेकिन उसे जेब काटने का साहस न हुआ। दो-चार मिनट वह उसी सोच-विचार में खड़ा रहा। आखिर उसने हिम्मत से काम लेते हुए एक बार और कोशिश करने का इरादा किया। उसने धीरे से अपना हाथ उस आदमी के कंधे पर रखते हुए कहा—'क्यों जी! यह जुलूस अब चलेगा भी या नहीं?" इससे पहले कि वह आदमी उसे जवाब देता, किसी ने पीछे से आकर उसकी पीठ पर हाथ मारते हुए कहा—'अरे मेरे चाँद! तू इस मजमे में क्या कर रहा है?" मातादीन ने घूम कर देखा, वह आवाज़ उसके हमपेशा कल्लू शेख की थी। मातादीन ने उसे आँख मारते हुए चुप रहने का इशारा किया। लेकिन कल्लू शेख चुप रहने वाला आदमी न था। उसने मातादीन का हाथ दबाते हुए धीरे से उसके कान में कहा—"देख बेटा! यह बात ठीक नहीं। जुलूस मेरी क़ौम के लोगों का है। तुम यहाँ......।"

मातादीन ने उसकी बात काटते हुए उसी तरह धीरे से

कहा—"नाराज़ मत हो यार ! आधा हिस्सा तुम्हारा रहा।" अपने स्वभाव के विपरीत कल्लू शेख़ ने ज़िन्दगी में पहली बार अपने सहकारी की बात मान ली। जुलूस के लीडर ने एक बार फिर एक जोशीला नारा लगाया और जुलूस सेक्रेटेरियट की तरफ़ रवाना हुआ। कल्लू शेख़ और मानादीन साथ-साथ चलने लगे।

सेक्रेटेरियट पहुँचने से पहले जुलूस को एक सँकरी गली से गुज़रना था जिसके बाहर पुलिस ने मजमे को रोकने का पूरा इन्तज़ाम कर रक्खा था। जैसे ही जुलूस उस गली के आख़िरी हिस्से पर पहुँचा, एक मैजिस्ट्रेट ने, जो घोड़े पर सवार था, उसे हट जाने का हुक्म दिया। मजमे ने नेता की ओर देखा। नेता ने मैजिस्ट्रेट की आज्ञा की परवाह न करते हुए एक के बाद एक करके चार-पाँच नारे लगवाने के बाद जुलूस को आगे बढ़ने के लिए कहा। मैजिस्ट्रेट ने अन्तिम चेतावनी दी किन्तु जुलूस पर इसका कोई ख़ास असर न पड़ा। अन्त में जब मजमे ने पुलिस पर पत्थर फेंकना शुरू कर दिया तब मैजिस्ट्रेट ने पुलिस को लाठी चार्ज का हुक्म दे दिया। मजमे में भगदड़ मच गई। बहुत से लोग उलटे पाँव सँकरी गली की तरफ़ दौड़े लेकिन गली तंग थी और मजमा बढ़ा। इस भगदड़ में कई बूढ़े और बच्चे रौंद गये। दर्जनों आदमियों को चोटें आईं। भागते समय मातादीन गिर पड़ा। पुलिस अब गली में आ पहुँची थी और लोग सख़्त

घबराहट की हालत में भाग रहे थे। मजमे का एक रेला मातादीन के ऊपर से गुज़रता हुआ गली की एक मस्जिद में जा घुसा। इतने में पुलिस अफ़सर ने सीटी बजाई। कुछ लोग सेक्रेटेरियट के दफ़्तर में भागने में सफल हो गए थे। उन्हें गिरफ़्तार करना था। पुलिस के सिपाही सीटी की आवाज़ सुन कर तंग गली से बाहर की ओर दौड़े।

पुलिस के चले जाने के बाद जब लोगों के होश ठिकाने हुए तब उन्होंने इधर-उधर नज़र डाली। कुछ बच्चे डर के मारे ज़मीन पर पड़े हुए थे। उन्हें उठा कर अपने-अपने घरों को चले जाने के लिये कहा। कुछ बूढ़े ज़ख्मी हो गये थे, उनकी मरहम-पट्टी की गई। मातादीन को बेहोशी की हालत में उठा कर मस्जिद में लाया गया। उसके मुँह पर ठण्डे पानी के छींटे दिए गये। उसे हिला-हिला कर जगाने की कोशिश की गई लेकिन मातादीन बेसुध ज़मीन पर पड़ा रहा। एकाएक किसी को ख्याल आया कि इसकी नाड़ी टटोली जाए। उसने मातादीन की नाड़ी पर हाथ रक्खा और ताज्जुब व अफ़सोस के मिले-जुले स्वर में कहा—"अरे यार, यह तो खत्म हो गया।"

एक पनवाड़ी ने दाँत निकालते हुए कहा—"तभी तो मैं सोंचूँ कि यह साला उठे क्यों नहीं ?"

मातादीन की मृत्यु का समाचार तुरन्त दुष्टता आन्दोलन के दफ़्तर में पहुँचाया गया। देखते ही देखते मस्जिद में हज़ारों

लोगों का जमघट हो गया। आन्दोलन के बड़े-बड़े नेता मोटरों में सवार होकर मस्जिद में पहुँच गए। लोग एक दूसरे से पूछने लगे—"यह कौन आदमी था?" "कहाँ का रहने वाला था?" "क्या वह आन्दोलन का बाक़ायदा मेम्बर था?" "क्या वह आन्दोलन का हमदर्द था?"

दुष्टता आन्दोलन के किसी नेता को इस व्यक्ति के बारे में कुछ मालूम न था। वे केवल इतना जानते थे कि इसका नाम मातादीन है क्योंकि यह नाम उसकी बाँह पर लिखा हुआ पढ़ा गया था। लेकिन उन्होंने एकमत से मातादीन को 'शहीद' की पदवी दे दी और एलान किया कि इस शहीद का जनाज़ा बड़ी धूमधाम से निकाला जाए। आन्दोलन के अखबारों को हिदायत भेजी गई कि 'शहीद मातादीन' के अवसान की खबर बड़े-बड़े टाइपों में छापी जाए। अखबारों ने धड़ाधड़ 'सप्लिमेण्ट' निकालने शुरू कर दिए जिनमें स्वर्गीय आत्मा की राष्ट्रीय सेवाओं का उल्लेख करते हुए दुष्टता आन्दोलन से पहले शहीद को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

'पिशाच पत्र' नामक दैनिक ने लिखा—"शहीद मातादीन दुष्टता आन्दोलन के संस्थापकों में से थे! आप एक उच्च घराने के दीप थे। जन-सेवा और राष्ट्र-सेवा की भावना आपको विरासत में मिली थी। आपके परदादा 'दुष्टता आन्दोलन' के एक मुख्य स्तम्भ थे। मातादीन जी की मृत्यु से देश को जो हानि हुई है उसकी पूर्ति सहज में नहीं हो सकती।"

साप्ताहिक 'घृणादूत' ने लिखा—"हमें स्वर्गीय मातादीन जी की व्यक्तिगत मित्रता का सौभाग्य प्राप्त था। आप बड़े ही शिष्ट और मिलनसार व्यक्ति थे। यदि उन्हें देवता कहा जाए तो इसमें रत्ती भर भी अतिशयोक्ति न होगी। आपका जीवन मानव-जाति की भलाई के कामों में ही व्यतीत हुआ। आपकी मृत्यु से हमें व्यक्तिगत रूप से दुख पहुँचा है।"

शहीद मातादीन की अर्थी के जुलूस में लगभग एक लाख आदमी शामिल हुए और श्मशान तक वायुमण्डल "शहीद मातादीन ज़िन्दाबाद" के नारों से गूँजता रहा। शहीद माता-दीन की चिता को जलाने के बाद एक बहुत बड़ी शोक-सभा हुई जिसमें भाषण देते हुए दुष्टता आन्दोलन के नेता ने कहा 'सज्जनों! हम एक बहुत बड़े शहीद को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। शहीद मातादीन जी ने अपनी बेमिसाल .क़ुर्बानी से सिद्ध कर दिया है कि दुष्टता आन्दोलन में ऐसे सर्फ़रोश मौजूद हैं जो समय आने पर प्राणों का बलिदान दे देते हैं किन्तु आन्दोलन का झण्डा झुकने नहीं देते। (तालियाँ) मातादीन जी पुलिस के जालिमाना लाठी-चार्ज के शिकार हुए (शेम-शेम) उनकी छाती और सर पर छः गहरे घाव लगे। उनकी जान बचाने की प्रत्येक सफल चेष्टा की गई लेकिन अफ़सोस कि वे बच न सके। आज शहीद मातादीन जी हमारे बीच नहीं लेकिन उनकी क़ुर्बानियों की याद युगों तक हमारे दिलों को गर्माती रहेगी। जिस सच्चाई और नेकनियती से उन्होंने दुष्टता आन्दो-

लन की सेवा की है वह आप सब पर प्रगट है। यदि मैं यह कहूँ कि उन्होंने अपने रक्त से हमारे आन्दोलन को सींचा है तो यह ग़लत न होगा। मातादीन जी के सामने सदैव एक उद्देश्य रहा कि जाति के प्रत्येक व्यक्ति की सहायता की जाए और जहाँ तक हो सके इस पिछड़ी हुई क़ौम का दामन मोतियों से भर दिया जाए।" (तालियाँ)

मजमे ने जोश से बेक़ाबू होकर "शहीद मातादीन ज़िन्दाबाद" के नारे लगाए और सभापति के भाषण का शेषांश अंश इस कोलाहल में सुना न जा सका।

दूर एक कोने में कल्लू शेख़ ने एक आदमी की जेब काटते हुए होंठों ही होंठों में मुस्करा कर कहा—'साला, शहीद कहीं का।'

बदचलन

बिजली की रौशनी में जगमगाती दूकानों से घिरा हुआ अमीनाबाद पार्क सन्ध्या के समय बड़ा रमणीक हो उठता है। चारों तरफ़ सड़कों पर इक्के, ताँगे और मोटरों की चिल्ल-पों, रास्ता चलते लोगों की चहल-पहल और इसी में मिश्रित आलू-कचालू और जल-ज़ीरा की विचित्र तारीफ़ें तटस्थ दर्शकों को बड़ी लुभावनी मालूम पड़ती हैं।

दफ़्तर में दिन-भर से पिसे हुए बाबुओं के घड़ी भर तबीयत बहलाने के लिए तो वह तीर्थ-स्थान है ही, साथ में, शौक़ीन तबीयत वालों के लिए भी वह विशेष आकर्षक है—इसलिए कि अक्सर औक़ात उन्हें 'अच्छी चीज़ों' के दर्शन हो जाया करते हैं—खास कर मंगल के दिन! उनकी क़िस्मत से अगर कहीं 'आँखें चार' हो गईं, तो मित्र-मण्डली में दिली परेशानी का इज़हार करने के लिए काफ़ी मसाला मिल जाता है। अस्तु, शाम को अच्छी-खासी भीड़ हो जाया करती है।

रोज़ की तरह आज भी मन्द-मन्द स्फूर्तिदायक हवा में ठण्डी-ठण्डी घास पर हम लोगों की बैठक जमी हुई थी। नवयुवकों की बात-चीत का क्षेत्र प्रायः सङ्कुचित ही रहता है—सिनेमा स्टार्स या कॉलेज की लड़कियाँ !

उस दिन हमारे बहस-मुबाहसे का मसाला था चाल-चलन। हम लोगों की गोष्ठी में एक उल्लेखनीय सज्जन हैं। वे अपने-आपको मनोविज्ञान का विशेषज्ञ समझते हैं। वे हैं या नहीं, यह तो ईश्वर जाने, लेकिन वे हम लोगों के लिए मनोरञ्जन का साधन अवश्य हैं !

"लखनऊ निहायत 'करप्ट' जगह है।"—आपने अधिकार जताते हुए कहा।

"मेहरबान, यह तो हर बड़े शहर और तीर्थ-स्थान के बारे में कहा जा सकता है। इसमें कौन-सी नई बात है।"—एक साहब ने टोका।

"जी !"—उन्होंने जबड़ा निकाल, आँखें तरेरते हुए, उत्तेजित हो कर कहा—"लखनऊ 'सेण्टर' है इन बातों का सेण्टर ! यहाँ ऐसे-ऐसे अड्डे हैं, कि आँखें खुल जाएँ। दूर ही क्यों जाइए, इस पार्क में आपको ऐसे दलाल मिल जाएँगे, जो प्राइवेट घरों में आपकी पहुँच करा सकें।"

"ग़ज़ब करते हो यार।" दूसरे सज्जन बोले—"तुम्हीं कहो, एक अर्सा हो गया हम लोगों को यहाँ बैठते। कभी

कोई ऐसी घटना सामने आई ? हाँ, कुछ अच्छी शक्लें देख कर आँखें जरूर तृप्त हुईं, किन्तु यह तो कोई 'करपशन' नहीं है।"

"बड़े बुद्धू हो!" वे किञ्चित अधीर हो कर बोले—"ये सब बातें विज्ञापन करा के थोड़े ही की जाती हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैंठ!"

"तो फिर हाथ कंगन को आरसी क्या ? हमें भी गहरे पानी में पैठवा दो न, भाई।"—तीसरे सज्जन बोले।

"जी हाँ, यह भी क्या खाना बनाया और चट्ट! अरे, भाई! यह तो मछली का खेल है, कभी जाल में, और कभी बाहर!" —उन्होंने कहा।

"क्या म्याँ! हटने लगे न पीछे ? हम तो जानते ही थे।" हमने ताना दिया।

हम लोगों ने सर्व-सम्मति से तय किया, कि मनोवैज्ञानिक महोदय को अपनी बात प्रमाणित करनी ही होगी।

पाँच-छः बार पार्क का चक्कर लगाने पर भी उनको कोई ऐसा सूत्र नहीं मिला, जिससे वे अपनी बात पूरी कर सकते। किन्तु एकाएक वे रुक गए, कहने लगे—"देखो, वह औरत ऐसी-वैसी ही मालूम पड़ती है। तुम लोगों में से एक ही साहब हमारे साथ आएँ।" हम साथ हो लिए।

देखने में वह सुन्दर अवश्य थी। उसके साथ एक पाँच-छः बरस का बच्चा था।

"देखते हो, उसके साथ बच्चा है, हमारी खोपड़ी फ़ालतू नहीं है।"—हमने कहा।

इतने ही में बच्चा रो उठा, वह बेतरह मचल रहा था।

मित्र महोदय ने अवसर का इस्तेमाल किया। पास जा कर सहानुभूति दिखाने लगे—"यह आप को परेशान कर रहा है। क्या मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ ?"

उसने उत्तर न दिया। बच्चे को तीन-चार तमाचे जड़ दिए और झिड़का—"भूख-भूख क्यों चिल्ला रहा है। चुप रह। यहाँ क्या खाने को मिलेगा ?"

मित्र-महोदय ने मिठाई ला कर सामने रख दी।

"आपने नाहक़ ही......।"

"ओह, कोई बात नहीं। इससे क्या हुआ। कोई आपके साथ है नहीं क्या ?—नहीं तो मैं ही आपको पहुँचा आऊँ। कहाँ है घर आपका।"—वे बात काट कर बोले।

"कहाँ बताऊँ, कहाँ है घर ?"—उसने कहा।

हमें तो उसकी वाणी में करुणा और कृतज्ञता का ही आभास मालूम पड़ा।

"तो चलिए, कहीं घूमा ही जाए। यहाँ बैठे-बैठे क्या करिएगा ?"—उन्होंने अपना आखिरी हाथ खेला।

यह हिम्मत ! मैं तो स्तम्भित रह गया। लेकिन मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब मैंने उसे गम्भीरतापूर्वक और शान्ति के साथ पूछते सुना—"कहाँ चलिएगा ?"

"पहले रेस्टराँ चलिए। खाया-पिया जाए। दस-पन्द्रह रुपए की कोई बात नहीं। फिर देखा जाएगा।" मैं तो दंग रह गया था उनकी 'मनोविशेषज्ञता' देख कर !

"लेकिन घंटे-भर में तो आ जाइएगा न ? नहीं तो मेरे पति व्यर्थ राह देखेंगे।"—उसने पूछा।

मुझे यह बात कुछ हास्यास्पद-सी लगी। मुझसे न रहा गया। "माफ़ कीजिएगा ! आपके पति......!"

वह तमक कर मेरी ओर मुख़ातिब हुई—"मैं आपके साथ जा रही हूँ, तो यह न समझिएगा, कि......" वह पूरी बात न कह सकी, और फूट-फूट कर रोने लगी।

"लेकिन जब आप राज़ी ही से चल रही हैं, तो यह रोना क्यों ?" शायद मेरी वाणी में कुछ कठोरता थी।

"तो सुनिए।" वह बोली—"दो महीने हुए, मेरे पति की नौकरी छूट गई। जो कुछ था ख़तम हो गया। मकान से भी निकाल दिए गए, इसलिए कि छः महीने का किराया बाक़ी है। हम तीनों चार दिन से भूखे हैं। पति क़ुलीगीरी करने गए हैं,

लेकिन वे भूखे क्या बोझ ढो पाएँगे। हम तो भूखों मर सकते हैं, किन्तु यह बच्चा! अब शायद आपकी तबीयत पूरी कर इसका पेट भर सकूँ।"

उफ़्! मैं सिर से पैर तक काँप उठा!! हम और वह!!! बदचलनी का एक यह भी पहलू था!